Mandir Libr
908/H
21/X/73
10.73

मत्स्य पुराण

198/H
21.10.73

श्री वेद मन्दिर पुस्तकालय
नं. 208/H
तिथि 21/10/73
जम्मू।

Ved Mandir Library
No. 208/H
Date 21/X/73
JAMMU.

मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]

सरल भाषानुवाद सहित

208/H
ति० 22/10/73
जम्मू

198/H
21-10-73

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षटदर्शन,
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों
के प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर), बरेली (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब,
बरेली।

●

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

सर्वाधिकार सुरक्षित

●

प्रथम संस्करण
१९७०

●

मुद्रक :
विनोदकुमार मिश्र
राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,
आर्य समाज रोड, मथुरा

●

मूल्य :
सात रुपये पचास पैसे

नं: 2261.H
2/10/73

दो शब्द

पुराणों का मुख्य उद्देश्य धर्म-कथाओं और धर्म-इतिहास का वर्णन करना माना गया है, पर बहुसंख्यक पुराणों में इनके अतिरिक्त विभिन्न कलाओं और विद्याओं का विवेचन भी बड़े विस्तारपूर्वक किया गया है। नारद पुराण, गरुड़ पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नारद पुराण में वेद के छः अंगों—शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द शास्त्र का जैसा विस्तृत और विशद वर्णन किया गया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। गरुड़ पुराण में रोग और औषधियों का जितना वर्णन मिलता है, उसे एक छोटा-मोटा पृथक आयुर्वेद ग्रंथ ही कहा जा सकता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज-धर्म और राज्य-सञ्चालन सम्बन्धी सैकड़ों पृष्ठव्यापी एक पूरा शास्त्र ही मौजूद है।

'मत्स्यपुराण' के इस दूसरे खण्ड में भी 'राज-धर्म' 'राजनीति 'गृह निर्माण विद्या' और 'मूर्तिकला' का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। इसमें न केवल राजा के कर्तव्य और प्रजापालन का उपदेश दिया गया है, वरन् राजधानी का नगर किस प्रकार बसाया जाय, किलाबन्दी किस प्रकार की जाय, अपनी रक्षा और शत्रुओं का सामना करने के लिये उसमें कैसे अस्त्र-शस्त्रों, युद्ध-सामिग्री और हर तरह की घायलों की चिकित्सार्थ जड़ी-बूटियों तथा औषधियों का संग्रह किया जाय इसका वर्णन दस-बीस अध्यायों में विस्तार के साथ किया गया है।

प्रसाद, भवन, गृह आदि के निर्माण में भी इस देश के प्राचीन 'वास्तु-विद्या' (इंजीनियरिङ्ग) का ज्ञान भली प्रकार प्रदर्शित किया गया है। मकानों में द्वार किस तरफ कैसे बनाये जायें और खम्भों के निर्माण में किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है? इसमें चौकोर से लेकर बत्तीस पहलों तक के तरह-तरह के खम्भों का जो वर्णन मिलता है उससे उस जमाने के लोगों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है।

देवताओं की मूर्त्ति निर्माण में तो काफी जानकारी का होना अनिवार्य ही है। प्रत्येक देवता की मूर्त्ति में क्या विशेष लक्षण रखे जायें जिससे उसे ठीक-ठीक पहिचाना जाय और उसके समस्त साम्प्रदायिक चिन्ह उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ सकें? उदाहरण के लिये विष्णु-भगवान् की मूर्त्ति-निर्माण में वर्णन किये कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—

"शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाला—परम प्रशान्त उनका मस्तक छत्र के आकार से संयुत होता है। शंख के समान ग्रीवा, शुभ नेत्र, ऊँची नाक, सीप के से कान, परम प्रशान्त उरु वाला उनका रूप होता है। उनकी मूर्त्ति कहीं आठ भुजाओं और कहीं चार भुजाओं से युक्त होती है। यदि आठ भुजा बनाई जायें तो खड्ग, गदा, शर, दिव्य पद्म ये सब आयुध विष्णु जी के दक्षिण भाग में होने चाहिए और धनुष, खेटक, शंख, चक्र ये चार वाम भाग में रहने चाहिये। चार भुजा वाले स्वरूप में गदा और पद्म दक्षिण भाग में और शंख तथा चक्र वाम भाग में रखे जायें। उनके नीचे की ओर पैरों के मध्य भाग में पृथ्वी की कल्पना करनी चाहिये। दक्षिण भाग में प्रणति करते हुये गरुण और वाम भाग में हाथों में पद्म धारण किये लक्ष्मी देवी को विराजमान करना चाहिये। विभूति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गरुण की स्थापना भगवान के सम्मुख भाग में करनी चाहिये। दोनों पार्श्वों में पद्म से संयुत श्री तथा पुष्टि की स्थापना करे। विद्याधरों के ऊपर तोरण बनावे और उसे दुन्दुभिनाद करते हुये गन्धर्व, लतायें, सिंह और व्याघ्र आदि से सजाये।"

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के विशेष चिन्हों को मूर्तियों में दर्शाने का पूरा विवरण दिया गया है। अन्त में सब मूर्त्तियों के अंग अनुपात के अनुसार कितने बड़े और छोटे होने चाहिये इसको भी स्पष्ट कर दिया गया है। एक जगह कहा गया है कि "मूर्त्ति की कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिये। स्त्री-मूर्त्ति की कटि बाईस अंगुल की रखी जाती है और दोनों स्तन बारह-बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह

बयालीस अंगुल का अभीष्ट होता है । पुरुषों में यह विस्तार पचपन अंगुल होता है । दोनों कन्धे छः–छः अंगुल के बताये गये हैं । ग्रीवा आठ अंगुल और दोनों भुजाओं का आयाम ब्यालीस अगुल का होता है ।" इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग की—हथेलियों और पाँचों अंगुलियों तक की नाप ठीक–ठीक बतलाई गई है, जिससे मूर्त्ति सब प्रकार से सुन्दर दिखलाई दे और उसमें कही बेडौलपन प्रकार हो ।

और भी कई अन्य महत्त्वपूर्ण विषय इस खण्ड में मिलते हैं । भृगु, अंगिरस, अत्रि, कुशिक, कश्यप, वसिष्ठ आदि सभी प्रमुख ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश, प्रवर स्पष्ट रूप में दिये गये हैं । ये ही ऋषि भारतीय संस्कृति के आदि जनक माने जाते हैं और अधिकांश पौराणिक उपाख्यान इन्हीं वशों से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है । नरसिंह और बाराह अवतारों के चरित्र क विषय में भी मत्स्य पुराण का वर्णन कुछ विशेषता लिये हुए हैं । देवासुर संग्राम में दानों पक्षों के सेनानायकों तथा वीरों का परिचय और उनका संग्राम कवि कल्पना का अच्छा परिचय देने वाला है । सावित्री–सत्यवान की कथा इस पुराण में भी छः–सात अध्यायों मे दी गई है और उसकी वर्णन शैली प्रभावशाली है । मंगल–अमंगल सूचक शकुनों, तरह–तरह के स्वप्नों और अंगों के फड़कने का जो फलादेश दिया गया है वह अधिकांश पाठकों को आकर्षक जान पड़ेगा ।

अठारहों पुराणों के स्तर पर विचार करते हुये 'मत्स्य पुराण' को महत्त्वपूर्ण हो माना जायगा । यह न बहुत अधिक बड़ा है और न बहुत छोटा और पुराण के पाँचों अंगों के साथ इसमें पर्याप्त जीवनोपयोगी और समाज की दृष्टि से प्रगतिशील विद्याओं और कलाओं का परिचय दिया गया है । यद्यपि हम एक हजार पृष्ठ में सब बातों को पूरे विस्तार के साथ नहीं दे सकते तब भी इस संशोधित संस्करण में पाठकों को सभी आवश्यकीय बातों का ज्ञान हो सकेगा और वे स्वयं इसके महत्त्व को अनुभव कर सकेंगे ।

—सम्पादक

विषय-सूची

(द्वितीय खण्ड)

क्रम	विषय	पृष्ठ
६१	नरसिंह माहात्म्य वणन	९
६२	नरसिंह हिरण्यकशिपु युद्ध वर्णन...	२१
६३	अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध	२८
६४	मनु-मत्स्य सम्वाद वर्णन	४६
६५	विष्णु प्रादुर्भाव वर्णन	५०
६६	दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन	६०
६७	सुरसैन्य विस्तार वर्णन	६५
६८	देवासुर संग्राम वर्णन (१)	७४
६९	देवासुर संग्राम वर्णन २)	८७
७०	कालनेमि बृतान्त वर्णन	९७
७१	कालनेमि और विष्णु का युद्ध	१०७
७२	भव माहात्म्य वर्णन	१२२
७३	वाराणसी क्षेत्र माहात्म्य	१३६
७४	वाराणसी माहात्म्य	१५५
७५	नर्मदा माहात्म्य	१६१
७६	नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य ...	१७२
७७	भृगु वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन ...	१८१
७८	अङ्गिरस वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन...	१८८
७९	अत्रि वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन ...	१९४

क्रम	विषय	पृष्ठ
८०	कुशिक वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन ...	१९६
८१	कश्यप वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-वर्णन	१९९
८२	वशिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम-गोत्र-वंश-प्रवर वर्णन ...	२०२
८३	ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन	२०४
८४	ऋषियों के नाम-गोत्र-वश-प्रवर वर्णन	२११
८५	मनु-मत्स्य सम्वाद में धर्म वंश वर्णन	२१३
८६	पतिव्रता माहात्म्य में सावित्री-उपाख्यान	२१५
८७	सावित्री-उपाख्यान (१)	२१९
८८	सावित्री-उपाख्यान (२)	२२५
८९	सावित्री-उपाख्यान (३)	२३०
९०	सावित्री-उपाख्यान (४)	२३५
९१	सावित्री-उपाख्यान (५)	२४०
९२	सावित्री-उपाख्यान (६)	२४३
९३	अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन...	२४७
९४	राजकृत्य वर्णन (१)	२६५
९५	राजकृत्य वर्णन (२)	२७२
९६	राजधर्म वर्णन (१)	२८५
९७	राजधर्म वर्णन (२)	२९०
९८	राजधर्म वर्णन (३)	२९६
९९	दैव और पुरुषार्थ में कौन वड़ा है ?	३०४
१००	राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णन	३०७
१०१	राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन	३०९
१०२	राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन	३११
१०३	राजधर्म वर्णन में दण्डोपाय वर्णन	३१३
१०४	राजधर्म वर्णन में देव साम्यत्व वर्णन	३१६

१०५–ग्रह यज्ञादि का विधान वर्णन ३१८
१०६–यात्राकाल विधान वर्णन ३२५
१०७–अंग स्फुरण विचार ३३०
१०८–स्वप्न दर्शन वर्णन ३३२
१०९–यात्रा के समय मङ्गल-अमङ्गल सूचक शकुन वर्णन ... ३३८
११०–वराहावतार के विषय में अर्जुन का प्रश्न ३४२
१११–वराहावतार चरित्र वर्णन ३५०
११२–क्षीरोद मथन वर्णन (१) ३६३
११३–क्षीरोद मथन वर्णन (२) ३७६
११४–क्षीरोद मथन वर्णन (३) ३८७
११५–प्रासाद, भवन आदि निर्माण ३९४
११६–गृह निर्माण काल वर्णन ३९७
११७–भवन निर्माण वर्णन ४०६
११८–स्तम्भमान निर्णय वर्णन ४१३
११९–भवन निर्माण वर्णन ४१८
१२०–दार्वाहरण वर्णन ४२४
१२१–प्रतिमा निर्माण वर्णन... ... ... ४२९
१२२–देवाकार प्रमाण वर्णन (१) ... ... ४[illegible]२
१२३ देवाकार प्रमाण वर्णन (२) ४४६
१२४–नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन ४५९
१२५-पीठिका लक्षण वर्णन ४६९
१२६–लिंग लक्षण वर्णन ४७३
१२७–देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)... ... ... ४७७
१२८-देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन(२) ४८४
१२९–कलियुगीन भावी राजा ४९३

मत्स्य पुराण

[द्वितीय खण्ड]

★

६१—नरसिंह माहात्म्य वर्णन

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्बधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्य तथा पापविनाशनम् ॥१
पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स सहत्तपः ॥२
दशवषसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ॥३
ततः शमदमाभ्याञ्च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४
ततः स्वयम्भूभगवान् स्वयमागम्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हसयुक्तेन भास्वता ॥५
आदित्यैवसुभिः साध्यैमरुद्भिर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥६
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे मुनिवर! इस समय में हम लोग हिरण्यकशिपु के वध के विषय में श्रवण करने की इच्छा रखते हैं तथा भगवान्

नरसिंह प्रभु के माहात्म्य को भी सुनना चाहते हैं जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है ।। १ ।। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र-वृन्द ! पहिले कृत युग में हिरण्य कशिपु प्रभु दैत्यों का आदि पुरुष था और उसने दश सौ दश हजार वर्ष तक महान् घोर तपश्चर्या की थी। वह स्नान–मौन और व्रत को धारण करने वाला होकर जल में ही निवास करने वाला हो गया था ।। २, ३ ।। इसके अनन्तर उस हिरण्य कशिपु दैत्यराज के उस महान् उग्र तप से और नियमों के परिपालन से–शम–दम और ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्माजी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये थे। जब वे अत्यधिक प्रसन्न हो गये तो स्वयम्भू भगवान् स्वय ही वहाँ पर उसके तप के स्थल पर आ गये थे। हंसयुक्त-सूर्य के समान वर्ण वाले भास्वान् विमान के द्वारा ब्रह्माजी ने वहाँ पर पदार्पण किया था। उस समय में उनके साथ आदित्य–वसुगण–साध्य–मरुद्गण–दैवत-रुद्र—विश्व सहायक—यक्ष—राक्षस —पन्नग—दिशाऐं–विदिशाऐं–नदियाँ—सागर नक्षत्र-मुहूर्त–खेचर और महान् ग्रह सब थे ।। ४ । ५ । ६ । ७ ।।

देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ।।८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ।।९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनसुव्रत ! ।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ।।१०
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम ! ।।११
ऋषयो वा न मां शापं शपेयुः प्रपितामह ।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतोमया ।।१२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाऽथवा ।।१३

भवेयमहमेवार्कः सोमोवायुर्हुताशनः ।
सलिलञ्चान्तरिक्षञ्च नक्षत्राणि दिशो दश ।।१४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणा वासवोयमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ।।१५

ब्रह्माजी जब वहाँ आये थे तो वे देवगण—ब्रह्मर्षि—सिद्ध और सप्तर्षियों के साथ में थे । बड़े २ राजर्षि–पुण्यवान्–गन्धर्व–अप्सराओं के समुदाय तथा समस्त दिवौकसों के साथ में वे चरों और अचरों के गुरु–ब्रह्मवेत्ताओं में परम श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी परिवृत थे । वहाँ पहुँच कर जगद्गुरु ब्रह्माजी ने उस दैत्यराज से यह वचन कहा था ।। ८ । ९ ।। हे सुव्रत ! तुम मेरे परम भक्त हो । मैं इस समय में आपके इस अत्यन्त उग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण हो, अब जो भी कोई वरदान मुझसे चाहते हो माँग लो और जो भी आपको परम अभीष्ट कामना हो उसे प्राप्त करलो ।। १० ।। यह ब्रह्माजी का वचन सुनकर हिरण्य कशिपु ने कहा—हे देव सत्तम ! मैं यही चाहता हूं कि देव–असुर–गन्धर्व–यक्ष–उरग–राक्षस–पिशाच और मानुष कोई भी मेरा हनन न करें ।। ११ ।। हे प्रपितामह ! ये ऋषिगण भी अपने शापों के द्वारा मुझे अभिशप्त न करने पावें । यदि भगवान् आप मुझ पर पूर्णतया प्रसन्न हो गये हैं तो मैं आपसे यही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ।।१२।। हे भगवन् ! मेरी मृत्यु का साधन कोई भी अस्त्र–शस्त्र—गिरि—पादप आदि न होवे अर्थात् इनमें किसी के भी द्वारा मैं न मारा जा सकूँ । मैं किसी भी शुष्क स्थल में अर्थात् भूमि पर और आर्द्र भाग में अर्थात् जल में न मरूँ । मुझे दिन में तथा रात्रि में किसी भी समय मे मृत्यु न आवे अर्थात् मुझे दिन और रात में कोई भी न मार सके ।। १३ ।। हे ब्रह्मन् ! मैं ही सूर्य्य हो जाऊँ तथा सोम—वायु और हुताशन मैं ही बन जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे अन्दर ही हो जावे । मैं ही सलिल—अन्तरिक्ष–नक्षत्र–दशों दिशाएँ हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे ही

अन्दर उपस्थित हो जावे। हिरण्यकशिपु ने कहा कि मैं ही क्रोध–काम–वरुण–इन्द्र–यम–धनद–धन का स्वामी किम्पुरुषों का अधिप यक्ष होजाऊँ अर्थात् इन सबकी क्षमता मेरे ही अन्दर हो जानी चाहिए और मेरे सामने ये सब शक्तिहीन हो जावें ॥१४॥१५॥

एते दिव्या वरास्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कामान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्वं न संशयः॥१६
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ॥१८
वरप्रदानाद्भगवन् ! बधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ।१९
भगवन् ! सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः ।
स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुधः ॥२०
सर्वलोकहितंवाक्यं श्रुत्वा देवःप्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्ववचनाम्बुभिः ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! ये सब दिव्य वरदान हैं और बहुत ही अद्भुत हैं किन्तु मैंने तुमको ये सभी वरदान दे दिये हैं। हे वत्स ! तुम अपने सम्पूर्ण कामों को सदा प्राप्त कर लोगे—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥ १६ ॥ इस प्रकार से उन भगवान् ब्रह्माजी ने कहा था और फिर आकाश के मार्ग से ही वापिस चले गये थे। ब्रह्माजी उस समय में ब्रह्मर्षि गणों से सेवित ब्रह्माजी का घर वैराज को चले गये थे ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् देव–नाग–गन्धर्व आदि सब ऋषिगण के साथ इस वरों के प्रदान को सुनकर ही ब्रह्माजी पितामह के समीप में उपस्थित हुए थे ॥ १८ ॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके इस प्रकार के वरदानों के दे देने से तो यह हमारा सबका बध कर डालेगा।

हे भगवन् ! इसलिये आप प्रसन्न होइये और शीघ्र ही इसका कोई वध होने का उपाय भी सोचिए ।। १९ ।। हे भगवन् ! आप तो समस्त भूतों के आदि कर्त्ता हैं और स्वयं प्रभु हैं। आप हव्यकव्यों के सृजन करने वाले हैं। अव्यक्त प्रकृति और परम बुध हैं। इस समस्त लोकों के हित करने वाले वाक्य को सुनकर प्रजापति देव ने सब सुरों को सुगीत बचन रूपी सुन्दर जलों के द्वारा समाश्वासन दिया था ।।२०।।२१।।

अवश्य त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ।।२२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ।।२३
लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽवाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ।।२४
आश्रमेषुमहाभागान् स मुनीन्शंसितव्रतान् ।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयामासदानवः ।।२५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ।।२६
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियांश्च देवताः ।।२७
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च बसवस्तथा ।
सेन्द्रा देवगणायक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ।।२८
शरण शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवदेव यज्ञमयं वासुदेव सनातनम् ।।२९

हे देवगणो ! उस असुर ने तपस्या की है अतएव उसका फल तो उसे अवश्य ही प्राप्त करना ही था। इस तप के फल के अन्त हो जाने पर इसका वध भगवान् विष्णु ही करेंगे।।२२।। हे विप्रो ! उस समय में

सब देवों ने पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले पितामह के इस वाक्य को श्रवण कर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानों को वे सब चले गये थे ।। २३ ।। ऐसे वरदानों को प्राप्त होने के साथ ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण प्रजाओं को बाधा में पहुँचाने लगा था । वह दैत्यराज हिरण्य कशिपु वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त हर्षित हो गया था अर्थात् उसे बड़ा घमण्ड हो गया था ।। २३ ।। २४ ।। वह दानव जो अपने २ आश्रमों में रहने वाले महाभाग मुनिगण थे और जो शासित व्रतों वाले–सत्यधर्म में परायण एवं परम दमनशील सत्पुरुष थे उन सबको धर्षित करने लगा था ।। २५ ।। त्रिभुवनों में स्थित देवों को उस महासुर ने पराजित करके पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में ले लिया था और वह दानव स्वयं स्वर्ग में निवास किया करता था । जिस समय में वह वरदान के मद से अत्यन्त ही उत्सिक्त हो गया था तब वह काल के धर्म से प्रेरित हो गया और दैत्यों को यज्ञिय बना दिया था और अयज्ञियों को देवता कर दिया था ।। २६. २७ ।। उस समय में आदित्य—साध्य—विश्वेदेवा—वसुगण—इन्द्र के सहित देवगण—यक्ष—सिद्ध—द्विज और महर्षि-वृन्द सबके सब महान् बल सम्पन्न भगवान् विष्णु की शरणागति में पहुँचे थे जो प्रभु देवों के भी देव—यज्ञमय सनातन वासुदेव थे और आप ही हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं—यह प्रार्थना करने लगे थे ।। २८, २९ ।।

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणंगताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ! ।।३०
त्वं हि नःपरमो धाता त्वं हि न परमो गुरुः ।
त्वं हि नःपरमोदेवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ।।३१
भयन्त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ।।३२

एषोऽहं सगण दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणं दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ।।३३
एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्यत्रिदशेश्वरान् ।
बधं सङ्कल्पयामास सिरण्यकशिपोः प्रभुः ।।३४
सहायश्च महाबाहुरोङ्कारं गृह्य सत्वरम् ।
अथोङ्कारसपायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ।।३५

देवगण ने भगवान् विष्णु से कहा- हे नारायण ! आप तो महान् भाग वाले हैं । हम समस्त देवगण आपकी शरणागति में उपस्थित हो गये हैं । हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करो और इस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु का वध करो ।।३०।। हे सुरोत्तम ! हम सबके आप ही परम धाता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं—आप ही हमारे सर्वोपरि विराजमान देव हैं और ब्रह्मा आदि सब में आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं ।।३१।। भगवान् विष्णु ने कहा—हे अमर गणो ! भय का पूर्ण रूप से त्याग करदो—मैं आपको अभय का दान करता हूं । हे देवताओ ! पूर्व को ही भाँति आप सब लोग अपने त्रिदिव को पुनः बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लोगे ।।३२।। यह मैं ही वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त घमण्ड में भरा हुआ जो यह दैत्यराज है उसको गणों के सहित मार दूंगा जो कि यह दानवेन्द्र अन्य सब अमरेन्द्रों के द्वारा अवध्य है ।।३३।। इस प्रकार से कहकर भगवान् ने उन सब त्रिदशेश्वरों को विसर्जित कर दिया था और फिर प्रभु ने उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वध के करने के लिये मन में सकल्प किया था । ३४।। सहायता करने वाले महावाहु प्रभु ने बहुत ही शीघ्र ओङ्कार का ग्रहण किया था । इसके अनन्तर अव्यय भगवान् विष्णु ओङ्कार की सहायता वाले हो गये थे ।।३५।।

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरोश्वरः ।
तेजसा भास्कराकारः शशो कान्त्येवचापरः ।।३६
नरस्य कृत्वार्द्धतनुं सिंहस्यार्द्धतनुं तथा ।

नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।।३७
ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ।।३८
विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम् ।
वैहायसीङ्कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम् ।।३९
जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम् ।
वेश्महर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।।४०
अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्म्मणा ।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ।।४१
नीलपीतसिश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ।।४२

ईश्वर हरि भगवान् हिरण्य कशिपु के स्थान को गये थे । उस समय में वह तेज से भास्कर के आकार के तुल्य और कान्ति से एक दूसरे चन्द्रमा के समान थे । नर का आधा शरीर बना कर तथा आधा शरीर सिंह का धारण करके नरसिंह वपु से युक्त होकर, पाणि के द्वारा पाणि का स्पर्श करते हुए हरि हिरण्य कशिपु की सभा में पहुँचे थे । वहां पहुँच कर उन्होंने अत्यन्त विस्तीर्ण–दिव्य–रम्य–मनोरम–समस्त कामों से समन्वित और शुभ्र दैत्यराज हिरण्य कशिपु की सभा का अवलोकन किया था ।।३६, ३७, ३८।। वह सभा सौ योजन विस्तार वाली-शत मध्यर्द्ध आयत–वैहायसी–काम पूर्वक गमन करने वाली तथा पाँच योजन विस्तृत थी ।।३९।। हिरण्यकशिपु की सभा जरा, शोक और क्लम से अपेत अर्थात् रहित थी तथा निष्प्राकम्प–शिव–सुखप्रद–वेश्म और हर्म्यों से संयुत रम्य एवं तेज से जाज्वल्यमान जैसी थी ।। ४० ।। इस सभा के मध्य में सलिल रहता था और इसकी रचना विश्वकर्म्मा के द्वारा की गयी थी । वह सभा परम दिव्य फल-पुष्प प्रदान करने वाले रत्नों से परिपूर्ण वृक्षों से समन्वित थी । नील–पीत–सित-श्याम–कृष्ण

लोहित अवतानों से युक्त तथा मन्जरी शतधारी गुल्मों से संयुत वह सभा थी जिसकी अवर्णनीय शोभा हो रही थी ।।४१, ४२।।

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत ।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ।।४३
सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा ।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्यतां प्राप्नुवन्ति ते ।।४४
नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरति भास्वरैः ।
स्तम्भैर्न विभृता सा वं शाश्वती चाक्षया सदा ।।४५
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।
रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्ष्याभोज्यमनन्तकम् ।।४६
पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
उष्णे शीतानि तोयानि शीतेचोष्णानिसंतिच ।।४७
पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालांकुरधारिणः ।
लतावितानसंच्छन्ना नदीषु च सरःसु च ।।४८
वृक्षान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानिच ।।४९

सित मेघाभ्र के सदृश वह सभा प्लवन करती हुई जैसी दिखलाई दिया करती थी। रश्मियों से युक्त—परम भास्कर और दिव्यगन्ध से समन्वित एवं मनोहर थी ।।४३।। सुन्दर सुखों से परिपूर्ण-दुःखों से रहित-न अधिक शीत युक्त और न घर्म को प्रदान करने वाली थी। वहां पर जो भी पहुँच जाया करते थे वे फिर भूख-प्यास और ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ करते थे। नाना प्रकार के रूपो वाले—विचित्र और भास्कर स्तम्भों से उपकृत वह सभा थी। वह विभृता नहीं थी प्रत्युत शास्वती तथा सदा अक्षया थी। उस सभा में सभी कामनाऐं चाहे वे दिव्य हों या मानुषी हों प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहा करती थीं। रस से युक्त—अन्त से शून्य प्रभूत भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ उसमें रहा करते थे ।।४४, ४५।।

॥४६॥ इस दैत्यराज की महासभा में पुण्य गन्ध वाले स्नराज भी और वहां के वृक्ष बारहों महीने नित्य ही पुष्प और फलों के प्रदान करने वाले थे। वहां पर उष्ण काल में शीतल और शीत काल में उष्ण जल रहा करते थे ॥४७॥ नदियों में और सरोवरों में ऐसे वृक्ष थे जिनके अग्रसर पुष्पित थे—जिनकी महान् शाखाएँ थीं और जो प्रवालांकुरों के धारण करने वाले थे तथा लताओं के वितानों से संच्छन्न थे ॥४८॥ मृगेन्द्र प्रभु ने वहां पर इस प्रकार के बहुत-सी तरह के वृक्षों को देखा था जिनमें गन्ध से युक्त पुष्प थे और रस से समन्वित फल थे ॥४९॥

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः ॥५०
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिशिखाज्वलितकुण्डलः ।
आसीनश्चासने चित्रे दश नल्वप्रमाणतः ॥५१
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते ।
दिव्यगन्धवहस्तत्रमारुतःसुसुखोववौ ॥५२
हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः ।
उपचेरुर्महादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा ॥५३
दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ।
विश्वाची सहजन्याच प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ॥५४
दिव्याथ सौरभेयीच समीचो पुञ्जिकस्थली ।
मिश्रकेशीचरम्भाचचित्रलेखाशुचिस्मिता ॥५५
चारुकेशी घृताचो च मेनका चोर्वशीतथा ।
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः ॥५६

उस समय में उस सभा में वह दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु समवस्थित था जो स्त्री समुदायों की सहस्र संख्या से परिवृत था तथा विचित्र आभरण और वस्त्रों से समलंकृत था ॥५०॥ बहुमूल्य मणि और वज्रों की रश्मियों की शिखाओं से ज्वलित कुण्डलों वाला था। दश नल्व प्रमाण से युक्त

विचित्र सिहासन पर वह दैत्य राज समवस्थित था। वह सिहासन सूर्य के समान परम दिव्य एवं दिव्य अस्तरण से संस्तृत था। वहां पर दिव्य गन्ध के वहन करने वाला सुन्दर सुख का देने वाला वायु वहन कर रहा था ।।५१, ५२।। वहां पर जाज्वल्यमान कुण्डलों वाला हिरण्य कशिपु दैत्यराज स्थित था। उस समय में हिरण्य कशिपु दैत्यराज की परिचर्या बहुत सी अप्सराऐं कर रहीं थीं ।।५३।। श्रेष्ठ गन्धर्वगण दिव्यतान के द्वारा गीतों का गान कर रहे थे। विश्वाची—सहजन्या—अभिविश्रुत-प्रम्लोचा—दिव्या—सौरभेयी—रुमीच—पुञ्जिक स्थली—मिश्र केशी—रम्भा–शुचिस्मित वाली चित्र लेखा–चारु केशी-घृताची–मेनका और उर्वशी ये और सहस्रों अन्य अप्सराऐं जो नृत्य तथा गीतों के गायन करने में परम विशारद् उस दैत्य राज की परिचर्य्या कर रहीं थीं ।। ५४ ।। ।। ५५, ५६ ।।

उपतिष्ठन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ॥५७
उपासन्त दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा।
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः ॥५८
बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः।
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः। ५९
सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः।
घटादरो महापार्श्वः क्रथनः कठिनस्तथा ॥६०
विश्वरूपः सुरूपश्च स्वलश्च महाबलः।
दशग्रीवश्च वालीच मेघवासा महासुरः। ६१
घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः।
दैत्यदानसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ॥६२
स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ॥६३

वहां पर उस महती राज सभा में समवस्थित महान् वाहुओं वाले महाराज हिरण्य कशियु प्रभु की सेवा में सब उपस्थित होकर सेवाऐं कर रहे थे ।।५७।। दिति के सभी पुत्र जिन्होंने वरदान प्राप्त कर लिये थे वे सब सैकड़ों और सहस्रों की सख्या में अप्रतिम कर्म्म वाले उस दैत्यराज की उपासना कर रहे थे। उन दैत्यों में वलि–विरोचन–नरक–पृथिवी सुत–प्रह्लाद–विप्रचित्ति–श्रदासुर गविष्ठ–सुरहन्ता दुःख हन्तल–सुनामा—सुमति वर—घटोदर–महापार्श्व—क्रधन—कठिन—विश्वरूप—सुरूप—सबल—महाबक—हशग्रीव–वाली–महासुर मेघ वासा—धरास्य–धम्पन–प्रजन–इन्द्र तापन आदि थे। इन सब दैत्य दानवों के संघ थे जो सभी जाज्वल्पमान कुण्डलों वाले थे ।।५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२।। सभी लोग स्रग्वी अथात् मालाधारी–वाग्मी और सदैव चरित व्रत वाले थे। इन सभी ने वरदान प्राप्त कर लिये थे—सब शूर वीर और मृत्यु के भव से रहित थे ।।६२।।

एते चान्ये च बदवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
उपासन्ति महात्मान सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ।।६४
विम नैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ।
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदवाहवः ।।६५
भूषिताङ्गा दितेःपुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः ।
तस्यां सभायान्दिव्यायाममुराःपर्वतोपमाः ।।६६
हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ।
न श्रुतन्नं दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्यथा ।।६७
ऐश्यय दैत्यसिहस्य यथा तस्य महात्मनः ।
कनकरजतचित्रवेदिकायां परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम् ।।६८
कनकविमलहारविभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपोददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभालसं तन्दितिजसहस्रशतै निषेव्यमाणम् ।।६९

ये तथा अन्य बहुत-से दिव्य परिच्छदों वाले सब असुरगण महान् आत्मा वाले उस प्रभु हिरण्य कशिपु की उपासना कर रहे थे ।।६४।। विविध भाँति के आकार-प्रकार वाले अग्नि के सदृश भ्राजमान विमानों के द्वारा अद्भुत अङ्गदों से समलकृत वाहुओं वाले और महेन्द्र के तुल्य वपु को धारण करने वाले-भूषित अङ्गों से युक्त सब दिति के पुत्र सभी ओर से उस दैत्यराज की समुपासना कर रहे थे । उस महान् राजसभा में जो कि अत्यन्त दिव्य थी सभी असुरगण पर्वत के समान विशाल थे । ।।६५, ६६।। सभी लोग हिरण्य वपु वाले वहां पर थे जिनकी दिवाकर के तुल्य प्रभा थी दैत्यों में सिंह के समान उस महान् आत्मा वाले हिरण्य कशिपु का जैसा ऐश्वर्य था वैसा न तो कभी किसी का देखा गया था और न कहीं पर सुना ही गया था । जिस सभा में स्थित होकर वह मृगाधिप नरसिंह देख रहे थे वह भली भाँति निर्मित गवाक्षों से सुशोभित थी और परिहृत किये हुए रत्नों से विचित्र वीथिका वाली थी तथा सुवर्ण एवं चाँदी की निर्मित अद्भुत वेदिका से समन्वित थी ।। उन मृगाधिप नरसिंह प्रभु ने सुवर्ण के विमल हारों से विभूषित अङ्गों वाले तथा सूर्य के तुल्य महती प्रभा से युक्त और सैकड़ों एवं सहस्रों दैत्यों के द्वारा सेवित उस दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु को देखा था ।। ६७ ।। ६८ ।। ६९ ।।

६२ —नरसिंह हिरण्यकशिपु युद्ध वर्णन

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम् ।
नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ।।१
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादोनाम वीर्यवान् ।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ।।२

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभतपूर्वान्तनुमाश्रितम् ।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ।।३
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
न श्रुतं न च नोदृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ।।४
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
दैत्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम ।।५
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्चयाः ।
हिमवान्पारियात्रश्चयेचान्येकुलपर्वताः ।।६
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यर्वसुभिः सह ।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ।।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा--जिस समय में नरसिंह भगवान् उस सभा में पहुँचे थे तो उस समय में हिरण्य कशिपु के पुत्र वीर्यवान् प्रह्लाद ने महान् आत्मा वाले नरसिंह के शरीर में छिपे हुए साक्षात् आये हुए काल चक्र के समान तथा भस्म में छन्न अग्नि के समा उनको आरम्भ में देखा था ।।१, २।। वहां पर स्थित सब दानवों ने और उस हिरण्य कशिपु ने भी पूर्व शरीर में समाश्रित सुवर्ण के पर्वत की आभा वाले उन नरसिंह प्रभु को देखकर सभी को उस समय में बहुत विस्मय हो गया था ।।३।। उसी समय में प्रह्लाद ने कहा था—हे महान् वाहुओं वाले ! हे महाराज ! हे दैत्यों के आदि जन्मधारी ! मैंने तो अब तक ऐसा नारसिंह वपु न कभी देखा है और न कहीं पर सुना ही है । यह अव्यक्त प्रभव (जन्म) वाला—परम दिव्य क्या रूप सामने में आ गया है ? मेरे मन में तो ऐसा ही संशय हो रहा है कि यह कोई घोर स्वरूप वाला दैत्यों के अन्त कर देने वाला ही यहाँ आकर समुपस्थित हुआ है ।।४, ५।। इनके इस विशाल शरीर में समस्त देवगण स्थित हैं—सब सागर—समस्त नदियाँ—हिमवान्—पारियात्र और अन्य सब कुल पर्वत भी इनके शरीर में विद्यमान हैं । समस्त नक्षत्रों के साथ तथा वसु गण और आदित्यों के

सहित चन्द्रमा भी इसमें वर्त्तमान हैं। धनद (कुवेर)—वरुण—यम और शची का पति इन्द्र देव भी इनके इस नारसिंह शरीर में विद्यमान दिखलाई दे रहे हैं ॥६, ७॥

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः ॥८
ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै ।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानितथैवच ॥९
भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा ॥१०
सर्वं त्रिभुवनं राजन् ! लोकधर्माश्च शाश्वताः ।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिस्तथेदमखिलं जगत् ॥११
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगश्च महीरुहाश्च ।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च ॥१२
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे ।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो धर्म्मश्च मोहः पितरश्च सर्वे ॥१३
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
उवाच दानवान् सर्वान् गणांश्च स गणाधिपः ॥१४
मृगेन्द्रा गृह्यतामेष अपूर्वं सत्वमास्थितः ।
यदि वा संशयः कश्चिद्वध्यतां वनगोचरः ॥१५

मरुद्गण—देव—गन्धर्व—तप के ही धनों वाले सब ऋषि वृन्द—नाग—यक्ष—पिशाच—भीम विक्रम वाले राक्षस—ब्रह्मा—देव पशुपति ये सब इनके ललाट प्रदेश में स्थित हुए भ्रमण कर रहे हैं। सम्पूर्ण स्थावर तथा सभी जङ्गम जीव इनके शरीर में दिखलाई दे रहे हैं ॥८, ९॥ सब देवों से परिवृत हम सबके सहित आप भी इनके शरीर में स्थित देखे जा रहे हैं। सैकड़ों विमानों से सङ्कीर्ण यह आपकी महती राज सभा तथा हे राजन् यह सम्पूर्ण त्रिभुवन और समस्त शाश्वत लोक धर्म इस नारसिंह

शरीर में दिखाई दे रहे हैं। उसी भाँति यह सम्पूर्ण जगत्–महात्मा प्रजापति मनु—सब ग्रह—योग—महीरुद्र इसमें दृष्टिगत हो रहे हैं ॥१०॥ ॥११, १२॥ इनके अतिरिक्त उत्पात का काल—धृति—मति—रति—सत्य–तप–दम इसमें विद्यमान हैं। महानुभाव सनत्कुमार—विश्वेदेवा—सब ऋषिगण—क्रोध—काम—हर्ष–धर्म—मोह—सब पितृगण इनके इस महान् विशाल एवं परम दिव्य शरीर में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहे है। ॥१३॥ इस प्रकार के कहे हुए वचन का श्रवण कर वह गणों का अधिप प्रभु हिरण्य कशिपु समस्त दानवों और गणों से यह बोला था—देखो, आप सब मिलकर इस अत्यन्त अद्भुत अपूर्व सत्त्व के रूप में संस्थित नरसिंह को पकड़ लो और यदि कुछ भी संशय हो तो इन वन में भ्रमण करने वाले को मार डाला ॥१४, १५॥

ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम् ।
परिक्षिपन्ता मुदितास्त्रासयामासुरोजसा ॥१६
सिंहनाद विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः ।
बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्यइवान्तकः ॥१७
सभायांभज्यमानायांहिरण्यकशिपुःस्वयम् ।
चिक्षेपास्त्राणिसिंहस्यरोषाद्व्याकुललोचनः ॥१८
सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम् ।
कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम् ॥१९
पैतामहं तथात्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत् ।
विचित्रामशनीञ्चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम् ॥२०
रौद्रं तथोग्रं शूलञ्च कङ्कालं मुसल तथा ।
मोहनं शोषण चैव सन्तापनविलापनम् ॥२१

हिरण्य कशिपु के इस आदेश को प्राप्त करके वे समस्त दानवगण उस भीम विक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षेप करते हुए बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे और वे सब अपने ओज के बल से उन नरसिंह प्रभु को त्रास देने

लगे थे ॥१६॥ उस समय में महान् बलशाली नरसिंह प्रभु ने एक सिंहनाद करके उस सम्पूर्ण हिरण्य कशिपु की सभा का फैलाये हुए मुँह वाले अन्तक काल के समान भङ्ग कर दिया था ॥१७॥ जिस समय में वह पूरी सभा भज्यमान हो गई थी तब हिरण्य कशिपु ने स्वयं ही रोष से व्याकुल नेत्रों वाला होकर उन नरसिंह भगवान् के शरीर पर अपने ही अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। समस्त अस्त्रों में सबसे बड़ा—महान् दारुण दण्ड अस्त्र—घोर काल चक्र—परमोत्तम विष्णुचक्र तथा अत्यन्त ही उग्र पितामह का अस्त्र जो इस महान् त्रैलोक्य के दाह कर देने वाला था इन सब अस्त्रों से हिरण्य कशिपु ने नारसिंह वपु पर प्रहार किये थे। विचित्र अशनी तथा शुष्क और आर्द्र दोनों प्रकार के अशनि—रौद्र तथा उग्रशूल—कङ्काल—मुसल—मोहन—शोषण—सन्तापन—विलापन नाम वाले अस्त्रों से दैत्यराज ने नरसिंह प्रभु के शरीर पर डर-डर कर प्रहार पर प्रहार किये थे ॥१८, १६, २०, २१॥

वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैङ्करम् ।
तथाप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥२२
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा ।
कम्पनं शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभैरवम् ॥२३
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनञ्च महाबलम् ।
संवर्तनं मादनञ्च तथा मायाधरं परम् ॥२४
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ।
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ॥
अस्त्रं पाशुपतञ्चैव यम्याप्रतिहता गतिः ॥२५
अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ।
नारायणास्त्रमैन्द्रञ्च सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम् ॥२६
पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा ।
महाबलं भावनं च प्रस्थापनविकम्पने ॥२७

एतान्यस्त्राणि दिव्याणि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ॥ ८

वायव्य, मथन, कापाल, कैङ्कर, अयुतिहता शक्ति, क्रौञ्च अस्त्र, ब्रह्म शिरास्त्र, सोमास्त्र, शिशिर. कम्पन, शतन, त्वाष्ट्र, सुभैरव, कालमुद्गर, अक्षोभ्य, महाबल, तपन, सम्वर्त्तन, मादन, परमायाधर, गान्धर्वास्त्र, दयित, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, उत्तम वारुणास्त्र और पशुपत अस्त्र जिसकी गति अप्रतिहत हुआ करती है ॥२२, २३, २४, २५।' हयशिर अस्त्र, ब्राह्मास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्र, अद्भुत सार्प अस्त्र, पैशाचास्त्र, अजित, शोषद, शामन, महाबल, भावन, प्रस्थापन, विकम्पन इन सब अस्त्रों को जो महान् दिव्य थे दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने भगवान् नरसिंह के शरीर पर छोड़ दिया था किन्तु वे सब अस्त्र उनके शरीर का स्पर्श करते ही ऐसे नष्ट भ्रष्ट होकर भस्मसात् हो गये थे जिस तरह से प्रदीप्त हुई अग्नि में हवि पड़ते ही जल कर भस्म हो जाया करती है ।।२६।। ।। २७, २८ ।।

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमाः ।
विवस्वान् धर्म्मसमयेहिमवन्तमिवांशुभिः ।।२९
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः ।।३०
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिमुंसलैस्तथा ।
वज्ररशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः ।।३१
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ।।३२
ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगाः ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकायाः स्थितास्त्रिशीर्षा इव नागपाशाः ।।३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इव भान्ति विशालपक्षाः ।।३४

उन असुरोत्तमों ने घर्म के समय में विवस्वान् अपनी किरणों से हिमवान् की तरह प्रज्वलित अस्त्रों के द्वारा उन नृसिंह प्रभु को आवृत्त कर दिया था ।। २६ ।। अमर्ष की अग्नि से उद्भूत दैत्यों के उस सेना-रूपी सागर ने क्षण भर में मैनाक को समुद्र की भाँति सबको प्लावित कर दिया था ।। ३० ।। असुरों की उस विशाल सेना ने प्राश–पाश–खड्ग–गदा — मूसल–वज्र–अशनि–अग्नि के सहित महान् द्रुम–मुद्गर–भिन्दिपाल, शिला, उलूखल, पर्वत, दीप्त शतघ्नी और सुदारुण दण्ड आदि के द्वारा नृसिंह प्रभु पर प्रहारों की भरमार करदी थी ।।३१, ३२।। पाशों को हाथों में ग्रहण करने वाले, महेन्द्र के समान अशनि वज्र के वेग से युक्त सभी ओर से अभ्युद्यत बाहु और काया वाले वे सब दानव तीन शीर्षों वाले नागपाशों की भाँति स्थित थे ।। ३३ ।। सुवर्ण की मालाओं के समूह से विभूषित अङ्गों वाले तथा पीत वर्ण के वस्त्ररूपी आभोग से विभावित अङ्गों से युक्त और मुक्तावली की माला से समन्वित कक्षों से संयुत विशाल पक्षों वाले हंसों के तुल्य वे दानवगण शोभित हो रहे थे ।। ३४ ।।

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीवलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ।।३५
त्विपद्भिरुग्रर्ज्वलितैर्महावलैर्महास्त्रपूगैः सुसमाबृतो बभो ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरोद्रुमैः ।।३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ।।३७
सन्त्रासितास्तेन नर्सिहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धुताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ।।३८

वायु के समान ओज से युक्त, केयूर-मोली और बलय से उत्कट उन दानवों के उत्तम अङ्ग सभी ओर से प्रातःकाल के सूर्य्य की किरणों के तुल्य प्रभा वाले विभात हो रहे थे ।। ३५ ।। वह नरसिंह प्रभु महान

बलों वाले, उग्र, ज्वलित, दानवों के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए महान् अस्त्रों के समूहों से भली भाँति आवृत होकर कन्दराओं के अन्दर अन्धकार कर देने वाले द्रुमों से और निरन्तर वर्षा करते हुए मेघों से पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहे थे ।। ३६ ।। महान् बलवान्—सब ओर से एकत्रित हुए उन दैत्य गणों के द्वारा महान् अस्त्रों के जाल से हन्यमान भी वह नृसिंह प्रभु उस युद्ध स्थल में प्रताप से स्थित प्रकृति के द्वारा हिमाचल की भाँति बिल्कुल भी कल्पायमान नहीं हुए थे ।। ३७ ।। उन नृसिंह के रूपधारी भगवान् के द्वारा जिनका पावक के समान तेज था वे सब दिति के पुत्र दैत्य सन्त्रासित कर दिये गये थे और वे सब भय से भीत होकर पवन से उद्धूत अङ्गों वाली सागर के जल में समुत्पन्न उर्मियों की भाँति भय से बिचलित हो गये थे अर्थात् भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये थे ।। ३८ ।।

६२–अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध

खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः ।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिताः ।।१
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा ।
अर्द्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा ।।२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ।
सिंहास्यालेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ।।३
द्विजिह्वकावक्त्रशीर्षास्तथोल्का मुखसंस्थिताः ।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवाबलदर्पिताः ।।४
शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शरवृष्टिभिः ।
अबध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे ।।५
एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवेश्वराः ।

मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगाः ।।६
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः ।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ।।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस महान् भीषण युद्ध में बहुत से दानवों ने नृसिंह भगवान् से युद्ध किया था जिनके नाम ये हैं—खर, खर मुख, मकराशी, विषानन, ईहामृगमुख, वराह मुख, बाल सूर्यमुख, घूमकेतु मुखअ,द्ध चन्द्रार्ध मुख,अग्निदीप्तमुख,हंस कुक्कुट मुख व्यादितास्य,भयावह सिंहास्य लेलिहान, काक गृध्रमुख, द्विजिह्व, द्विवक्त्र, द्विशीर्ष, उल्कामुख, महाग्राह मुख आदि महान् भीषण मुखाकृतियों वाले बल के घमण्ड से परिपूर्ण दानव थे जो शैल के समान संवर्म वाले और वध के अयोग्य भगवान् मृगेन्द्र के शरीर में निरन्तर शरों की वर्षा से भी युद्ध में किञ्चित् मात्र भी व्यथा न कर सके थे ।। १, २, ३, ४, ५।। इसी प्रकार से फिर दूसरी बार उन दानवेश्वरों ने अत्यन्त क्रोधित होकर गर्म श्वास छोड़ते हुए फुस्कारें करने वाले सर्पों की भाँति मृगेन्द्र प्रभु के शरीर के ऊपर दूसरे परम घोर अस्त्रों को छोड़ा था ।। ६ ।। वे सब दानवेन्द्रों के द्वारा प्रक्षिप्त किये हुए अतीव घोर दानवीय शर पर्वत में खद्योतों की भाँति आकाश में जाकर विलय को प्राप्त हो गये थे ।।७।।

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्या क्रोधसमन्विताः ।
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्ततः ।।८
तैरासीद्गगनं चक्रैः सम्पतद्भिरितस्ततः ।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ।।६
तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमात्मना ।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्चिःसमानिवं ।।१०
तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै ।
मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ।।११
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम् ।

शक्ति प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतड़ित्प्रभाम् ।।१२
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् ।
हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ।।१३
रराज भग्नासाशक्तिर्मृगेणमहीतले ।
स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केवदिवश्च्युता ।।१४

इसके उपरान्त उन दैत्यों ने महान् क्रोध से समन्वित होकर चारों ओर से प्रज्वलित होने वाले दिव्य चक्रों को नरसिह प्रभु के शरीर पर बड़ी ही शीघ्रता से छोड़ दिये थे ।। ८ ।। इधर-उधर गिरने वाले उन चक्रों से युग के अन्त में भली भाँति प्रकाश करने वाले चन्द्र–सूर्य्य ग्रहों की भाँति उस समय में आकाश था ।।९।। अशमात्मा उन मृगेन्द्र(नरसिंह) के द्वारा वे समस्त चक्र उस समय में अग्नि की अर्थियों के तुल्य ग्रस्त और उदीर्ण होते थे ।।१०।। वे सब चक्र जो दानवों के द्वारा नरसिंह प्रभु पर छोड़े गये थे उन्हीं के मुख में प्रवेश प्राप्त करते हुए मेघोदर हरीओं में चन्द्र-सूर्य्य ग्रहों के समान शोभा दे रहे थे ।। ११ ।। हिरण्य कशिपु दैत्यराज ने पुनः अत्यन्त प्रज्वलित–परम घोर–धौत शस्त्र विद्युत की प्रभा से समन्वित अतीव अजित शक्ति का प्रहार नरसिंह भगवान् पर किया था ।। १२ ।। उस समय में अत्यन्त समुज्वल अपने ऊपर आयतन करती हुई शक्ति को देखकर नृसिह भगवान् ने महान् रौद्र हुङ्कार की ध्वनि से ही उसका भञ्जन कर दिया था ।। १३ ।। महीतल में मृगेन्द्र भगवान् के द्वारा भग्न की हुई वह शक्ति विस्फुलिङ्गों से युक्त और प्रज्वलित दिवलोक से च्युत महोल्का के समान शोभित हो रही थी ।। १४ ।।

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे विदूरतः ।
नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना ।।१५
स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम् ।
तत्सैन्यमप्सारितवान् तृणाग्राणोव मारुतः ।।१६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः ।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिश्रृङ्गैर्महाप्रभैः ॥१७
तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूर्द्धं निपातितम् ।
दिशांदश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ॥१८
तदाश्मौघंर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
छायायां चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥१९
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघादेवसत्तमम् ।
भीमवेगोऽचलश्रेष्ठं समुद्र इव मन्दरम् ॥२०
ततोऽश्मवर्षेविहिते जलवर्षमनन्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ॥२१

नृसिंह भगवान् के शरीर पर प्राप्त हुई नाराचों की पंक्ति से ही नीलोत्पल के पलाशों की उज्वल दर्शन वाली माला के समान दीप्तिमान हो रही थी ॥ १५ ॥ नृसिंह महाप्रभु ने न्यायानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक वल-विक्रम दिखाकर उस दानवेन्द्र की सेना को तिनकों के अग्रभागों को बायु की तरह अपसारित कर दिया था ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त दैत्येन्द्रों ने आकाश में स्थिति होते हुए नग मात्र शिला खण्डों के द्वारा, महती प्रभा से युक्त गिरि के श्रृङ्गों के द्वारा पाषाणों की वर्षा का विसर्जन कर रहे थे। वह पत्थरों की महान् वर्षा नरसिंह प्रभु के मस्तक पर डाली गयी थी और वह दशों दिशाओं में खद्योतों के प्रकरों की भाँति विकीर्ण हो गयी थी ॥ १७, १८ ॥ अरियों के दमन करने वाले नृसिंह प्रभु को फिर उन दैत्यों के गणों ने पाषाणों की वृष्टि में डाले हुए पत्थरों के द्वारा मेघ जैसे अपनी वर्षाई हुई जल की धाराओं से पर्वत को ढाँक दिया करते हैं वैसे ही छाया में कर दिया था ॥ १९ ॥ उन दैत्यों के विशाल समुदायों ने देवों में परम श्रेष्ठ नृसिंह महा प्रभु को जिस प्रकार से भीम वेग वाला सागर अचलों में श्रेष्ठ मन्दराचल को चलायमान कर दिया करता है उसी तरह से चलायमान कर दिया था ॥ २० ॥

इसके उपरान्त उस पाषाणों की की गई वर्षा के अनन्तर जल की वृष्टि से अक्षमात्र धाराओं के द्वारा चारों ओर से प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ २१ ॥

नभसःप्रच्युताधारास्तिग्मवेगाः समन्ततः।
आवृत्यसर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा ॥२२
धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाञ्च सर्वशः ।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्तोऽनिशं भुवि ॥२३
बाह्यतो ववृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषुः ।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ॥२४
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ॥२५
महेन्द्रस्तोयदैः सार्द्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः ।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ॥२६
तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः ।
असृजत् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः ॥२७
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ॥२८

आकाश से अत्यन्त तीव्र वेगों वाली गिरी हुई धाराऐं चारों ओर से आवृत करके सभी व्योम-दिशाओं और उप दिशाओं को घेर करके हो रही थीं तथा दिवलोक में और सर्वत्र पृथ्वी में निरन्तर गिरती हुईं वे धाराऐं इस भूमण्डल में उन नृसिंहदेव का फिर स्पर्श नहीं कर रही थीं ॥ २२, २३ ॥ वे धाराऐं बाहिर से वर्ष रहीं थीं किन्तु उनके ऊपर वे नहीं बरस रही थीं उस युद्ध स्थल में एक मृगेन्द्र के प्रतिरूप धारण करने वाले प्रभु की माया से उस तुमुल पाषाणों की वर्षा के हत होने पर तथा जल की वर्षा के एकदम शोषित कर डालने पर फिर उस दानव ने अग्नि और वायु से समीरित माया का सृजन किया था ॥ २४, २५ ॥

उस समय में महान् द्युति वाले सहस्राक्ष महेन्द्रदेव ने जलदों के द्वारा महान् जल की वृष्टि से उस मायाकृत अग्नि का शमन कर दिया था। जब वह माया भी प्रतिहत करदी गई तो उसके पीछे युद्ध में उस महादानव ने चारों ओर में महान् घोर तम का बड़ी ही तीव्रता के साथ विशेष रूप से सृजन किया था ।। २६, २७ ।। सम्पूर्ण लोक तम से जब परिवृत हो गया था तो उस समय में आयुधों के धारण करने वाले उन दैत्यों के विशाल समुदाय में वह महाप्रभु नृसिहदेव अपने ही तेज से परिवृत्त होकर दिवाकर के समान शोभा सम्पन्न होगये थे ।।२८।।

त्रिशाखां भ्रुकुटीञ्चास्य ददृशुर्दानवा रणे ।
ललाटस्थां त्रिशूलाङ्कां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥२६
ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ।
हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णाः शरणं ययुः ।।३०
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा ।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ।।३१
आवाहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः ।
परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ।।३२
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः ।
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ।।३३
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुभवन्ति वै ।
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ।।३४
अन्यङ्गते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः ।
संग्रहः सहनक्षत्रै राकापतिररिन्दमः ।।३५

रणस्थल में स्थित दानवों ने फिर इन नृसिह प्रभु की तीन शाखाओं वाली भृकुटी का त्रिशूल से अङ्कित ललाट प्रदेश में स्थित त्रिपथ गामिनी गङ्गा की भाँति दर्शन किया था। इसके अनन्तर जब सभी की गयी मायाऐं हत हो गयी थीं तो वे सब दिति के पुत्र महादैत्य गण विवर्ण

होकर दैत्यराज हिरण्य कशिपु की शरणागति में प्राप्त हो गये थे ।। २६, ३० ।। इसके पश्चात् वह मानों अपने ही तेज से सबको प्रदग्ध कर रहा था वह दैत्यराज महान् क्रोध से प्रज्वलित हो गया था। जब वह दैत्येन्द्र इस भाँति क्रुद्ध हो गया तो उस समय में सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से परिपूर्ण हो गया था ।। ३१ ।। उत्पातों के भय को सूचित करने वाले और महान् बल तथा पराक्रम से युक्त आवह–प्रवह–विवह–उदावह–परावह–संवह और परिबह ये सात प्रकार के मरुत परम क्षुभित होते हुए आकाश में सञ्चरण करने वाले दिखलाई दे रहे थे ।। ३२, ३३ ।। जो ग्रह सम्पूर्ण लोकों के क्षय होने के समय में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं वे सभी ग्रह यथा सुख आकाश में विचरण करते हुए देखे गये थे। रात्रि में निशाचर मार्ग में अन्यगत हो जाने पर विचरण कर रहा था और अरिन्दम राकापति का नक्षत्रों के सहित संग्रहीत कर लिया गया था ।। ३४ ।। ३५ ।।

विवर्णताञ्चा भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ।
कृष्णं कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि ।।३६
अमुञ्चचार्चिषां वृन्द भूमिवृत्तिर्विभावसुः ।
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते ।।३७
सप्त धूम्रनिभा घोराः सूर्य्या दिवि समुत्थिताः ।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ।।३८
वामेन दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रवृहस्पती ।
शनैश्चारो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमुद्यती ।।३६
समं समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचाराः ।
शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ।।४०
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रै ग्रंहैः सह तमोनुदः ।
चराचरविनाशाय रोहिणी नाभ्यनन्दत ।।४१
गृह्यते राहुणाचन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ।

उल्काः प्रज्वलिताश्चान्द्रे विचरन्ति यथासुखम् ।।४२

भगवान् दिवाकर दिव लोक में विवर्णता को प्राप्त हो गये थे और वह उस सुमहान् दिवलोक में कृष्ण कबन्ध की भाँति दिखलाई दे रहे थे । ।।३६।। अर्चियों का वृन्द यह—भूमि वृत्ति–विभावसु और गगन में स्थित भगवान् अभीक्षण में परिदृश्यमान हो रहे थे ।।३७।। दिवलोक में धूम्र के तुल्य महान् घोर सात सूर्य समुत्थित हो गये थे । गगन में स्थित सोम के श्रृङ्ग में गमन करने वाले ग्रह स्थित हो गये थे ।। ३८।। उसके वाम भाग में और दक्षिण भाग में शुक्र और वृहस्पति ग्रह स्थित हो गये थे। शनैश्चर और लोहितरङ्ग अग्नि के अङ्ग के समान द्युति वाले थे । वे सम्पूर्ण गगन चर समरूप से ही समधि रोहण कर रहे थे . ये युगान्त में आवर्त्तन करने वाले महान् घोर ग्रह, शनैः–शनैः श्रृङ्गों पर अधिरोहण और करते थे । तमका नोदन करने वाला चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहों के सहित चराचर सबके विनाश करने के लिये रोहिणी का अभिनन्दन नहीं कर रहा था । ।।३९, ४०, ४१।। राहु के द्वारा चन्द्र निगृहीत हो रहा था और उल्काओं से उसका अभिहनन किया जा रहा था । प्रज्वलित उल्काऐं सुख पूर्वक चन्द्रमा में विचरण कर रहीं थीं ।।४२।।

देवानामपि यो देवः साऽप्यवर्षतशोणितम् ।
अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपामहा स्वनाः ।।४३
अकाले च द्रुमाःसर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ।
लताश्च सफलाःसर्वा येचाहुर्दैत्यनाशनम् ।।४४
फलेःफलान्यजायन्त पुष्पैःपुष्पं तथैव च ।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्तिच रुदन्ति च ।।४५
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च ।
प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम् ।।४६
आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः ।
चक्रुः सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम् ।।४७

नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदका: ।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुला: ।।४८
वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हा: कथञ्चन ।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च ।।४९

ज्योतिष के अनुसार युगान्तकारी महान् भीषण ग्रहों की स्थिति जो उस समय हुई थी—यह जतला कर उसका प्रतिफल बतलाते हुए कहते हैं कि समस्त देवों का भी जो देव है वह भी इस भीषण ग्रहों की स्थिति के कारण रक्त की वर्षा कर रहा था और गगन से महान् घोर ध्वनि करने वाली विद्युत् के स्वरूप में स्थित उल्काओं का पतन हो रहा था ।।४३।। अकाल में ही सब वृक्ष पुष्प और फल देने वाले हो गये थे जो कि महान् उत्पात के सूचक थे । सम्पूर्ण लताऐं भी फलों से युक्त हो गईं थीं जो दैत्यों के विनाश को स्पष्ट तया बतला रहीं थीं ।।४४।। फलों में से फल और पुष्पों के द्वारा पुष्पों की उत्पत्ति होने लग गयी थी । ये सब उन्मीलित और निमीलित हुआ करते थे तथा कभी २ हँसते थे और किसी समय में रुदन करने वालेथे। ये सब महा विनाश की सूचना करने वाले हो गये थे ।।४५।। समस्त देवों की प्रतिमाऐं जो अति गम्भीर थीं—धूमित बना रही थीं और प्रज्वलित हो जाया करती थीं । ये सभी महान् भय के समागम को प्रकट कर रही थीं और महान् असगुन को ज्ञात कराती थीं। ग्राम्य पशुगण और पक्षिवृन्द आरण्यक (जंगली) पशु-पक्षियों के साथ संसृष्ट होने लगे थे । वहां पर अत्यन्त भैरव उपस्थित महान् युद्ध करने लगे थे । कलुषित जलों से युक्त होकर सभी नदियाँ प्रतिकूल रूप से बहने लगी थीं । सभी दिशाऐं लाल वर्ण की रेणुओं से समाकुल होकर प्रकाश नहीं करने वाली हो गई थीं । पूजन करने के योग्य वनस्पतियाँ किसी भी समय में पूजित नहीं हो रही थीं और वायु के वेग से वे सब हन्यमान—भञ्जन शील और नीचे की ओर झुकी हुई हो गई थीं ।। ४६ ।। ।।४७, ४८, ४९।।

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्त्तते ।
अपह्णगते सूर्ये लोकानां युगसंक्षये ।।५०
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु ।।५१
असुराणां विनाशायसुराणांविजयाय चा ।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शनाः ।।५२
एते चान्ये चा बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः ।
दैत्येन्द्रस्य विनाशायदृश्यन्ते कालनिर्मिताः ॥५३
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः ।।५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रै विमुञ्चान्तो हुताशनम् ।
चातुःशीर्षाः पञ्चाशीर्षाः सप्तशीर्षाश्चापन्नगाः ॥५५
वासुकिस्तक्षकश्चौव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
एलामुख, कालिकश्च महापद्मश्चा वीर्यवान् ।।५६
सहस्रशीर्षा नागोवै हेमतालध्वजः प्रभुः ।
शेषोऽनन्तोमहाभागो दुष्प्रकम्प्यःप्रकम्पितः । ५७
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि चा ।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ।।५८

जिस समय में समस्त प्राणियों की छय्या परिवर्त्तित नहीं होती है और लोकों के युग संक्षय में सूर्य्य भगवान् अपराह्ण गत हो जाया करते हैं ।।५०।। उस समय में दैत्यराज हिरण्य कशिपु के निवास-गृह के ऊपर भाण्डागार और आपुधागारयें मधु निविष्ट हो गया था ।।५१।। घोर निदर्शन वाले विविध भाँति के स्वरूप वाले महान् उत्पात इन असुरों के विनाश के लिये तथा देवगणों की विजय प्राप्त होने के लिये दिखलाई दे रहे थे ।।५२।। अन्य भी और जो बहुत-से अत्यन्त घोर उन्पात उठ खड़े हुए थे वे सब काल बली के द्वारा विनिर्मित उस दैत्येन्द्र के सर्व तो भाव

से विनाश के लिये ही दिखलाई दे रहे थे ॥५३॥ उस महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र के द्वारा कम्पायमान इस मेदिनी में अमित ओज से सम्पन्न महीधर और नागगण गिर गये थे ॥५४॥ चार शीर्ष वाले—पाँच फण्यओं से युक्त और सात मस्तकों वाले पन्नग (सर्प) विष की ज्वालाओं से समाकुल मुखों से हुताशन का विमुञ्चन कर रहे थे। प्रमुख पन्नगों में वासुकि—तक्षक—कर्कोटक—धनञ्जय—एलामुख—कालिक और महान् वीर्यशाली महापद्म एवं सहस्र शीर्षों वाला—नग—हेमताल ध्वज—प्रभु शेष और महाभाग अनन्त—दुष्प्रकम्प्य—प्रकम्पित—जल के अन्दर स्थित रहने वाले दीप्त और पृथिवी धारण थे। उस समय में ये सब चारों ओर में महान् क्रुद्ध उसके द्वारा कम्पित हो गये थे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान्महीम् ॥५९
सन्दष्टौष्टपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः ।
नदी भागीरथी चैव सरयूः कौशिकी तथा ॥६०
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणी च निम्नगा ।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा ॥६१
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः ।
कमलप्रभवश्चौव शोणोमणिनिभोदकः ॥६२
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी ।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती ॥६३
मही कालमही चौव तमसा पुष्पवाहिनी ।
जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरत्नोपशोभितम् ॥६४

तेज के धारण करने वाले और पाताल तल में संचरण करने वाले नाग भी कम्पायमान हो गये थे। उस समय में दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने इस मही को संस्पर्श किया था और यह क्रोध से अपने होटों को

काटता हुआ पूर्वज वाराह की भाँति हो गया था। समस्त नद और नदियां भी प्रकम्पित हो गये थे जिनके प्रमुख नाम ये हैं–भागीरथी नदी–सरयू–कशिकी—यमुना—कावेरी—कृष्ण वेणी निम्नगा—सुवेणा—महाभागा गोदावरी नदी—चर्मण्वती—सिन्धुनद—नद नदीपति—कमल प्रभन और मणि के सदृश स्वच्छ जल वाला शोणनद–शुभ तोया नर्मदा–वेत्रवती नदी-गोमती— गोकुलाकीर्णा तथा पूर्व सरस्वती–मही–कालमही—तमसा और पुष्प वाहिनी ये सभी नद और नदियां प्रकम्पित हो गये थे। जम्बू द्वीप और सब प्रकार के रत्नों से उपशोभित रत्नव भी कम्पायटमान थे। ॥५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४।

सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकरमण्डितम्।
महानदञ्च लौहित्यं शैलकाननशाभितम् ॥६५
पत्तनं कोशकरणं ऋषिवीरजनाकरम्।
मागधाश्च महाग्रामा मुडाः शुङ्गास्तथैव च ॥६६
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ॥६७
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ॥६८
उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम्।
सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघङ्क्तिनिषेवितः ॥
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूममयैर्द्रुमैः।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ॥६९

सुवर्ण के आकरों (खानों) से मण्डित सुवर्ण प्रकट तथा शैल और काननों से शोभा संयुत लौहित्य महान्-ऋषि और वीरजनों की खान कोश करण पत्तन–मागध–महाग्राम–मुड तथा शुङ्ग–सुह्म–मल्ला–विदेह–मालव-काशी—कोसल और वैनतेय का भवन ये सब देश और स्थल उस दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के द्वारा अभिकम्पित होगये थे ॥६५, ६६, ६७। यह भवन

कैलास पर्वत की शिखर के समान आकार वाला था और विश्वकर्मा के द्वारा इसकी रचना की गयी थी। महान् भीम स्वरूप वाला जिसका जलरक्त वर्ण का था ऐसा लौहित्य नाम वाला सागर—उदय महाशैल जिसकी सौ योजन ऊँचाई थी–मेघों की पंक्तियों से निषेवित सुवर्ण वेदिक जो पुष्पित कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, सूर्य के सदृश जात रूपमय द्रुमों से भ्राजमान था ।।६८, ६९।।

अयोमुखश्च विख्यातः सर्वतो धातुमण्डितः ।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः ।।७०
सुराष्ट्राश्च सवाल्हीकाः शूराभीरास्थैवच ।।७१
भोजाःपाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः।।७२
तथैवोड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाःसकेरलाः ।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः ।।७३
अगस्त्यभवनञ्चैव यदगम्यङ्कृतं पुरा
सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम् ।७४
विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम् ।
जातरूपमयैः शृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव ।।७५
चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतः ।
विद्युत्त्वान् सर्वः श्रीमानायतः शतयोजनम् ।७६
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे ।
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः ।।७७

अयोमुख परम विख्यात था जो सभी ओर से धातुओं से मण्डित था तथा तमाल के वनों की गन्ध से युक्त मलय पर्वत परम शुभ था। सुराष्ट्र—वाह्लीक—शूर--आभीर—भोज—पाण्डय – वङ्ग—कलिङ्ग—ताम्रलिप्त—उड्ग—पौण्ड्र--वाम चूड़—केरल इन सब देशों को उस दैत्य ने क्षोभ युक्त बना दिया था और देवों के सहित अप्सराओं के समुदायों को भी क्षुब्ध कर दिया था ।।७०, ७१, ७२, ७३।। अगस्त्य भवन

जो कि पहिले अगम्य कर दिया था वह सिद्ध-चारणों के समूहों से विप्रकीर्ण और अत्यन्त मनोहर था ।।७४।। उसमें विचित्र भाँति के अनेक विहग रहते थे तथा सुन्दर पुष्पों से युक्त महान् वृक्ष लगे हुए थे। उसके सुवर्णमय शिखर इतने ऊचे थे मानों वे गगन को लिखित बना रहे हैं। ।।७५।। वह सागर के जलों से समावृत चन्द्र सूर्य्य की किरणों के सदृश विद्युत वाला शोभा से सुसम्पन्न सौ योजन पर्य्यन्त आयति वाला था। जिस नगोत्तम पर विद्युतों के संघातों का निपातन किया जाता था ऋषभ और श्री सम्पन्न वृषभ संज्ञा वाला पर्वत था ।।७६, ७७।।

कुञ्जरः पर्वतः श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ।
विशालाक्षश्चा दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी ।।७८
तथा भोगवतीचापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिताः ।
महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः ।।७९
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः ।
प्राग्ज्योतिषपुरञ्चमापि जातरूपमय शुभम् ।।८०
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ।
विशालाक्षश्च दुर्द्धर्षो मेघगम्भीरनिस्वनः ।।८१
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः ।
तरुणादित्यसङ्काशो मेरुस्तत्र महागिरिः ।।८२
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः ।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखोगिरिः ।।८३
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः ।
हेमपुष्परसक्षेत्रं तेन वैखानसं सरः ।।८४

श्री से सम्पन्न कुञ्जर पर्वत अगस्त्य का परम शुभ गृह था भोगवती भी उस दैत्येन्द्र के द्वारा अभिकम्पित हो रही थी। महासेन पर्वत—पारियात्र गिरि-चक्रवान् श्रेष्ठ गिरि-वाराह पर्वत-प्राग्ज्योतिषपुर जो परम शुभ और जातरूप मय था। जिसमें दुष्ट आत्मा वाला नरक नाम-

धारी दानव निवास किया करता था वह मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला दुर्धर्ष विशालाक्ष था ।।७८, ७९, ८०, ८१।। हे द्विजोत्तमो ! वहा पर साठ हजार पर्वत थे और वहां तरुण आदित्य के सदृश महान् गिरि मेरु था ।।८२।। यक्ष-गन्धर्व—राक्षसों के द्वारा नित्य ही जिसकी कन्दराओं का सेवन किया जाता था वह महान् शैल हेम गर्भ था तथा हेम सखा गिरि था ।।८३।। ये समस्त महा शैल और शैलों का प्रमुख स्वामी कैलास को भी उस दानवेन्द्र ने कम्पित कर दिया था । उसने हेम पुष्प रस क्षेत्र वैखानस सरोवर को भी प्रकम्पित कर दिया था ।।८४।।

कम्पितं मानसञ्चैव हंसकारण्डवाकुलम् ।
त्रिशृङ्गपर्वतञ्चैव कुमारी च सरिद्वरा ।।८५
तुषारचयसञ्छन्ना मन्दरश्चापि पर्वतः ।
उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिराट् ।।८६
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः ।
देवाभ्रपर्वतश्चैव यथावै रेणुकोगिरिः ।।८७
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः ।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ।।८८
नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः ।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः ।।८९
खेचराश्चैच सतीपुत्राः पातालतलवासिनः ।
गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामांकुशायुधः ।।९०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः ।
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ।।९१

हंसों और कारण्डवों से समाकुल मानस सरोवर का भी कम्पायमान कर डाला था । त्रिशृङ्ग पर्वत, सरिताओं में परम श्रेष्ठ, तुषार के समुदाय से सञ्छन्न कुमारी नदी, मन्दर पर्वत, उशीर बिन्दु गिरि, अद्रियों का राजा चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत,

रेणुक गिरि, क्रौञ्च, सप्तर्षि, शैल, धूम्रवर्ण पर्वत, तथा अन्य गिरिगण, देश तथा जनपद, सागरों के सहित समस्त नदियों आदि को उस महा दानव ने कम्पित कर दिया था। मही का पुत्र कपिल और व्याघ्रवान् पर्वत को भी कम्पायमान बना दिया था ।।८५, ८६, ८७, ८८, ८९।। खेचर, सतीपुत्र, पाताल तल के निवासिगण, पर रौद्र, मेघ नाम वाला अकुशायुध, ऊर्ध्वग और भीम वेग ये सभी अभिकम्पित हो गये थे। उस समय में हिरण्य कशिपु गदा के धारण करने वाला, शूलधारी और महान् कराल हो गया था ।।९०, ९१।।

जीमूतघनसङ्काशो जीमूतघननिस्वनः ।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान् ।।९२
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत् ।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णंमृगेन्द्रेण महानखैः ।।९३
तदोङ्कारसहायेन विदार्य निहतोयुधि ।
मही च कालश्च वशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः ।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादन्दितिपुत्रनाशात् ।।९४
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम् ।।९५
यत्त्वया विहित देव ! नारसिंहमिदं वपुः ।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजनाः ।।९६
भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमाः ! ।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः ।।९७
पराञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देवं परञ्च मन्त्रं परमं हविश्च ।
परञ्च धर्मं परमञ्च विश्वं त्वामाहुरग्र्यं पुरुष पुराणम् ।।९८

Ved Mandir Library
No. 208/H
Date 21/X/73
JAMMU.

उस हिरण्य कशिपु का स्वरूप उस काल में जीमूत कृष्णमेघ के समान था और मेघ के ही तुल्य घोर ध्वनि वाला वह था। उसकी घोर

गर्जना भी मेघ के ही तुल्य थी तथा जीमूत के समान ही वेग से युक्त था ।। ९२ ।। इस प्रकार के स्वरूप वाला वह दिति का पुत्र और देवों का शत्रु था उस वीर ने नृसिंह महाप्रभु पर आक्रमण किया था। इसके अनन्तर उसी समय में ओङ्कार की सहायता वाले मृगेन्द्र ने उछाल मारकर अपने परम तीक्ष्ण विशाल नखों से उस दानवेन्द्र हिरण्य कशिपु को पकड़ कर विदीर्ण कर दिया था और नृसिंह प्रभु के द्वारा वह युद्ध में निहत हो गया था। दिति-पुत्र के विनाश हो जाने से यह मही—काल—शशीनभ—सूर्य—सम्पूर्ण ग्रह—समस्त दिशाऐं—नदियाँ—शैल और महासागर सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गये थे ।। ९३ । ९४ ।। इसके पश्चात् सब देव वृन्द—ऋषिवर्ग और तापस गण परम प्रमुदित हो गये थे और फिर उन्होंने दिव्य नामों के द्वारा उन सनातन आदि देव का स्तवन किया था ।। ९५ ।। उन्होंने कहा—हे देव ! आपने जो यह नारसिंह वपु धारण किया है आपके इसी स्वरूप का परावर वेत्ता जन अर्चन किया करेंगे ।। ९६ ।। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन् ! आप ही ब्रह्मा—रुद्र—महेन्द्र और परम श्रेष्ठ देव हैं। आप ही इन लोकों के कर्त्ता—विकर्त्ता—प्रभव और अव्यय हैं ।। ९७ ।। आपको ही परम सिद्ध—परात्पर देव—परम मन्त्र—परम हवि—परम धर्म्म—परम विश्व और सबसे आदि में होने वाले पुरातन पुरुष कहते हैं ।।९७, ९८।।

परं शरीरं परमञ्च ब्रह्म परञ्च योगं परमाञ्च वाणीम् ।
परं रहस्यं परमाङ्गतिञ्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।।९९
एवं परस्यापि परं पदं यत् परं परस्यापि परञ्च देवम् ।
परं परस्यापि परञ्चा भूतन्त्वामाहुरग्र्यं पुराणम् ।।१००
परं परस्यापि परं निधानं परं परस्यापि परं पवित्रम् ।
परं परस्यापि परं च दान्तन्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।।१०१
एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः ।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ।।१०२

तप्तो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वसरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ।।१०३
नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमत् ।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ।।१०४
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता ।
अव्यक्तप्रकृतिदवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः ।।१०५

हे भगवन् ! आपको ही परम शरीर–परम ब्रह्म–परमयोग–परम वाणी—परम रहस्य तथा परम गति एवं आद्य पुराण पुरुष कहा करते हैं। इस प्रकार से जो परकामी परम पद है और परकामी परम देव है तथा परकामी परमभूत है उस आद्य पुरुष एवं परम पुराण आपको ही कहते हैं ।। ९९ । १०० ।। इसी भाँति परकामी परम निधान—परकामी परम पवित्र तथा परसेवी परम दान्त आद्य पुराण पुरुष आपको ही कहते हैं ।। १०१ ।। इस रीति से समस्त लोकों के पितामह भगवान् ने नारायण देव का स्तवन करके प्रार्थना की और फिर वे प्रभु अपने ब्रह्मलोक को वापिस चले गये थे ।। १०२ ।। इसके अनन्तर तूर्यों के घोष होने पर और अप्सराओं के नृत्य होने पर ईश्वर श्री हरि क्षीरसागर के उत्तर कूल पर गमन कर गये थे ।। १०३ ।। देवेश्वर ने सुदीप्ति से युक्त नारसिंह वपु की स्थापना कराकर फिर गरुड़ध्वज प्रभु पोराण स्वरूप में समास्थित होकर प्रयाण कर गये थे। भूतयुक्त-भास्वान् आठ चक्रों वाले यान के द्वारा अव्यक्त प्रकृति देव प्रभु अपने स्थान को चले गये थे ।। १०४ ।। १०५ ।।

६४—मनुमत्स्य संवाद वर्णन

पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत् ॥१
कथञ्च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत्पुरा ॥२
श्रुत्वा च नरसिंह माहात्म्यं रविनन्दनः ।
विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः प्रप्रच्छकेशवम् ॥३
कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत् ।
जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन ! ॥४
प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि ।
पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्षिगणाःपुरा ॥५
एनमाख्याहि निखिलं योगं योगविदाम्पते ! ।
श्रृण्वतस्तस्य मे कीर्ति नंतृप्तिरुपजायते ॥६
कियता चैव कालेन शेते वं पुरुषोत्तमः ।
कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हमारी यह प्रार्थना है कि सृष्टि रचना को कुछ और अधिक विस्तार के साथ आप वर्णन कीजिए ॥ १, २ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् किस प्रकार से हेममय पद्म के स्वरूप वाला हो गया था और पहिले उस पद्म के मध्य में यह वैष्णवी सृष्टि किस प्रकार से हुई थी ॥ ३ ॥ महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रविनन्दन ने प्रभु नारसिंह के माहात्म्य का श्रवण करके विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाला होकर पुनः उसने केशव प्रभु से पूछा था ॥ ४ ॥ मनु ने कहा—हे जनार्दन ! पाद्म महा कल्प में जिस समय में आप जलार्णव में लीन होकर स्थित थे तब यह पद्ममय जगत् आपकी नाभि से किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? सागर के जल में शयन करने वाले पद्मनाभ के प्रभाव से उस पुष्कर में पहिले देव–ऋषिगण और समस्त भूत किस रीति से समुत्पन्न हुए थे ॥ ५ ॥ हे योग के वेत्ताओं के स्वामिन् ! इस सम्पूर्ण योग का वर्णन

कृपा करके कीजिए ! उसकी कीर्त्ति का श्रवण करने वाले मेरे हृदय की तृप्ति नहीं हो रही है । पुरुषोत्तम प्रभु कितने लम्बे समय से वहाँ पर शयन किया करते हैं और किस काल पर्यन्त शयन करते रहते हैं । इस काल की उत्पत्ति क्या है ? ।।६, ७।।

कियतावाथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः ।
कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलंजगत् ।।८
के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने ! ।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम् ।।९
प्रथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे ।
दग्धदेवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१०
नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले ।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ।।११
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः ।
आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ।।१२
श्रृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः ।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ ! यशो नारायणात्मकम् ॥१३

यह महान् यशस्वी प्रभु कितने काल में वहाँ पर उत्थित हुआ करते हैं और किस प्रकार से उठकर इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन भगवान् किया करते हैं ? हे महामुने ! पहिले कौन प्रजापति थे और इस अत्यन्त विचित्र जगत् तथा सनातन लोक का किस प्रकार से निर्माण किया था ? ।। ८, ९ ।। प्रथम इस एक मात्र आर्णव में जब कि सभी स्थावर और जङ्गम नष्ट होकर यह एकदम शून्य था और सब देव—असुर एवं नर दग्ध हो गये थे तथा उरग और राक्षस भी सब नष्ट हो गये थे । अनिल और अनल भी विनष्ट हो गये थे । लोक में आकाश एवं महीतल का नाम निशान भी नहीं था । महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर यह केवल एक गह्वर के तुल्य ही था । उस समय में महान् आकृति वाले—महान्

तेजस्वी—सुरवरों में परम श्रेष्ठ—महाभूतों के स्वामी—योगवेत्ता विभु विधि में समास्थित होकर थे ।। १०, ११, १२ ।। हे ब्रह्मन् ! मैं परम भक्तिपूर्वक पूर्णरूप से इस सबको श्रवण करना चाहता हूँ । हे धर्म्मिष्ठ ! आप इस नारायण के ही स्वरूप वाले परम यश का वर्णन करने के योग्य होते हैं ।। १३ ।।

श्रद्धया चोपविष्टानां भगवान् ! वक्तुमर्हसि ।
नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ।।१४
तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्षभ ! ।
शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ॥१५
ब्राह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ।
येषां च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ।।१६
पराशरसुतः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति ।।१७
यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः ! ।
कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ।।१८
विश्वायनश्च यद्ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः ।
तत्कर्म्मं विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम् ।।१९
तमीज्यं सर्वयज्ञानां तत्तत्त्वं सर्वदर्शिनाम् ।
तदध्यात्मविदां चिन्त्यंनरकंन विकर्मिणाम् ।।२०
अधिदैवञ्च यद्दैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम् ।
तद्भूतर्धिभूतञ्च तत्पर परमर्षिणाम् ।।२१

हम सब श्रद्धा के साथ श्रवण करने के लिए पर समुपस्थित हैं आप अब कहने की कृपा कीजिए क्योंकि इसके वर्णन करने की पूर्ण क्षमता रखते हैं । मत्स्त भगवान् ने कहा—जो यह आपकी स्पृहा भगवान् नारायण के यश को श्रवण करने की समुत्पन्न हुई है वह हे रविकुलर्षभ ! उसी वंश में होने वाले अन्वय में उत्पन्न आपकी बहुत उचित ही है ।

वेदों से तथा आदि पुराणों में जिस प्रकार से सुना गया है उसका अब श्रवण करो ।। १४, १५ ।। सुन्दर और महान् आत्मा वाले बोलते हुए ब्राह्मणों का कथन सुनकर और बृहस्पति के समान द्युति वाले, पाराशर के पुत्र श्रीमान् गुरु द्वैपायन ने जिस प्रकार से तपश्चर्या के द्वारा देखकर बोला था उसी को मैं अपनी शक्ति और श्रवण के अनुसार आपको सब कहूँगा ।। १६, १७ ।। हे श्रेष्ठतमो ! ऋषि मात्र मेरे द्वारा जो भी जाना जा सकता है उस परम नारायण के स्वरूप को अन्य कौन जानने का उत्साह कर सकता है ।। ८।। विश्व जिसको अपन बनाता है वह ब्रह्माजी तात्त्विक रूप से जिसको नहीं जानते हैं । विश्व वेदों का यह कर्म्म महर्षियों के लिये भी एक रहस्य है । सब यज्ञों के यजन करने के योग्य वह सर्व दर्शियों का तत्त्व है । वह अध्यात्म के वेत्ताओं के चिन्तन के योग्य विषय है और विकर्म्मियों का नरक नहीं है । वह अधिदैव और अधियज्ञ संज्ञा से युक्त एवं वह भूत अधिभूत है तथा परमर्षियों का वह परम है ।। १९, २०, २' ।।

स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः ।
यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ।।२२
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते ।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च ।।२३
कालः शाकश्च यन्ता चद्रष्टास्वाध्यायएव च ।
उच्यते विविधैर्देवः स एवायं न तत्परम् ।।२४
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृतान्।।२५
यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेच्छाम निर्वृताः ।
यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यच्चाहन्तद्ब्रवीमि वः ।।२६
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते ।
याःकथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः ।।२७

विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः ।
यत् सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत् यद्भूत परममिदं च यद्भविष्यत् ।
यत् किञ्चि रमचरं यदस्ति चान्यत्
तत् सर्वं पुरुषवरः प्रभुः पुराणः ।। २८

वह वेदों के द्वारा निर्दिष्ट यज्ञ है और कविगण उसको तप कहते हैं । जो कर्त्ता—कारक—बुद्धि—मन—क्षेत्रज्ञ—प्रणव—पुरुष—शास्त्र और एक ही विभावित होता है । पाँच प्रकार का प्राण—ध्रुव और अक्षर है । काल—शाक—यन्ता—दृष्टा और स्वाध्याय है । विविध देवों के द्वारा वह देव कहा जाता है और यह वह ही है उससे पर कोई नहीं है । वह ही भगवान् सब कुछ किया करते हैं और बिगाड़ते हैं । वह इन सबको कराता है और व्याकुलीकृतों का अतिगमन करता है ।। २२, २३, २४, २५ ।। उसी आदि में होने वाले के लिये हम यत्न किया करते हैं और निर्वृत (प्रसन्न) होकर उसी को हम सब चाहते हैं । जो वक्ता है और जो वक्तव्य है तथा जो मैं हूँ उसको ही मैं आपको बतलाता हूं । जो श्राव्य सुना जाता है और जो अन्य परिजल्पित किया जाता है । जो कथाऐं वर्त्तमान हैं । जो श्रुतियाँ हैं वे तत्पर ही हैं । यह विश्व और विश्व का स्वामी है वह ही नारायण कहा गया है । जो सत्य है—अक्षर और पर है । जो परम भूत है और भविष्यत् है—जो चर—अचर तथा जो अन्य है वह सभी पुरुषों में श्रेष्ठ पुराण प्रभु है ॥२६॥२७।२८॥

---

६५ —विष्णु प्रादुर्भाव वर्णन

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वञ्च कृते युगे ।
वैकुण्ठत्वञ्च देवेषु कृष्णत्व मानुषेषुच ॥१
ईश्वरस्य हितस्यैषा कर्म्मणांगहनागतिः ।

संप्रत्यतीतान् भव्यांश्चश्रृणुराजन् ! यथातथम् ।।२
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यएषभगवान् प्रभुः ।
नारायणोह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्ययएवच ।।३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः ।
ब्रह्मावायुश्चसोमश्च धर्म्मःशक्रोवृहस्पतिः ।।४
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन ! ।
एष विष्णुरितिख्यात इन्द्रस्याजो विभुः ।।५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् ।
बधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ।।६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः ।
सोऽसृजन् पूर्वपुरुषः पुराकल्पेप्रजापतीन् ।।७

श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—अब तुम विष्णु के विष्णुत्व का श्रवण करो और कृत युग में हरित्व का—देवों में वैकुण्ठत्व का और मनुष्यों में कृष्णत्व के स्वरूप का भी श्रवण कर लो। हितकारी ईश्वर की यह कर्म्मों की एक अतीव गहन गतियाँ हैं। हे राजन् ! अब इस समय में जो व्यतीत हो गये हैं उनको तथा आगे जो होने वाले हैं उनको ठीक ठीक रीति से श्रवण कर लो ।। १ ।। २ ।। यह जो अव्यक्त भगवान् प्रभु हैं वह व्यक्त लिङ्गों (चिह्नों) में स्थित होते हैं वही अनन्त आत्मा वाले सबका प्रभव (उत्पत्ति) और अविनाशी साक्षात् नारायण ही हैं ।। ३ ।। यह पहिले नारायण होकर सनातन श्रीहरि हुए थे। हे रवि के नन्दन ! फिर इसने हीं ब्रह्मा—वायु—सोम—धर्म्म—इन्द्र—वृहस्पति तथा अदिति के पुत्रत्व को प्राप्त किया था और यह ही फिर इन्द्र का छोटा पीछे उत्पन्न होने वाला भाई विभु विष्णु इस नाम से विख्यात हुए हैं ।। ४, ५ ।। देवगण इस विभु के पुत्र होने का कारण उनकी प्रसन्नता होने वाला समझते थे जो कि सुरों के शत्रु दैत्य–दानव और राक्षसों के वध करने के लिये ही था।

पहिले प्रसन्न आत्मा इस प्रभु ने ब्रह्मा का सृजन किया था। फिर उस पूर्व पुरुष ने पहिले कल्प में प्रजापतियों का सृजन किया था ॥ ६ । ७ ॥

असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान् ।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम् ॥८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम् ।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे ॥९
वृत्तो वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे ।
आसीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥१०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः ।
घ्नन्तिदेवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान् ॥११
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे ।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुः ॥१२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः ।
सार्कचन्द्रग्रहगणंच्छादयन्तो नभस्तलम् ॥१३
वेणुर्विद्युद्गणोपेता घोरनिह्लादकारिणः ।
अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः ॥१४

वहाँ पर अत्युतम ब्रह्मा के वंश वाले मानवों का उनने सृजन किया था फिर उन सब महान् आत्माओं वालों से यह शाश्वत ब्रह्म ही बहुत से स्वरूपों में समुत्पन्न हुआ था। यह ही आश्चर्य स्वरूप वाले भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्त्तन है। लोकों में कीर्त्तन करने के योग्य के उस कीर्त्यमान कर्म्म को अव मुझसे तुम भलीभाँति समझ लो। ॥ ८ । ९ ॥ वर्त्तमान कृत युग में वृत्रासुर के वध उपस्थित होने पर वहाँ पर त्रिभुवन में विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था। जिस युद्ध में संग्राम में दुर्जय समस्त घोर दानव गण यक्ष–उरग और राक्षसों के सहित सब देवों का हनन किया करते थे ॥ १० । १ । ॥ उस रण में बध किये

जाते हुए क्षीण आयुधों वाले विमुख होकर सबके सब मन से त्राण करने वाले प्रभु देव नारायण की शरण में गये थे ।।१२।। इसी बीच में निर्वाण अङ्गार वर्चस वाले मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से युक्त नभस्तल का आच्छादन करते हुए छा गये थे। ये मेघ वेणु विद्युद्गण से युक्त थे तथा घोर गर्जन करने वाले थे। परस्पर में वेग से अभिहत सातों मरुत वहन करने लगे थे ।। १३ । १४ ।।

दीप्ततोयाशनिनैर्वज्रवेगानलानिलैः ।
रवैः सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ।।१५
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि ।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ।।१६
चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्भयं भवेत् ।
अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ।।१७
जातञ्च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
तिमिरौघपरिक्षप्ता न रेजुश्च दिशोदश ।।१८
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ।
द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ।।१९
तान घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः ।
वपुः स्वन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ।२०
बलाहकाञ्जनमिमं बलाहकतनूरुहम् ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ।।२१

उस समय में यह सम्पूर्ण आकाश दीप्त तोय और अशनि (बज्र) से संयुत घनों के द्वारा—बज्र वेग अनल और अनिलों के द्वारा–सुघोर ध्वनि और उत्पातों से दह्यमान की तरह हो रहा था ।। १५ ।। इसके पश्चात् आकाश में स्थित भी सहस्रों उल्काऐं गिर गयीं थी तथा दिव्य विमान उड़ते थे और नीचे की ओर गिरते थे ।१६। चतुर्युगों के अन्त में लोकों के पर्याय में जो भय होता है उस उत्पात के लक्षण में सभी रूप

बिना रूप वाले हो जाते हैं ।। १७ ।। लोकों में सभी कुछ प्रभा से हीन हो जाता है और कुछ भी नहीं जाना या समझा जाया करता है । अन्धकार के अत्यन्त घोर एवं गहन समुदाय से परिक्षिप्त हुई दशों दिशाऐं प्रकाशित नहीं होती थीं । उस समय में काल मेघ में अवगुण्ठित होकर रूपधारिणी काली का प्रवेश हो जाता था । अत्यन्त घोर तम से समावृत दिवलोक तथा अन्तरिक्ष जिसमें सूर्य्य एकदम अभिभूत होजाता है बिल्कुल भी दिखलाई नहीं दिया करता है ।। १८, १९ ।। तिमिर से परिपूर्ण उन धनों के समूहों को वह प्रभु अपने हाथों से आक्षिप्त करके कृष्ण वपुधारी श्री हरि अपने दिव्य शरीर को दिखाया करते थे ।। २० ।। बलाइक के सदृश काले बलाइक के समान रोमों से युक्त–वपु और तेज से एक कृष्ण अचल की भाँति कृष्ण स्वरूप को प्रकट किया था ।। २१ ।।

दीप्तापीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।।२२
चतुर्द्विगुणपीनांसङ्किरीटच्छन्नमूर्द्धजम् ।
बभौ चामीरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ।।२३
चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकटमिवोच्छ्रितम् ।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ।।२४
शक्तिचित्रफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ।।२५
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् ।
सर्वलोकमनः कान्त सर्वसत्वमनोहरम् ।२६
नानाविमानविटपन्तोयदाम्वुमधुस्रवम् ।
विद्याहङ्कारसाराद्यं महाभूतप्ररोहणम् ।।२७
विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् ।
देत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोके प्रकाशितम् ।।२८

वह दीप्तियुक्त पीत अम्बर को धारण करने वाला–तथा तपे हुए सुवर्ण के भूषणों से संयुत–धूम सहित अन्धकार के शरीर वाला युगान्त करने वाली अग्नि के तुल्य समुपस्थित हुआ था ।। २२ ।। चौगुने और दुगुने पीन अंस से समयुक्त–किरीट से समाच्छन्न केशों वाला वह दिव्य वपु चामीर प्रख्य आयुधों से उपशोभित होकर प्रकट हो रहा था ।। २३ ।। चन्द्र और सूर्य्य की किरणों के उद्योत वाला अत्यन्त ऊँचे गिरि के शिखर के सदृश था । नन्दक से आनन्दित करों वाला—शर तथा आशीविष के धारण करने वाला—क्षमा का मूल—विष्णु शैल—श्री वृक्ष और शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाला वह दिव्य स्वरूप था ।। २४, २५ ।। उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है—वह देवों का उदार फल देने वाला—स्वर्गीय स्त्रियों का चारु पल्लव–सब लोगों के मन को रमणीय–सब जीवों में अत्यन्त मनोहर–नाना विमानों के विटपों वाला—मेघों के जलरूप मधु का श्रवण करने वाला—विद्या के अहङ्कार–सार का आद्य–महान् भूतों का प्ररोहण करने वाला—विशेष पत्रों से निचित—ग्रह और नक्षत्र रूपी पुष्पों से संयुत और वह दिव्य रूप दैत्यों के लोक का महान् स्कन्ध था जो कि इस मर्त्य लोक में प्रकाशित हुआ था ।। २६ । २७ । २८ ।।

सागराकारनिर्ह्रादं रसातलमहाश्रयम् ।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम् ।।२९
शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् ।
अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम् ।।३०
महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् ।
विमानगरुतव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ।।३१
जन्तुमत्सजनाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् ।
त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ।।३२
वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम् ।

द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ।।३३
वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
सन्ध्यासङ्खचोर्मिसलिलं सुपर्णानिलसेवितम् । ३४
दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगझषाकुलम् ।
पितामहमहावीर्य्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ।।३५

पुनरपि उसी परम दिव्य स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है कि सागर के आकार के तुल्य निर्ह्राद था और रसातल के महान् आश्रय वाला था । मृगेन्द्र के पाशों से वितत-पक्षिगण एवं जन्तुओं से निषेवित-शीलार्थ और सुन्दर गन्ध से आढच-सब लोकों का महान् द्रुम-अव्यक्त एवं अनन्त सलिल वाला—व्यक्त अहङ्कार से फेनयुक्त-महान् भूतों की तरङ्गों के ओघ वाला—ग्रह तथा नक्षत्रों के बुलबुलों से समन्वित—विमान गरुत व्याप्त और तोयदों के आडम्बर से समाकुल था ॥ २९, ३० ३१ ॥ वह रूप जन्तुओं वाला—जनों से समाकीर्ण—शैल शंखों के कुलों से संयुत-त्रैगुण्य के विषयों का आवर्त्त-समस्त लोकों का तिमिङ्गिल—वीर रूपी वृक्ष लता और गुल्मों वाला-भुजङ्गों के उत्कृष्ट शैवाल वाला-द्वादश सूर्यों के महाद्वीपों वाला—एकादश रुद्रों के पत्तनों से युक्त—आठ वसुरूपी पर्वतों से युक्त-त्रैलोक्य रूपी महा सागरों वाला-सन्ध्या संख्या को ऊर्मियों का सलिल—सुपर्ण की वायु से सेवित—दैत्य और रक्षोगण रूपी ग्राहों वाला-यक्ष और उरग रूपी भुजों से समाकुल—पितामह के समान महान् वीर्य वाला और सब स्त्रियों के स्वरूप वाले रत्नों से सुशोभित था ।।३२-३५।।

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् ।
कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम् ।।३६
तन्तु योगमहापारं नारायणमपार्णवम् ।
देवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तिवत्सलम् ।।३७

अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् ।
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ॥३८
ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते ।
अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ।३९
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ॥४०
ददृशुस्तेस्थितं देव दिव्ये लोकमये रथे ।
ते कृताञ्जलयः सर्वं देवाः शक्रपुरोगमाः ॥४१
जयशब्द पुरस्कृत्य शरण्यं शरणङ्गताः ।
स तेषां ताङ्गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम् ।४२

उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि वह दिव्यरूप श्रीकान्ति और लक्ष्मी से तथा नदियों से उपशोभित था— कालयोगी और महापर्व एवं प्रलयत था उत्पत्ति के वेग वाला था। तन्तुयोग का महापार—नारायण रूपी महार्णव से युक्त—देवों का भी अधिदेव—वर देने वाला जो अपने भक्तों को प्रदान करते थे—भक्तों पर प्यार करने वाला वह स्वरूप था ॥ ३६, ३७ ॥ वह अनुग्रह करने वाला—देव—प्रशान्ति करने वाले—शुभ था। हर्यश्व रथ से समन्वित—ध्वज से सेवित—ग्रह चन्द्र और सूर्य से विरचित—मन्दराक्ष वर से आवृत— अनन्त रश्मियों से युक्त—विस्तीर्ण मेरु गह्वर से युक्त—तारे रूप विचित्र कुसुमों से परिपूर्ण—ग्रह और नक्षत्रों से बन्धुर सुडौल)—भय के अवसरों पर अभय देने वाले उस स्वरूप को व्योम मे दैत्यों से पराजित देवों ने देखा था। उन देवों ने परम दिव्य लोकमय रथ में स्थित देव का दर्शन प्राप्त किया था। उस समय में इन्द्र को अपना अग्रणी बना करके उन समस्त देवों ने अपनी अंजलियों को बद्ध कर लिया था। जयकार के शब्द को पहिले समुच्चारित करके शरण्य प्रभु की वे सब शरणागति में प्राप्त होगये थे। उन देवों के भी देवेश्वर विष्णु भगवान् ने देवगण

की शरणागति में प्राप्त होने के लिए कथित वाणी का श्रवण किया था ॥ ३८-४२ ॥

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः ॥४३
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिद वचः ।
शान्ति व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुताङ्गणाः ॥४४
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः ॥४५
देवाः प्रीति समाजग्मुः प्राश्यामृतमनुत्तमम् ।
ततस्तमः संहृत तद्विनेशुश्च बलाहकाः ॥४६
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशाश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमञ्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः ।
विरजस्का भवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः ॥४८
याथार्थमूहुः सरितो नापिचुक्षुभिरेऽर्णवाः ।
आसंश्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ॥४९
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः ॥५०
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ॥५१

देवों की परित्राण के लिये कही हुई वाणी को सुनते ही विष्णुदेव ने उस महान् युद्ध में दानवों के विनाश करने के लिए मन में स्थिरता करली थी । उस समय में भगवान् विष्णु उत्तम वपु में समास्थित होकर आकाश मे ही स्थित थे । उन्होंने समस्त देवों से प्रतिज्ञा के सहित यह वचन कहा था कि अब आप सब लोग शान्ति धारण करें अर्थात् एकदम प्रशान्त हो जावें । हे मरुतों के गणो ! अब आप डरो मत—आपका

कल्याण होगा। मैंने सभी दानवों को जीत ही लिया है—ऐसा समझ लो और अब इस त्रैलोक्य को जो तुमसे उन्होंने छीनकर अपना अधिकार कर लिया है पुन: वापिस ग्रहण करलो। इस प्रकार के वचन जब उन समस्त दैवगण ने सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु भगवान के सुने थे तो उनके वाक्य से सबको बहुत ही अधिक सन्तोष हो गया था ॥ ४३, ४४, ४५॥ उस समय में उस अत्युत्तम अमृत का प्राशन करके देवगण परम प्रीति को प्राप्त हो गये थे। इसके बाद वह सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो गया था और सभी बल्वाहक विनाश को प्राप्त हो गये थे। सर्वत्र परम मङ्गलकारी वायु वहन करने लगी थी और दशों दिशाऐं एक दम प्रशान्त हो गयी थीं शुद्ध प्रभा वाली ज्योतियां अर्थात् नक्षत्रादि सोम की प्रदक्षिणाऐं करने लगीं थीं ॥४६।४७॥ उस समय में ग्रह गण परस्पर में कोई भी विग्रह नहीं करते थे और सभी सिन्धु परम प्रशान्त हो गये थे। स्वर्ग वर्गादि तीनों ही रज से रहित मार्गों वाले हो गये थे। सम्पूर्ण सरिताऐं ठीक मार्ग से यथार्थ रूप में वहन कर रही थीं और आर्णवों में भी किसी भी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था। सभी मनुष्यों की अन्तरात्माओं में परम शान्ति थी और इन्द्रियाँ परम शुभ वृत्ति वाली होगई थी ॥४८, ४९॥ सब महर्षिगण शोक से रहित होकर वेदों का उच्च स्वर से अध्ययन कर रहे थे। यज्ञों में जो भी हवि प्रक्षिप्त किया जाता था पावक उसका अति शिव पाक करने लगा था ॥ ५०॥ सभी लोक परम प्रमुदित मनों वाले होकर अपने २ धर्मों में प्रवृत्त हो गये थे जिस समय में सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवान् विष्णु की समस्त शत्रुओं के विनाश कर देने की वाणी का सबने श्रवण कर लिया था सभी को परमानन्द प्राप्त हो गया था ॥५१॥

६६—दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन

ततो भयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः ।
उद्योगविपुल चक्रुर्युद्धाय विजयाय च ।।१
मयस्तु काञ्चनमय त्रिनल्वायतमक्षयम् ।
चतुश्चक्रं सुविपुल सुकल्पितमहायुगम् ।।२
किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ।
रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ।।३
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् ।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरविनादितम् ।।४
स्वक्ष रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् ।
गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ।।५
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम् ।
सपताकध्वजोपेत सादित्यमिव मन्दरम् ।।६
गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित् केसरिवर्चसम् ।
युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ।।७
दीप्तमाकाशगं दिव्य रथं पररथारुजम् ।
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ।।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर उस अभय से पूर्ण भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके दैत्यों और दानवों ने विजय की प्राप्ति करने के लिए विपुल उद्योग वाला युद्ध किया था ।। १ ।। विभिन्न दानवों के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का वर्णन किया जाता है—मय दानव ने जिस रथ में विराजमान होकर समर किया था वह काञ्चनमय था—त्रिनल्व आयत और अक्षय था । उस रथ में चार चक्र थे—अतीव विपुल था और सुन्दर कल्पना किया हुआ महायुग वाला था ।। २ ।। मय का रथ किङ्कणी जालो के निर्घोष से युक्त—हाथियों के चर्म से परिष्कृत—

रत्नों के जालों से अत्यन्त मनोरम—द्रुम रचित जालों से शोभित—ईहा मृग गणों से समाकीर्ण--पक्षियों की पंक्ति से शोभा सम्पन्न—दिव्य अस्त्र और तूणीर को धरने वाला तथा पयोधरों के समान ध्वनि से पूर्ण था ॥ ३, ४ ॥ सुन्दर अश्वों वाला श्रेष्ठ रथों में भी अतीव उदार—सूपस्थ—गगन के सदृश—गदा और परिघ से परिपूर्ण मूर्तिमान एक अर्णव के ही समान वह यम का रथ था ॥ ५ ॥ वह हेम के केयूर और वलय से युक्त—स्वर्ण मण्डल कूबर वाला—पताकाओं के सहित ध्वजा वाला और आदित्य से मन्दराचल के समान दिखलाई देता था ॥ ६ ॥ गजेन्द्र के आभोग वपु वाला—किसी स्थल पर केशरी के वर्चस से युक्त—सहस्रों ऋक्षों से युक्त—समृद्ध अम्वुद के समान गर्जन वाला—दीप्त—आकाश में गमन करने वाला—पर रथारुज वह अतीव दिव्य रथ था । जिस तरह से अशुमान् दीप्त मेरु पर अधिरोहण किया करता है कि ठीक उसी भाँति वह रण की आकांक्षा रखने वाला मय दानव उस अपने पूर्वोक्त प्रकार के रथ पर अधिष्ठित हुआ था ॥ ७, ८ ॥

तारमुत्क्रोशविस्तारं हेममयं रथम् ।
शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥९
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहेषावद्धकूबरम् ।
तिमिरोद्गारिकिरण गर्जन्तमिव तोयदम् ॥१०
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणायश्च मुद्गरैः ॥११
प्रासैः पाशैश्च विततैर्नरसंयुक्तकण्टकैः ।
शोभित त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ॥१२
उद्यन्त द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽभ्यारोहद्रथोत्तमम् ॥१३
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तग्रह इवाचलः ॥१४

तार का रथ उत्क्रोश के विस्तार वाला था और वह सम्पूर्ण रथ हेम से परिपूर्ण था। वह रथ शैल क समान आकार वाला—बाधाओं से रहित—नील अञ्जन के निचय कीं उपमा वाला—काले लोह से पूर्ण—दिव्य-लोहेषा से वृद्ध कूबर वाला- तिमिर के उद्गरण करने वाली किरणों से संयुत—गर्जना करने वाले तोयद के सदृश—गवाक्ष से युक्त महान् हेम जाल से दंशित—आयस परिघों से तथा क्षेपणीय और मुद्गरों से पूर्ण—प्रासों, पाशों और वितत नर सयुक्त कण्ठकों से शोभित—त्रासथानों, तोमरों और परश्वधों से शोभा सम्पन्न—द्विष·पुरुषों के कारण ही उदीयमान दूसरे मन्दर के ही समान वह रथ था। सहस्र खरों से संयुत वह उत्तम रथ था जिस पर उस दानव ने अध्यारोहण किया था ।। ९ । १० । ११ । १२ । १३ ।। विरोचन तो भली भाँति क्रुद्ध होता हुआ अपने हाथ में गदा उठाकर उसकी सेना के सामने दीप्तग्रहों वाले अचल के समान अवस्थित होगया था ।।१४।।

युक्तं रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ।।१५
व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत् ।
वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ।।१६
खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् ।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनं संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत ।।१७
त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः ।
व्यूहितुं दानवव्यूह परिचक्राम वीर्यवान् ।।१८
विप्रचित्तिवपुश्चैव श्वेतकुण्डलभूषणः ।
श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः ।।१९
अरिष्टोबलिपुत्रश्च वरिष्ठाद्रिशिलायुधः ।
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ।।२०
किशारस्त्वभिसंर्षात् किशोर इति चोदितः ।

सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम् ।।२।

शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाला हयग्रीव नाम वाले दानव ने एक सहस्र रथों से युक्त अपने स्यन्दन (रथ) को वाहित किया था ।। १५ ।। एक सहस्र किष्कुओं से समन्वित—व्यायत महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ वाराह संमुख में प्रगोह से संयुत एक अचल की भाँति समवस्थित हो गया था ।। १६ ।। खर नामधारी दानव घमण्ड से अपने नेत्रों के द्वारा रोष से समुत्पन्न जल को विक्षरित कर रहा था और वह भी जिसके दाँत–ओष्ठ और नेत्र फड़क रहे थे संग्राम करने का आकांक्षा कर रहा था ।।१७।। त्वष्टा नाम वाला दानव आठ हाथियों वाले परम घोर यान में समास्थित होकर वीर्य वाला वह दानवों के व्यूह को भली भाँति व्यूहित करने के लिये चारों ओर घूम रहा था ।। १८ ।। श्वेत वर्ण के कुण्डलों से विभूषित विप्रचित्त वपु वाला श्वेत प्रतीकाश श्वेत युद्ध करने के लिए अभिमुख में समवस्थित हो गया था ।। १९ ।। बड़े बड़े पर्वतों को भी कम्पित कर देने वाला–वरिष्ठ पर्वत की शिलाओं के आयुधों से समन्वित होकर अरिष्ट और बलि का पुत्र संग्राम करने के लिए सामने स्थित हो गया था ।। २० ।। अभि सङ्घर्ष से किशोर और किशोर इसी नाम से प्रेरित होने वाला था । इस प्रकार से अपने अपने बलों के सहित दानव गण यथा क्रम युद्ध के लिये सन्नद्ध हो रहे थे ।। २१ ।।

अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः ।
लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बावरभूषणः ।।२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ।
स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः । २३
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ।।२४
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे ।

केचित् खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः ।।२५
पतिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादार्द्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः ।।२६
आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे ।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः ॥२७
ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः ।
बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्तिस्म देवताः ।।२८

दैत्यों की सेना के मध्य में प्रलम्ब अम्बर और भूषणों से संयुत–नूतन मेघ की आभा के तुल्य आभा वाला लम्ब नाम वाला दैत्य सूर्य के समान उदित हो गया था ।। २२ ।। दैत्यों के व्यूह में प्राप्त होने वाला–आस्ययोधी–दाँत, ओष्ठ, नेत्र और आयुधों वाला स्वर्भानुनी हार से युक्त अंशुमान् के समान शोभित हो रहा था ।। २३ ।। वह महान् ग्रह दैत्यों के समक्ष में हँसता हुआ स्थित था । वहाँ पर अन्य हयों पर स्थित थे और दूसरे गजों के स्कन्धों पर समवस्थित थे ।। २४ ।। कुछ सिंहों तथा व्याघ्रों पर सवार थे और दूसरे बराह एवं ऋक्षों पर अधिरूढ़ थे । कुछ लोग खरों तथा उष्ट्रों के द्वारा गमन करने वाले और कुछ श्वापदों के वाहनों वाले थे ।। २५ ।। अन्य सेनापति दैत्य परम भीषण और विकृत मुखों वाले थे । कुछ एक पैर वाले और कोई आधे पैरों वाले थे जो युद्ध करने की इच्छा से युक्त होकर नृत्य कर रहे थे ।। २६ ।। बहुत से आस्फोटन कर रहे थे–दूसरे क्ष्वेड़न करने वाले थे । प्रसन्न शार्दूल के समान गर्जन की ध्वनि करने वाले दानव श्रेष्ठ निर्घोष कर रहे थे ।। २७ ।। वे सब शिलाऐं और मूसल हाथों में लिये हुए अत्यन्त उग्र गदा और वारिधों के द्वारा तथा परिघों के आकार वाले बाहुओं के द्वारा देवगणों की तर्जनाऐं (फटकारें दे रहे थे ।। ८।।

पाशैः प्रासैश्च परिघैस्तोमराङ्कुशपट्टिशैः ।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः ।।२९

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
शक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ।।३०
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ।।३१
तद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ।।३२

वे दानव गणों पाशों—प्रासों—परिघों—तोमर—अंकुश और पट्टिशों—शतघ्नी–शतधार और मुद्गरों से क्रीड़ा कर रहे थे ॥ २६ ॥ वे दैत्यों में प्रवर गण्डशैलों—शैलों—उत्तम आपस वाले परिघों और चक्रों के द्वारा अपने वल को आनन्द से युक्त बना रहे थे ।। ३० ।। युद्ध करने के मद से अत्यन्त उत्कट यह सम्पूर्ण दानवों की सेना उद्धत मेघों की अनीक के समान देवों के अभिमुख में स्थित थी ।। ३१ ।। वह अति अदभुत—सहस्रों दैत्यों से अत्यन्त गहन—वायु अग्नि, शैल और अम्बुद तोय के तुल्य दानवों का बल (सेना) रणों के समूह के अभ्युदय में अभ्युदीर्ण युद्ध करने की इच्छ से उन्मत्त के समान अवभासित हो रहा था ॥ ३२ ॥

६७—सुरसैन्य विस्तार वर्णन

श्रुतस्ते दैत्सैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन ! ।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु ।।१
आदित्या वसवोरुद्रा अश्विनौच महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चव सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ।।२
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालाः सहस्रदृक् ।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुहोहसुरुद्विपम् ।।३

मध्ये चास्य रथ. सर्वपक्षिप्रवररंहसः ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ।।४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ।।५
वज्रविस्फूर्जितोद्भूतैर्विद्युदिन्द्रायुन्द्रायुधादितैः ।
युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ।।६
यमारूढः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! तुमने दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन श्रवण गत कर लिया है । अब सुरगणों की सेना का भी वैष्णव विस्तार श्रवण करलो । द्वादश आदित्य—आठ वसुगण—एकादश रुद्र—महान् बल सम्पन्न अश्विनीकुमार ये सब बलों और अनुगामियों के सहित क्रम के अनुसार ही सन्नद्ध हो गये थे ।। १ । २ ।। समक्ष में सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव—समस्त लोकपाल—सब देवों की ग्रामणी सुरों के शत्रु पर समारोहण करने वाले हो गये थे ।। ३ ।। मध्य में समस्त पक्षियों में श्रेष्ठ (गरुड़) के वेग वाले इनका सुचारु (सुन्दर चक्र चरणों वाला हेम और बज्र से परिष्कृत रथ था ।। ४ ।। उस रथ के पीछे सहस्रों देव—गन्धर्व—और यक्षों के समुदाय अनुगमन करने वाले थे तथा वे दीप्तिमान् सदस्यों के द्वारा और ब्रह्मर्षियों के द्वारा अभिष्टुत हो रहे थे ।। ५ ।। बज्र के तुल्य विस्फूर्जित एवं उद्भूत—विद्युत् और इन्द्रायुधों से समुदित स्वेच्छया गमन करने वाले पर्वतों के समान बलाहकों के गणों से युक्त थे ।। ६ ।। जिस रथ पर वह भगवान् समारूढ़ थे वह रथ समस्त जगत में परिगमन करता था और यज्ञशालाओं में समवस्थित विप्रगण हविर्धानों में गायन किया करते थे ।।७।।

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसाङ्गणे ।।८

केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः ।
युक्तो हयसहस्रेण तमो मारुतरंहसा ॥९
सस्यन्दनवरोभाति गुप्तोमातलिना तदा ।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा ॥१०
यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम् ।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान्नादेन भीषयन् ॥११
चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः ।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः ॥१२
कालपाशान् समाविध्यन् हयैः शशिकरोपमैः ।
वायवीरितैर्जलाकारैः कुर्वन् लीलाः सहस्रशः ॥१३
पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रचलन् रुचिराङ्गदः ।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हरिभारार्पितोवरः ॥१४
वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान् ।
युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः ॥१५

स्वर्ग में देव तूर्यों को निवादित करने वालों का इन्द्र के पीछे अनुगमन होने पर अप्सराओं के आँगन में सैकड़ों सुन्दरियाँ नृत्य कर रहीं थीं ॥ ८ ॥ नागराज केतु से युक्त वह रथ सूर्य्य के समान राजमान हो रहा था तथा मारुत के तुल्य वेग से संयुत एक सहस्र अश्वों से सम्पन्न माना गया है ॥ ९ ॥ उस समय में मातलि के द्वारा परम सुरक्षित वह श्रेष्ठतम स्यन्दन (रथ) पूर्णतया चारों ओर से परिवृत होकर भगवान् भास्कर के तेज से मेरु के समान शोभित हो रहा था ॥१०॥ काल से युक्त यमराज दण्ड और मुद्गर को उठाकर घोर गर्जन के द्वारा दैत्यों को भय उत्पन्न करते हुए सुरगणों की सेना में संस्थित थे ॥ १० । ११॥ देवगणों की सेना के मध्य में युद्ध के समय की अभिलाषा करते हुए वेला के भेदन करने वाले आर्णव के सदृश पाश को धारण करने वाले वरुणदेव स्थित हो रहे थे जो चारों सागरों तथा जीभ निकाल कर फुस्कारते हुए

सर्पों से युक्त थे और तोथमय वपु को धारण करने वाले शंख-युक्ताङ्गद को धारण कर रहे थे। वायु से प्रेरित-जल के आकार वाले—चन्द्र की किरणों के द्वारा कालपाशों को समाविद्ध करने वाले थे और सहस्रों प्रकार की लीलाऐं कर रहे थे। पाण्डुर वर्ण के वस्त्र को उद्धूत करने हुए तथा हिलने वाले रुचिर अङ्गदों के धारी—मणि के सदृश श्याम एवं उत्तम वपु वाले और हृदिभार से अपित वरदान से युक्त वरुण देव थे ।। १२-१५ ।।

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि ।
युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः ।।१६
राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत ।
विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः ।।१७
स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः ।
उद्दाणमास्थितः सख्ये साक्षादिव शिवः स्वयम् ।।१८
पूर्वपक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः ।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः ।।१९
चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः ।
स्वासु दिक्षुस्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते ।।२०

यक्षों और राक्षसों की सेना और गुह्यकों के गणों से समन्वित तथा शंख-पद्मों को धारण करने वाले निधियों के स्वामी प्रभु-गदा हाथ में ग्रहण किये हुए-विमानों के द्वारा युद्ध करने वाले राजराजेश्वर श्रीमान् धन अर्थात् कुबेर पुष्पक विमान में स्थित दिखलाई दे रहे थे ।।१६,१७।। युद्ध करने की इच्छा रखने वाले राजाओं के भी राजा नरवाहन वृषभ पर समास्थित युद्ध में साक्षात् स्वयं शिव के ही समान शोभित हो रहे थे ।। १८ ।। पूर्व दिशा में पक्ष वाले सहस्राक्ष इन्द्र देव थे। दक्षिण दिशा में पितृराज थे—पश्चिम में वरुण देव और उत्तर पक्ष में नर वाहन थे। इस तरह से चारों पक्षों में चार महान् बल विक्रम शाली लोकपाल थे

और वे अपनी-अपनी दिशाओं में उस देवों की सेना की रक्षा कर रहे थे ।।१६।२०।।

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना ।
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः ।।२१
उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना ।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम् ।।२२
सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा ।
चचार मध्ये लोकानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः ।।२३
सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान् ।
हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ।।२४
तमृक्षपूगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम् ।
शशच्छायाङ्कितततनुं नैशस्य तमसः क्षयम् ।।२५
ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसदं प्रभुम् ।
ओषधीनां सहस्राणांनिधानममृतस्यच ।।२६
जगतः प्रथमं भागं सौम्य सत्यमयं रथम् ।
ददृशुर्दानवाः सोम हिमप्रहरणं स्थितम् ।।२७
यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु ।
सप्तधातुगतो लोकां स्त्रीन्दधार चचार च ।।२८

अमितगामी—श्री से तथा दीप्यमान रश्मियों से जाज्वल्यमान रथ के द्वारा द्वादश स्वरूप वाले दिनेश्वर लोकों के मध्य में संचरण कर रहे थे। वह सूर्यदेव का रथ उदय और अस्त में गमन करने वाला—मेरु पर्वत पर जाने वाला—त्रिदिव द्वार के चक्र से समायुक्त—अव्यय लोक को ताप देने वाला—सहस्र रश्मियों से युक्त और भ्राजमान तेज से सम्पन्न था ।। २१, २२, २३ ।। शील रश्मियों वाले सोमदेव हिम से समन्वित जल से परिपूर्ण दीप्तियों से सम्पूर्ण जगत् को समाह्लादित करते हुए श्वेत अश्वों वाले रथ में शोभा पा रहे थे ।। २४ ।। उन सब दानवों

ने हिम के अस्त्र वाले वहाँ पर स्थित सोमदेव को देखा था जो नक्षत्रों के समुदाय से अनुगत—शिशिर किरणों वाला—द्विजेश्वर—शश की छाया से चिह्नित शरीर के धारण करने वाला—रात्रि के तम का क्षय करने वाला—समस्त ज्योतियों के व्योम में स्वामी—रसों में रस का प्रदान करने वाले—प्रभु—सहस्रों औषधियों के तथा अमृत के निधान थे ।। २५, २६, २७ ।। जो समस्त भूतों का प्राण है और नरों में पाँच प्रकार का होकर स्थित रहा करता है तथा सातों धातुओं में जल होकर तीनों लोकों का धारण किया करता है और सञ्चरण करने वाला भी था ।। २८ ।।

यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम् ।
सप्तस्वरवगतोयश्च नित्यङ्गीभिरुदीर्यते ।।२९
यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम् ।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगंशब्दयोगिनम् ।।३०
स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा ।
ववौप्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमंसतोयदः ।।३१
मरुतो दिव्यगन्धर्वैर्विद्याधरगणैः सह ।
चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिवपन्नगः ।।३२
सृजन्तः सर्पपतयस्ते व्रतोयमयं विषम् ।
शरभूता दिवीन्द्राणाञ्चेरुरुत्तानना दिवि ।।३३
पर्वतैश्च शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः ।
उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्त्तुं दानवे बले ।।३४
यः सदेवोहृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः ।
युगान्ते कृष्णवर्णाभो विश्वस्यजगतःप्रभुः ।।३५

जिसको अग्नि की रचना करने वाला—सबका प्रभव उत्पत्ति—ईश्वर—कहा गया है और जो सात स्वरों में रहने वाला नित्यङ्गियों के द्वारा उदीरित किया जाता है । जिसको सबसे उत्तम भूत कहते हैं और

जिसको बिना शरीर वाला कहते हैं तथा जिसको आकाश में गमन करने वाला-शीघ्रगामी और शब्दयोगी कहा गया है ॥ २६, ३० ॥ वह वायु अपने तेज से सम्पूर्ण भूतों का आयु उद्भूत हुआ है वह तोय देने वाला प्रतिलोम में दैत्यों को प्रकृष्ट रूप से व्यथित करता हुआ वहन करने लगा था । दिव्य गन्धर्वों के और विद्याधर गणों के साथ मरुत शुभ्र निर्युक्त पन्नगों के तुल्य असियों (खड्गों) स क्रीड़ा करने वाला था । ॥ ३१, ३२ ॥ सर्पों के स्वामी गण तीव्र तापपूर्ण विष का सृजन करते हुई दिवीन्द्रों के शरभूत बनकर दिवलोक में मुख फैलाये हुए संचरण कर रहे थे ॥ ३३ ॥ सुरगण पर्वतों शिला के शिखरों और सैकड़ों पादपों के द्वारा दानवों की सेना में प्रहार करने के लिये उपस्थित हो गये थे ॥ ३४ ॥ जो वह देव हृषीकेश थे वह पद्मनाभ-त्रिविक्रम-इस विश्व और और जगत् के प्रभु युग के अन्त में कृष्ण वर्ण की आभा वाले थे ॥ ३५ ॥

सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसंस्थितः ।
भूम्यपोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा ॥३६
अरिघ्नममरादीनाञ्चक्रं गृह्य गदाधरः ।
अर्कं नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा ॥३७
सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम् ।
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदाङ्गदाम् ॥३८
अन्येर्भुजैः प्रदीप्ताभर्भुजगारिध्वजः प्रभुः ।
दधारायुधजातानि शार्ङ्गादीनि महाबलः ॥३९
सकश्यपस्यात्मभुवद्विज भुजगभोजनम् ।
पवनाधिकसम्पात गगनक्षोभणं खगम् ॥४०
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजतम् ।
अमृतारम्भ निर्मुक्त मन्दराद्रिमिवाच्छ्रितम् ॥४१
देवासुरविमर्देषु बहुशोदृढविक्रमम् ।

महेन्द्रणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम् ।।४२

वह मधुदैत्य का हनन करने वाले—सबकी योनि तथा उत्पत्ति का स्थान-हव्य को खाने वाला—ऋतुओं में संस्थित-भूमि, जल और व्योम भूत स्वरूप—श्याम और अरियों का हनन करने वाला शान्तिकर था ।। ३६ ।। उन गदाधर प्रभु ने देवगणों के अरियों के मारने वाला चक्र ग्रहण किया था । वह चक्र अपने उत्तम तेज से मग से उदीयमान सूर्य्य के सदृश प्रतीत हो रहा था ।।३७।। सव्य कर से समस्त असुरों के विनाश करने वाली महती और वपु से शत्रुओं के काल को प्रदान करने वाली गदा को प्रभु ने ग्रहण किया था ।।३८। भुजगों के आरि (गरुड़) की ध्वजा वाले महान् बलवान् प्रभु ने अपनी अन्य भुजाओ के द्वारा जो कि प्रदीप्त आभा वाली थीं आर्ङ्क आदि आयुधों को धारण किया था । ।।३९।। वह प्रभु कश्यप महर्षि के पुत्र - भुजगों का भोजन करने वाला पक्षी - पवन से भी अधिक वेग से युक्त - गगन को क्षुब्ध करने वाला—खग—मुखमें निविष्ट भुजगेन्द्र के द्वारा विराजमान—अमृत के आरम्भ से निर्मुक्त अत्यन्त उच्च मन्दरणों के समान स्थित थे । वह गरुड़ देवों के और असुरों के विमर्दन करने वाले युद्धों में बहुत ही अधिक विक्रम से युक्त अमृत के लिये वज्र के द्वारा महेन्द्र से कृत लक्षण वाले थे ।।४०।। ।।४१।४२।।

शिखिनं बलिनञ्चैव तप्तकुण्डलभूषणम् ।
विचित्रपत्रवसनन्धातुमन्तमिवाचलम् ।।४३
स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा ।
भोगिभोगावसिक्तेन मणिरत्नेन भास्वता ।।४४
पक्षाभ्याञ्चरुपत्राभ्यामावृत्यदिविलीलया ।
युगान्तेसेन्द्रचापाभ्यान्तोयदाभ्यामिवाम्बरम् ।।४५
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम् ।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम् ।।४६

अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः ।
सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम् ।।४७
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः ।
गीर्भि परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम् ॥४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम् ।
द्विजराजपतिक्षिप्तं देवराजविराजितम् ।।४९
चन्द्रप्रभाभिर्विपुल यूद्धाय समवर्तत ।
स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति वृहस्पतिभारषत ।।
स्वस्त्यस्तु दानवानीके उशना वाक्यमाददे ।।५०।।

वह गरुड़ पक्षिराज—शिखी--वली - तप्त कुण्डल भूषण वाला-विचित्र पत्रों के वस्त्रों से युक्त धातुमान् एक अचल के तुल्य स्थित था ।। ४३ ।। वह गरुड़ स्फीत (लम्वे चौड़े) क्रोड में अवलम्ब वाले—शीतांशु (चन्द्रमा) के समान तेजयुक्त—भोगियों के भोग से अवसिक्त भास्वान् मणि रत्न से शोभित था । वह अपने सुन्दर पत्रों वाले पक्षों से युगान्त में इन्द्र के चापों से युक्त तोयदों से अम्बर की भाँति दिवलोक में लीला से आवरण करके स्थित था । वह गरुड़ देव नील—लोहित और पीत वर्ण वाली पताकाओं से समलंकृत-केतु के वेष में प्रतिच्छन्न-महान काया के निकेतन वाले अरुणदेव के छोटे भाई थे । उन गरुड़ पर जो सुन्दर वर्ण वाले सुवर्ण के वपु से सुपर्ण और खेचरों में सर्वोत्तम थे श्रीमान् प्रभु ने समर के अवसर पर समारोहण किया था ।। ४४, ४५, ४६, ४७ ।। उन प्रभु के पीछे गमन करने वाले देवगण और परम समाहित मुनिगण थे । जिन्होंने परम श्रेष्ठ मन्त्रों से समन्वित वाणियों के द्वारा भगवान् जनार्दन प्रभु का स्तवन किया था ।। ४८ ।। उन प्रभु के साथ में वैश्रवण कुवेर थे और वैवस्वत (यमराज) उनके आगे थे । वे द्विजराजों के पति से क्षिप्त और देवराज से शोभित थे इस प्रकार चन्द्र की प्रभाओं से परम विपुल वह प्रभु युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए थे ।

उस अवसर पर सुरों के गुरु वृहस्पति ने देवों का मङ्गल हो—ऐसा आशीर्वादात्मक वचन कहा था। उधर उशना असुरों के गुरु ने दानवों की सेना में स्वस्ति हो—यह वाक्य कहा था।

६८—देवासुर संग्राम वर्णन (१)

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलोविग्रहस्तदा।
सुराणामसुराणाञ्च परस्परजयैषिणाम् ॥१
दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः ॥२
तत् सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ।
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च ॥३
ततोरथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः।
उत्पतद्भिश्च गगनमसिहस्तैः समन्ततः ॥४
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः ॥५
तद्युद्धमभवद्घोरं देवदानवसङ्कुलम्।
जगतस्त्रासजनं युगसंवर्तकोपमम् ॥६
हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः।
दानवाः समरेजघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में उन दोनों सेनाओं से एक महान् तुमुल युद्ध उत्पन्न हो गया था। यह युद्ध परस्पर में जय की अभिलाषायें रखने वाले सुर और असुर इन दोनों का ही हुआ था ॥१॥ अनेक प्रकार के अस्त्रायुधों से उद्यत होने वाले दानव देवगणों के साथ पर्वतों की ही भाँति युद्ध करते हुए समक्ष में अनुपस्थित हो गये थे ॥ २॥

वह सुरों और असुरों का संयुक्त युद्ध अत्यन्त ही अद्भुत शोभा दे रहा था क्योंकि वह विनय और दर्प से, धर्म तथा अधर्म से समायुक्त था। देवों में विनय और धर्म था तो असुरों में घमण्ड और अधर्म था ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर विशेष रूप से प्रयुक्त और प्रकृष्ट रूप से प्रेरित गजों के द्वारा खड्ग हाथों में ग्रहण करने वाले चारों ओर से गगन में उत्पतन कर रहे थे। प्रक्षिप्त किये हुए मुसल—सम्पतन वाले सायक—विस्फार्यमाण चाप और पात्यमान मुद्गरों के द्वारा वह देवों और दानवों का संकुल महान् घोर युद्ध हुआ था और यह युद्ध सब जगत् को त्रास देने वाला था तथा युग के सम्वर्त्तक के ही तुल्य था ॥ ४, ५, ६ ॥ हाथों से छोड़े हुए परिघों के द्वारा तथा विशेष रूप से प्रयोग में लाये हुए पर्वतों के द्वारा दानव गण देवों का जिनमें महेन्द्र प्रमुख अग्रणी था हनन करने लगे थे ॥ ७ ॥

ते वध्यमाना वलिभिर्दानवैर्जयकाशिभिः ।
विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परामृधे ॥८
तेऽस्त्रशूलप्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः ।
भिन्नोरस्का दितिसतैर्वमूरक्तं व्रणैर्वहु ॥९
वेष्टिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः ।
प्रविष्टा दानवीं मायान्न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥१०
अस्तं गतमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति ।
बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्वायुधं कृतम् ॥११
दैत्यचापच्युतान् घोरांश्छित्वा वज्रण तांश्छरान् ।
शक्रो दैत्यवलं घोरं विवेश बहुलोचनः ॥१२
स दैत्यप्रमुखान् हत्वा तद्दानववलं महत् ।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३
तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च ।
घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४

उस महान् युद्ध में जय काशी बलशाली दानवों के द्वारा वध किये जाने वाले वे देवगण विषाद युक्त मुखों वाले होकर महान् पीड़ा को प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ वे सब देवता लोग त्रिशूलों से प्रमथित—परिघों के द्वारा भिन्न मस्तकों वाले और दिति के पुत्रों के द्वारा भिन्न उरःस्थल वाले शरीरों में होने वाले व्रणों से बहुत रक्त का वमन करने लगे थे ॥ ९ ॥ शरों के जालों से उनको एकदम वेष्टित करके असुरों ने यत्नों से रहित कर दिया था। देवगण दानवों की माया में प्रविष्ट होकर कुछ भी विशेष चेष्टा करने में समर्थ नहीं रहे थे ॥ १० ॥ असुरों के द्वारा सुरगणों के बल को प्रयत्न से रहित आयुधों वाला बना दिया था और वह प्राणों से रहित के समान आकृति वाला अर्थात् मुर्दे की भाँति अस्त को प्राप्त हुआ सा ही प्रतीत हो रहा था ॥ ११ ॥ दैत्यों के चापों से छूटे हुए उन परम घोर शरों को वज्र के द्वारा छेदन करके बहुत अधिक नेत्रों वाले इन्द्र ने उस अत्यन्त घोर दैत्यों को सेना में प्रवेश किया था ॥ १२ ॥ उस महेन्द्र ने प्रमुख दैत्यों का हनन करके फिर उस महान् दानवों के बल को तामस अस्त्रों के जाल से उसे एकदम तमोभूत अर्थात् अन्धकार मय कर दिया था ॥ १३ ॥ इन्द्र के तेज के प्रभाव से उस परम घोर तप से आविष्ट होकर वे दैत्यगण परस्पर में दैत्यों को और देवों के वाहनों को भी नहीं जान पा रहे थे ॥ १४ ॥

मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः ।
वपूंषि दैत्यसिंहानान्तमोभूतान्यपातयन् ॥१५
अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा ।
पेतुस्ते दानवणाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥१६
तद्घनोभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे ।
दानवन्देवकदनन्तमोभूतमिवाभवत् ॥१७
तदासृजन्महामायां मयस्तां तामसीन्दहन् ।
युगान्ताद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८

सा ददाह ततः सर्वान् मायामयविकल्पिता ।
दैत्याश्चादित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे ॥१६
मायामौर्वी समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः ।
भेजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशु सलिलप्रदम् ॥२०
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः ।
शशंसुर्वज्रिणं देवाः सन्तप्ताः शरणैषिणः ॥२१

माया के पाशों से विमुक्त हुए यत्नों वाले सुरोत्तम तमोभूत दैत्यों के सिंहों के समान शरीरों को भूमि पर मार कर गिराने लगे थे ।। १५ ।। नील वर्चस तम से एकदम अपध्वस्त और संज्ञा (चेतना एवं होश) से रहित वे दानव गण पक्षों के छेदन हो जाने वाले पर्वतों के ही समान भूमि पर पतित हो रहे थे ।। १६ ।। अर्जव में अन्धकार के समान उस घनीभूत दैत्येन्द्र और देवों के द्वारा कदन किये गये दानव तमोभूत की ही तरह हो गया था ।। १७ ।। उस समय में मय दानव ने देवों के द्वारा की हुई उस तामसी माया को दग्ध करते हुए एक अपनी महामाया का सृजन किया था जो औवं बह्नि के द्वारा सृजि हुई थी और युगान्त में उद्योत (प्रकाश) की जननी थी ।। १८ ।। मय दानव के द्वारा विरचित उस माया ने सबका दहन कर दिया था और फिर तुरन्त ही दैत्यगण देवों के वपु वाले होकर उस रण स्थल में समुत्थित हो गये थे । और्वी माया को प्राप्त करके दग्ध होते हुए देवगण इन्द्र का विषय सलिल का प्रदान करने वाले शीतांशु का सेवन करने लगे थे । और्व बह्नि से दह्यमान होकर वे देवगण एकदम नष्ट चेष्टाओं वाले हो गये थे । और फिर वे संतप्त हुए देवता लोग शरण की इच्छा वाले होते हुए इन्द्र से कहने लगे थे ।।१६. २०, २१ ।।

सन्तप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः ।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२
और्वो ब्रह्मर्षिजः शक्र ! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥

और्वः स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः ॥२३
तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जद्ददव्ययम् ।
उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सहः ॥२४
हिरण्यकशिपुञ्चैव दानवो दानवेश्वरः ।
ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम् ॥२५
ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम् ।
ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं पदम् ॥२६
एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वर्तते ।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्त्तसे ॥२७
बहूनि विप्र ! गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः ॥२८

मय दानव की रचित माया से सेना के सन्तप्त हो जाने पर तथा दानवों के द्वारा हनन किये जाने पर देवराज के द्वारा प्रेरित किये हुए वरुण देव ने यह वाक्य कहा था—हे इन्द्र ! ब्रह्मर्षि से जन्म लेने वाले और्व ने अतीव दारुण तपश्चर्या की थी। वह और्व पूर्व का ही तेजस्वी था तथा गुणों के द्वारा ब्रह्मा के सदृश था ॥ २२ । २३ ॥ तप के द्वारा इस अव्यय जगत् को आदित्य के समान तपाते हुये उसका देवर्षियों के सहित दिव्य मुनिगणों ने सस्तवन किया था। दानवेश्वर दानव ने हिरण्य कशिपु को पहिले परम तेजस्वी ऋषि को विज्ञापित किया था। ॥ २४ । २५ ॥ ब्रह्मर्षियों ने उससे परम धर्म्म से संहत वचन कहा था—हे भगवन् ! ऋषियों के वंशों में यह छिन्न मूल वाला ही है। आप एक ही सन्तान से रहित हैं और गोत्र के लिये अन्य कोई भी नहीं। आप इस कौमार व्रत में समास्थित होकर केवल क्लेश का ही अनुवर्त्तन कर रहे हैं। हे विप्र ! भावित आत्मा वाले मुनियों के बहुत-से गोत्र ऐसे हैं जो प्रजाओं के बिना एक ही देहों वाले विविक्त स्थित रहा करते हैं ॥ २६, २७, २८ ॥

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम् ।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः ।।२९
तत्र वर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना ।
त्वया धर्मोऽर्जितस्तेन द्वितीयांकुरु वै तनुम् ।।३०
स एवमुक्तो मुनिभिर्ह्यौर्वमर्मसु ताडितः ।
जगर्हे तान् ऋषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत् ।।३१
यथायं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतस्तु सः ।
आर्षं वै सेवतःकर्म वन्यमूलफलाशिनः ।।३२
ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः ।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत् ।।३३
जनानां वृत्तयस्तिस्रो यद् गृहाश्रमवासिनाम् ।
अस्माकन्तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम् ।।३४

इस प्रकार से उच्छिन्न मूलों वाले पुत्रों से हमारा कोई कारण नहीं है और आप तो तपस्या से परम श्रेष्ठ एवं प्रजापति के समान द्युति वाले हैं। अब उसमें आप वंश के लिये ही बरताव करें और आत्मा के द्वारा आत्मा की वृद्धि करें। आपने धर्म्म का तो पर्याप्त अर्जन कर ही लिया है। अब दूसरा शरीर भी बनाइये ।।२९।३०।। मुनिगणों के द्वारा जब इस प्रकार से उस मुनि से कहा गया था तो वह और्व मर्म स्थल में ताड़ित किया गया था। उसने उन ऋषिगणों की गर्हा की थी और फिर उनसे यह वचन बोला था। जिस प्रकार से मेरे द्वारा यह धर्म विहित किया गया है वह मुनियों का परम शाश्वत धर्म्म है। वन में समुत्पन्न मूल और फलों का अशन करने वाले तथा आर्ष कर्म को सेवन करने वाले—ब्रह्म योनि में समुत्पन्न—आत्मदर्शी ब्राह्मण का भली भाँति चरित ब्रह्मचर्य व्रत का बड़ा महान् माहात्म्य है यह तो ब्रह्मा को भी चलित कर देने वाला होता है। जो गृहाश्रम के निवासी जन हैं उनकी तीन

वृत्तियाँ होती हैं। हम जो बनाश्रम निवासी हैं उनकी यही वृत्ति परम श्रेष्ठ हैं ॥ २६–३४ ॥

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा ।
अश्मकुट्टा दश तथा पञ्चातपसहाश्च ये ॥३५
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः ।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति पराङ्गतिम् ॥३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदोजनाः ॥३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणा दिवि संस्थिता ॥३८
नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः ।
नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात् परन्तपः ॥३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम् ।
ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः ॥ ४०
अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया ।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम् ॥४१
क्व दाराः क्वच संयोगः क्वच भावविपर्ययः ।
नन्विथं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा ॥४२

जल के भक्षण करने वाले – वायु के भक्षण करने वाले तथा दन्तोलूखली—दश अश्म कुट्ट और जो पाँच आतपों के सहन करने वाले हैं। ये तप में आस्थित रहा करते हैं और जो परम दुष्कर व्रतों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पूर्ण परिपालन करके परागति की प्रार्थना किया करते हैं। ॥३५॥३६॥ परलोक में भी ब्रह्मचर्य के महान् महत्व के ज्ञाता लोग इसी प्रकार से कहा करते हैं कि ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व स्थित रहा करता है।.३७। इस ब्रह्मचर्य्य में ही धैर्य की स्थिति रहा करती है और इस ब्रह्मचर्य्य में ही तप स्थित रहता है। जो ब्राह्मण अपने पूर्ण

ब्रह्मचर्य्य व्रत में टिके हुये हैं वे दिवलोक में संस्थिति रक्खा करते हैं। ।।३८।। योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं हुआ करती है और जब कोई सिद्धि नहीं होती है यश भी लोक में नहीं हुआ करता है तथा लोक में यश का मूल नहीं है और ब्रह्मचर्य्य से अधिक कोई भी तप नहीं होता है ।।३९।। जो कोई भी पुरुष अपनी इन्द्रियों के समूह को पाँचों भूतग्रामों को निग्रहीत करके ब्रह्मचर्य्य व्रत का पूर्ण पालन किया करता है फिर इससे अधिक अन्य क्या तप हो सकता है। यही सबसे परम श्रेष्ठ तप होता है ।।४०।। अयोग में केशों का धारण करना—बिना ही किसी सङ्कल्प के व्रतों की क्रिया का सम्पादन करना और अब्रह्मचर्य में अपनी चर्या रखना ये तीनों कर्म्म दम्भ की सज्ञा वाले ही कहे गये हैं ।। ४१ ।। कहाँ तो दारा का संयोग हुआ था और कहाँ भावों का विपर्यय ही हुआ था अर्थात् दारा—संयोग और भावों की विपरीतता ये तीनों ही बातों का बिल्कुल अभाव था तो भी ब्रह्मा के द्वारा मन से ही यह मानसी प्रजा का सृजन किया गया था ।।४२।।

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
सृजध्वं म नसान् पुत्रान् प्रजापत्येन कर्मणा ।।४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ।।४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम् ।। ४५
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम् ।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ।।४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः ।।४७
और्वस्तु तपसाविष्टोनिवेश्योरुं हुताशने ।
ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्त प्रभवारणिम् ।।४८
तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।

जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत ।। ४६

यदि आत्मा के ज्ञान को जानने वाले आप लोगों में कुछ भी तप का वीर्य विद्यमान हैं तो आप प्रजा पत्य कर्म के द्वारा मानस पुत्रों का सृजन करिए ।। ४३ ।। मन के द्वारा ही निर्मित की हुई योनि ही तपस्वियों को आधान करनी चाहिए । दारा के साथ दोग करना तथा वीज का प्रयीग करना तपस्वीयों का व्रत नहीं बताया गया है ।। ४४ ।। यहां पर आप लोगों ने जो भी निर्भय होकर इस लुप्त धर्म और अर्थ से युक्त वचन को कह डाला है । यद्यपि आप लोक ससुरुष है जिन्होंने इसको यहां पर प्रति पादन किया है तोभी वह मुझको असत्पुरुष के कथन के समान ही प्रतीत होता है मैं इस हीप्त अन्तरात्मा वाले वपु को मनोयम करके दारा के योग के बिना पी आत्म तनुरुह पुत्र का सृजन करूँगा । इसी प्रकार से यह मेरी आत्मा द्वितीय आत्मा नो जन्म ग्रहण करायेगी और इसी वन्य विधि के द्वारा प्रजा की भाँति ही जलाने वाली ही जायगी । उस और्व ने तप से समाविष्ट होकर अपने ऊरुको हुताशनों निवेशित कर निया था और एक धर्म में सुनकी दर्भारणि का मंथन किया था ।। ४५ ।। ४६ ।। ४७ ।। ४८ ।। उस के अरु का सहसा भेदन करक विना ही ईंधन वाला ज्वालाभाली और इस जगत् को ह्मच कर देने की आऊङ्क्षा वाला अग्नि पुत्र समुः हुआ था ।। ४६ ।।

ऊर्वस्योरूं विनिर्भिद्यऔर्चा नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जषेपरमकोपनः ।।५०
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं श्लणया गिरा ।
क्षुधामे बाधते तात ! जगद्भूक्ष्ये त्यजस्वमाम् ।।५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशोदश ।
निर्दयन् सर्वभूतानिववृधे सोऽन्तकोऽनलः ५२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयांकुरु ।।५३

अस्यापत्यस्य ते विप्र! करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
तथ्यमेतद्वचः पुत्र! शृणु त्वंवदताम्बरः ॥५४
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवांच्छिशोः ।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहायवै ॥५५
प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवन्! तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ॥ ५६
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम् ।
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः ॥ ५७

उस ऊर्व की ऊरु का विनिर्भेदन करके 'और्वा नाम वाला अनल अन्त कर देने वाला परम कोप से समन्वित तीनों लोकों को दग्ध सा करता हुआ समुत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होने के ही साथ उसने परम विनम्र वाणी से अपने पिता से प्रार्थना की थी कि हे तात! मुझे यह क्षुधा अत्यन्त अधिकता के साथ सता रही है। मैं इस जगत् का भक्षण करूँगा आप मुझे अपनी क्षुधा के निवारण करने के लिये मुझे छुट्टी दे दीजिए ॥५०,५१॥ त्रिदिव में समारोहण करने वाली ज्वालाओं से दशों दिशाओं में जृम्भमाण होता हुआ समस्त भूतों को दया से रहित होकर दलित करता हुआ गया था। इसी बीच में वह अन्तक अनल वृद्धि को प्राप्त हो ब्रह्मा ने ऊर्व मुनि का समाजन करते हुए उससे कहा थाकि हे पुत्र!इसका वारण करो तथा इस जगत् पर दया करो।५२, ५३॥ हे विप्र! मैं आपकी इस सन्तति का समुचित स्थान स्थिर कर दूंगा। हे पुत्र! बोलने वालों में परम श्रेष्ठ आप मेरे अतींव तथ्य वचन का श्रवण करो ॥५४॥ ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य और अतीव अनुगृहीत हूं कि आज भगवान् आपने इस समय में इस शिशु को ऐसी बुद्धि मुझपर परम अनुग्रह करने के लिये प्रदान की है। प्रभात काल के सम्प्राप्त होने पर आपका समागम आकाङ्क्षणीय है। हे भगवन्! यह बतलाइये कि किन हव्यो से तर्पित हुआ मेरा पुत्र सुख प्राप्त करेगा? इसका निवास स्थल कहाँ पर होगा और इसके भोजन

का स्वरूप होगा ? भगवान् आप इस महान् ओज वाले के वीर्य्य के तुल्य ही इन बातों की व्यवस्था कर देंगे ।। ५४–५७ ।।

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति ।
मम योनिर्जलंविप्र! तस्य पीतवतः सुखम् ।। ५८
यत्राहमास नियतं पिवन् वारिमयं हविः ।
तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यलयञ्च तत् ।।५९
ततो युगान्ते भूतनामेष चाहञ्च पुत्रक ! ।
सहितौ विचरिष्यावा निष्पुत्राणामृणापहः ।।६०
एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः ।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ।। ६१
एवमस्त्वितितं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः ।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरिप्रभाम् ।।६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः ।
ऊर्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वाङ्गतिमुपाश्रिताः ।।६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समुद्र में वड़वा के मुख में इसका निवास स्थल होगा । हे विप्र ! मेरी उत्पत्ति की योनि जल पीने वाले इसको सुखकर होगा और जहाँ पर हूँ वही पर नियत रूप से वारिमय हवि का पान करेगा तथा वह हवि आपके पुत्र के निमित्त मैं लय काल पर्यन्त विसर्जित कर देता हूँ ।। ५८ । ५९ ।। इसके पश्चात् हे पुत्र ! भूतों के युग के अन्त में यह आपका पुत्र और मैं दोनों एक साथ में मिलकर निष्पुत्रो के ऋण का अपहरण करने वाले विचरण करेंगे । इस अग्नि को अन्तकाल में मैंने सलिल का अशन करने वाला कर दिया है जो समस्त भूतों का तथा देव–असुर और राक्षसों का दमन करने वाला होगा । ऐसा ही होवे—यह कहकर वह अग्नि संवृत ज्वालाओं के मण्डल वाला अपने पिता ऊर्व में प्रभा को प्रक्षिप्त करक अर्णव के मुख में प्रवेश कर गया था । इसके अनन्तर ब्रह्माजी तथा सब महर्षिगण प्रति-

यान कर गये थे। ऊर्व की अग्नि की प्रभा को जानकर सब अपनी गति का उपाश्रय कर गये थे।।६०–६३ ।।

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् ।
ऊच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ।।६४
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्त' लोकसाक्षिकम् ।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ ! परितुष्टः पितामहः ।।६५
अहन्तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ! ।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा ।।६६
तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम् ।
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ ! तवैव स्यात् पराजयः ।।७०
धन्योऽस्म्यनुग्रहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुः स्थितः ।
नास्तिमे तपसानेन भयमद्येहसुव्रत ! ।।७१
तामेव मायां गृह्णाष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
निरिन्धनामग्निमयीन्दुर्धषां पावकैरपि ।।७२
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्नहे ।
संरक्षत्यात्मपक्षञ्च विपक्षञ्च प्रधर्षति ।।७०

उसी समय में उस महान् अद्भुत को हिरण्य कशिपु देखकर उच्च भाव से सब अङ्गों को प्रणत करने वाला होकर यह वाक्य बोला था ।। ६४ ।। हे मुनिश्रेष्ठ ! यह लोक का साक्षिक अद्भुत हो गया है। हे भगवन् ! आपकी तपश्चर्य्या से पितामह भी परितुष्ट हो गये हैं ।।६५।। हे महाव्रत ! मैं तो आपके पुत्र का और आपका भृत्य ही हूँ—ऐसा ही अवगमन कर लीजिए जो कि यहाँ पर कर्म्म के द्वारा साधना के योग्य है। इसलिये उस मुझको आपके ही समाराधन में सम्पन्न ही देखिये। हे मुनि श्रेष्ठ ! यदि मैं आपका अनुगामी सेवक होकर भी दुःखित रहता हूँ तो यह आपका ही पराजय होगा। ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य हूँ और परम अनुगृहीत हूँ कि जिस तुझका मैं गुरु समवस्थित हो गया हूँ।

हे सुव्रत ! आज यहाँ पर मेरे इस तप से कोई भी भय नहीं है । मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को ग्रहण करो जो बिना ईंधन वाली पावकों द्वारा भी दुर्धष और अग्निमयी है । यह तेरे अपने वंश के वश में गमन करने वाले अरियों से विशेष निग्रह में अपने पक्ष की रक्षा करेगी और विपक्ष को प्रधर्षित करेगी ।। ६६–७० ।।

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ।.७१

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ।।७२

तस्मिंस्तु व्युत्थितेदैत्येनिर्वीर्य्यैषा न संशयः ।
शापोह्यस्याः पुरा दत्तोसृष्टायेनैवतेजसा ।।७३

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान् सुखी ।
दीयतां मे सखा शक्र ! तोययोनिर्निशाकरः ।। ७४

तेनाहं सह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्नसंशयः ।। ७५

ऐसा ही होगा–ऐसा कहकर उसको ग्रहण किया था और फिर उस श्रेष्ठ मुनि को प्रणाम करके दानवेश्वर प्रसन्न एवं कृतार्थ होकर त्रिदिव को चला गया था ।।७१।। यह माया दुर्विषह है और देवगणों के द्वारा भी दुरासह है । इसको ऊर्व के पुत्र पावक और्व के द्वारा पूर्व में निर्माण किया गया था ।।७२।। उस दैत्य के व्युत्थित होने पर यह निर्वीर्य्य हो जाया करती है इस में कुछ भी संशय नहीं है । जिस जिस तेज के द्वारा इस का सृजन किया गया था उसी के द्वारा पहिले इस को शाप भी दिया गया है। यदि मह माया प्रतिहनन के योग्य करनी है तो भगवान् को सुख से सम्पन्न एवम् प्रसन्न करना चाहिए । हे इन्द्रदेव ! अतएव तोय की योनि निशाकर मेरा सखा देदो ।।७३।।७४।। उसके साथ मैं संगत होकर और

यादव गणों से समावृत होकर आपकी कृपा एवं प्रसाद से उस माया का मैं हनन कर दूँगा—इस में लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥७५॥

६६—देवासुर संग्राम वर्णन (२)

एवमस्त्वति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ।
सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१
गच्छ सोम ! सहायत्वंकुरुपाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयार्थञ्चदिवौकसाम् ॥२
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषाञ्चेश्वरेश्वरः ।
त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ॥ ३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।
परिवर्त्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ॥४
लोकच्छायामयः लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः ।
न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोनयः ॥ ५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
तमः प्रोत्सार्य सहसा भासयस्यखिलं जगत् ॥६
अधिकृत्कालयोगात्माइष्टोयज्ञस्यसोऽव्ययः ।
औषधीशः क्रियायोनिरब्जयोनिरनुष्णभाः ॥

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा--ऐसा ही होवेगा—यह कहकर परम प्रहर्षित और देवों की वृद्धि करने वाले इन्द्र ने सोम के समक्ष में युद्ध करने के लिए शिशिर आयुध के प्रयुक्त करने का सन्देश दे दिया था और सोम से उसने कहा था कि हे सोम ! तुम तुरन्त ही चले आओ और पाशधारी वरुण देव की युद्ध में सहायता करो यह इस प्रकार से तुम्हारा इस समय में वरुण का सहायक होना असुरों के विनाश के लिये

तथा देवगणों की विजय प्राप्त करने के लिये ही होगा ॥१॥२॥ हे सोम ! आप मत्त हैं और मुकाबले के प्रतिवीर्य—विक्रम वाले हैं तथा आप समस्त ज्योतियों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। रसों के वेत्ता लोग सब लोकों में आप से परिपूर्ण रस को भली भांति कहा करते एवं जानते हैं ॥३॥ मण्डल में सागर की ही भाँति आपकी क्षीणता तथा वृद्धि स्पष्ट हैं और जगत् में अहोरात्र के काल को योजित करते हुए आप परिवर्तित हुआ करते हैं। आपका यह शश के सदृश जो अङ्क में चिन्ह है यह लोकों की इच्छा से ही परिपूर्ण है और इस को नक्षत्रों की योनि वाले जो देवगण भी हैं वे भी हे सोम ! नहीं जानते हैं ॥४॥५॥ आप आदित्य के पथ से भी ऊपर सब ज्योतियों के उर्ध्वभाग में समवस्थित हैं। आप सहसा इस तम को प्रोत्साहित करके सम्पूर्ण जगत् को अपने सुन्दर प्रकाश से भासित कर दिया करते हैं ॥६॥ आप अधिकृत कालयोग के स्वरूप वाले—यज्ञ के अभीष्ट और अविनाशी हैं। आप औषधियों के स्वामी—सब क्रियाओं की योनि—अब्ज योनि और शीतल दीप्ति से समन्वित हैं ॥७॥

शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः ।
त्वं कान्तिःकान्तिवपुषात्वं सोमःसोमपायिनाम् ॥८
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ।
तद्गच्छ त्वं महासेन ! वरुणेन वरूथिना ॥
शमयत्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ॥९
यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज ! वरप्रद ! ।
एवं वर्षामि शिशिरन्दैत्यमायापकर्षणम् ॥१०
एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य स्वहिमवेष्टितान् ।
विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे ॥११
तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सपाशा हिमवृष्टयः ।
वेष्टयन्तिस्म तान् घोरान्दैत्यान्मेघगणाइव ॥१२

तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्दू महाबलौ ।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ॥१३
द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ॥१४

हे सोम ! आप शीतल किरणों वाले—अमृत के आधार—चपल श्वेत वाहन हैं। आप इस अपने कान्तिपूर्ण शरीर के द्वारा स्वयं ही कान्ति हैं और सोम के पान करने वालों के लिए साक्षात् सोम स्वरूप वाले हैं। आप समस्त भूतों के लिये परम सौम्य हैं तथा सब ऋक्षों के राजा और तिमिर के नाश करने वाले हैं। इसीलिये हे महासेन ! वरूथी वरुण के साथ सहायता करने के लिए आप शीघ्र ही चले जाइये तथा जिससे हम सब युद्ध में दग्ध हुए जा रहे हैं उस इस आसुरी माया का शमन कीजिए ॥ ८ ॥ ९ ॥ इन्द्रदेव के इस प्रकार से प्रार्थना करने पर सोम ने कहा—हे देवराज ! हे वर प्रदान करने वाले देव ! जो आप युद्ध करने के लिये मुझे कह रहे हैं। मैं अभी दैत्यों की माया के अपकर्षण करने वाले शिशिर की वर्षा करता हूँ। आप इन सबको मेरे हिम से सवेष्टित और मेरे शीत से निर्दग्ध देखिये। इस महायुद्ध में इन सब दैत्य सिंहों को मद और माया से रहित हुए ही आप देखेंगे ॥१०।११॥ उनको हिमकिरणों से समुत्सृष्ट पाशों के सहित हिम की वृष्टियों में घोर दैत्यों को मेघ गणों की ही भाँति वेष्टित कर दिया था ॥ १२ ॥ महान् बलवान् पाश और शीतल किरणों को धारण करने वाले वरुण और चन्द्र दोनों ने उन दानवों का हिम के पातों तथा पाशों के पातों से हनन कर दिया था ॥१३॥ वे दोनों अम्बु के स्वामी—पाश और हिम से युद्ध करने वाले उस महान् घोर रण में जलों से क्षुब्ध दो महार्णवों की भाँति ही विचरण कर रहे थे ॥१४॥

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानमदृश्यत ।
जगत् संवर्तकाम्भोदः प्रविष्टरिवसंवृतम् ॥१५

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ॥१६
शीतांशुजाल निर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे ।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्काइवाद्रयः ॥१७
शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ॥१८
तेषान्तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै ।
विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्यूत्पतन्तिच ॥१६
तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितांश्छीतरश्मिभिः ।
मयोददर्शमायावी दानवान्दिविदानवः ॥२०

उन दोनों से आप्लावित दानवों की सेना उस समय में दिखलाई नहीं दे रही थी और यह सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हुए सम्वर्त्तक अम्भोदों के द्वारा संवृत की तरह ही हो गया था ॥ १५ ॥ उन समुपत हुए शशांक और वरुण दोनों अम्बुनाथों ने देवों ने दैत्यों के द्वारा निर्माण की हुई उस माया का एकदम शमन कर दिया था । शीतांशुओं के जाल से निर्दग्ध हुए तथा पाशों से रणस्थल में स्पन्दित हुए सब दैत्यगण बिना शिर वाले पर्वतों के समान ही चलने में असमर्थ हो गये थे ॥१६, १७ ॥ शीत किरणों से निहत हुए तथा जल और हिम से अर्दित तथा हिम से प्लावित समस्त अङ्गों वाले सब दत्यगण बिना ऊष्मा (ताप) वाली अग्नियों के ही तुल्य हो गये थे ॥१८॥ दिवलोक में उन दैत्यों के विपरीत प्रभा वाले विचित्र विमान ऊपर उड़ते थे और नीचे भूमि पर गिर जाया करते थे । उस समय में दिवलोक में मायावी दानव मय ने उन सब दानवों को पाश हस्त ग्रथित और शीत रश्मियों से समाच्छादित देखा था ॥१६, २०॥

स शिलाजालविततां खड्गचर्माट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ॥२१

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्गजयूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ।।२२
निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् ।
प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्ससमन्ततः ।। ३
सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चप्यजीवयत् ।।२४
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ।।२५
साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा ।
अभवत् घोरसञ्चार्या पृथिवी पर्वतैरिव ।।२
अश्मना प्रहताः केचित् शिलाभिः शकलीकृताः ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन ।२७
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ।।२८

उस समय में उस मय दानव ने शिला के जालों से वितत—खड्ग चर्मों के अट्टहास वाली—पादपों के उत्कट कूटों के अग्र भाग वाली—कन्दराओं से समाकीर्ण, काननों से युक्त—सिंह एवं व्याघ्रों के गणों से संकुल—चिंघाड़ते हुए गजों के यूथों से समन्वित—ईहामृग गणों से आकीर्ण—पवन से आघूर्णित द्रुमों वाली—दिवलोक में स्वेच्छया गमन करने वाली—कूजित और अपने ही यत्न से निर्माण की हुई परम प्रथित पार्वती माया को चारों ओर सृजित कर दिया था । उसने असि के शब्दों से—शिलाओं की वर्षा से—और सम्पात करने वाले पादपो से देवों के सङ्घों का हनन कर दिया था तथा दानवों को जीवित कर दिया था । उस पार्वती माया में नैशाकरी और वारुणी दोनों मायाऐं अन्तर्हित हो गई थीं और देवगणों को असि तथा आयास गणों से रण में तितर-बितर कर दिया था ।। २१, २२, २३, २४, २५ ।। अश्म यन्त्र और

आयुधों से घन—द्रुम और पर्वतों से संकट वह माया पर्वतों से पृथिवी के समान अति घोर संचरण के योग्य हो गई थी ।। २६ ।। कुछ पाषाणों से प्रहृत हुए थे और कुछ शिलाओं से खण्ड २ कर दिये गये थे और द्रुमगणों से अनिरुद्ध कोई भी देवता दिखलाई नहीं दे रहा था । भगवान् गदाधर को वर्जित करके सम्पूर्ण सुरों की सेना अपध्वस्त धनुषों वाली—भग्न प्रहरणों से आविल (मलिन) और प्रयत्न सहित बन गई थी ।। २७, २८ ।।

स हि युद्धगतः श्रीमानीशानोऽश्मभ्यकम्पत ।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी नचुक्रोधगदाधरः ।।२९
कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दन्तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः ।।३०
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ।।३१
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ।।३२
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः ।
दैत्यसेनान्ददहतुर्युगान्तेष्विवमूर्छितौ ।।३३
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ।।३४

उस समय में युद्ध में गमन करने वाले श्रीमान् ईशान पाषाणों से कम्पित हो गये थे किन्तु जगत् के स्वामी भगवान् गदाधर ने सहिष्णुता के गुण होने के कारण से क्रोध नहीं किया था । काल के ज्ञाता—कालमेघ के तुल्य आभा वाले हरि ने उस समय में उस युद्ध में काल को देखते हुए वह देवासुरों के विमर्द को देखने की कामना वाले हो गये थे । इसके उपरान्त भगवान् ने उस रण में पावक और मारुत को देखा था और वे दोनों विष्णु के वाक्य से प्रेरित होकर उस माया का अपकर्षण

करने वाले हुए थे। उस महायुद्ध में उद्गान्त वेगों वाले और प्रवृद्ध उन दोनों के द्वारा वह पार्वती माया दग्ध तथा भस्मीभूत होकर नष्ट हो गई थी ।। २९, ३०, ३१, ३२ ।। वह अनिल (वायु) अनल (पावक) से संयुक्त और वह अग्नि वायु से समाकुल होकर इन दोनों ने युग के अन्त में मूर्छित होने के समान दैत्यों की सेना का दहन कर दिया था ।। ३३ ।। वहाँ पर वायु प्रधावित हुआ था और पीछे से अग्नि वायु के अनुसार ही धावमान हुआ था। इस तरह से अनिल और अनल दोनों दानवों की सेना में क्रीड़ा करते हुए चरण करते थे ।। ३४ ।।

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च ।
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः ।।३५
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्म्मणि पावके ।
मया वधे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे ।।३६
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने ।
संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः ।।३७
जये दशशताक्षस्य दैत्यानाञ्च पराजये ।
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्म्मविस्तरे ।।३८
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे ।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारित्रबन्धुषु ।।३९
यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु ।
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने ।।४०
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च ।
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु ।।४१
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्म्मणाम् ।
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति ।।४२

चारों ओर से दानवों के विमानों के नीचे गिर जाने पर उनके ऊपर उड़कर भूमि गिरने पर तथा भस्मीभूत अवयवों के होने

पर एवं वीत स्कन्ध से अपविद्ध हो जाने पर पावक के द्वारा किए हुए कर्म्म में मय का वध हो गया था और भगवान् गदाधर का स्तवन किया गया था ॥ ३५, ३६ ॥ जिस समय में मय दानव का वध हो गया था तो सभी दैत्य निष्प्रयत्न हो गये थे तथा त्रैलोक्य बन्धन से मुक्त हो गया था । सब देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और, सभी ओर "साधु-साधु" अर्थात् अच्छा हुआ की ध्वनियाँ होने लगीं थीं ॥ ३६ ॥ इन्द्रदेव को जय होने पर और दैत्यों का पराजय हो जाने पर सब दिशाऐं विशुद्ध हो गईं थीं एवं धर्म्म का विस्तार प्रवृत्त हो गया था ॥ ३८ ॥ चन्द्रदेव अपावृत हो गये थे तथा दिवाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये थे एवं चरित्र के बन्धु तीनों लोक अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो गये थे ॥ ३९ ॥ यजमानों में और भूतों में पाप प्रशान्त हो गये थे तथा अभिन्न बन्धन वाला मृत्यु अग्नि में हूयमान होगया था ॥ ४० ॥ सब देवगण यज्ञों में शोभा प्राप्त करने लगे तथा स्वर्ग के अर्थ का प्रदर्शन करते थे । सभी लोकपाल अपनी २ दिशाओं में यानों मे वर्त्तमान हो गये थे ॥ ४१ ॥ उस समय में सिद्धों का तपश्चर्या में भाव स्थित हो गया था और जो पाप पूर्ण कर्म करने वाले थे उनकी अभाव में स्थिति थी । देवों का पक्ष परम प्रमुदित हो गया और दैत्यों का पक्ष एकदम विषाद से ग्रस्त था । ४२ ॥

त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे
अपावृत्ते महाद्वारे वर्त्तमाने च सत्पथे ॥४३
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च ।
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ॥४४
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे ।
अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते संग्रामकर्म्मणि ॥४५
तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां तज्जयकृत्क्रिया ।
पूर्वंदेवभय श्रुत्वा मारुताग्निकृतंमहत् ॥४६

कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ।
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः ।।४७
बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान् ।
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान् ।।४८

उस समय में तीन पादों वाला धर्म का निग्रह था और अधर्म केवल एक ही पाद से युक्त था । महाद्वार के अपावृत्त होने पर सब लोग सत्पथ में वर्त्तमान हो गये थे ।।४३।। लोक अपने २ धर्मों और आश्रमों में प्रवृत्त थे तथा सब नृपति गण अपनी प्रजा की रक्षा कार्य में युक्त एवं भ्राजमान होगये थे ।। ४४ ।। सम्पूर्ण लोक प्रशान्त कल्मषों वाले थे एवं दानवीय तम भी एक दम शान्त होगया था । वहाँ पर अग्नि और मारुत का सग्राम जब हुआ था तभी यह सब होगया था बहुत से लोक तन्मय होगये थे और उन दोनों से उनके विजय की करने वाली क्रिया भी हुई थी । मारुत और अग्नि के द्वारा किये हुए महान् पूर्व देवों का भय श्रवण करके परम विख्यात कालनेमि नाम वाला दानव वहाँ पर दिखलाई दिया था जिसका भास्कर के आकार के सदृश मुकुट था और वह शिञ्जित आभरणों एवं अङ्गदों वाला था । वह काल नेमि अपनी बाहुओं से व्योम तोलन करने लगा और पैरों से बड़े २ महीधरों को भी छिद्र करता था । वह वृष्टि से युक्त बलाहकों को मुख के निश्वासों के द्वारा प्रेरित करता था ।।४४–४८।।

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ।।४६
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशोदश ।
संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम ।।५०
सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा ।
लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितकर्म्मणा ।।५१
उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।

दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ।।५२
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम् ।
वीक्षन्तेस्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः ।।५३
तं वीक्षन्तिस्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमाधिकमतं नारायणमिवापरम् ।।५४
सोऽत्युच्छ्रयपुरः पादमारुता घूर्णिताम्बरः ।
प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः ।।५५
समयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे ।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः स विष्णुरिव मन्दरः ।।५६
अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः ।
कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ।।५७

जिस समय में वह कालनेमि वहाँ रणस्थल में समागत हुआ था उस समय वह तिर्यक्—आयत और रक्त नेत्रों वाला था—उसका स्वरूप मन्दर गिरिके तुल्य उदग्र वर्चस से युक्त था—युद्ध में सब देवों को सन्तप्त करता हुआ समायात हुआ था ।।४६।। समस्त सुरों को डाँटता फटकारता हुआ दशों दिशाओं में समाच्छादन करता हुआ और सम्वर्त्त काल में तृषित समुत्थित मृत्यु की भाँति दिखलाई दिया था। उच्छ्रय से युक्त—सुन्दर तल वाले—विपुल अंगुलियों के पर्वों से पूर्ण—लम्बे आभरणों से संयुत—कुछ चलित कर्मों वाले—उच्छ्रित—वपुष्मान् दाहिने हाथ से देवों के द्वारा मारे हुए दानवों से उठकर खड़े हो जाओ'—ऐसा कह रहा था ।।४६—५२।। उस समर क्षेत्र में द्वेष करने वाले शत्रुओं का काल चेष्टित कालनेमि को भय से विशेष भीत लोचनों वाले समस्त सुरगण देख रहे थे ।। ५३ ।। चारों ओर क्रमण करते हुए उस कालनेमि को त्रिविक्रम (वामन) से भी अधिक माने हुए दूसरे नारायण के भी समान स्वभूता (प्राणी) देखते थे ।।५४।। अत्यन्त उच्छ्रयपुर वाले—पैरों की मारुत घूर्णित अम्बर से सम्पन्न उस असुर ने

प्रक्रमण करते हुए युद्ध स्थल में देवगणों को डरा दिया था ॥५५॥ इसके अनन्तर रण में समय वाले असुरेन्द्र से परिष्वक्त होकर वह कालनेमि विष्णु मन्दर के समान शोभित हुआ था ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर समस्त देवगण जिनमें इन्द्र देव सबके अग्रगामी थे दूसरे काल के ही समान आते हुए उस कालनेमि को देखकर विशेष रूप से व्यथित हुए थे ॥ ५७ ॥

७०—कालनेमि वृत्तान्त वर्णन

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः ।
विवर्द्धितमहातेजास्तपान्ते जलदो यथा ।।१
तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ।।२
ते वातभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः ।
तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ।।३
रेजुरायाधनगता दानवाः युद्धकाङ्क्षिणः ।
मन्त्रमभ्यसतान्तेषां व्यूहञ्च परिधावताम् ।।४
प्रेक्षताञ्चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ।
ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ।।५
ते तु सर्वे भयन्त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
मयम्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।।६
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ।
अरिष्टोबलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ।।७
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः ।
एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वेतपसिसुस्थिताः ।।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दानवों की सेनाओं में महासुर कालनेमि विशेष वर्धित हुए महान् तेज वाला तप के अन्त में जलद के तुल्य ही था ।। १ ।। त्रैलोक्य के अन्तर्गत उसको देखकर ही दानवेश्वर अत्युत्तम अमृत का पान करके अपरिश्रान्त होते हुए उठकर खड़े होगये थे ।।२।। तारकामय संग्राम में निरन्तर जित काशी के सब दानव जिनमें मय और तार पुरोगामी थे भय और सन्त्रास को व्यतीत कर देने वाले थे ।। ३ ।। मन्त्रों का अभ्यास करने वाले और व्यूह का परिधावन करने वाले उनमें युद्ध की इच्छा रखने वाले दानव युद्ध स्थल में पहुँच कर अधिक शोभा एवं दीप्ति को प्राप्त हुए थे ।। ४ ।। जो लोग वहाँ पर मय दानव के परम मुख्य युद्ध पुरःसर थे कालनेमि दानव को देखने वाले उनकी अत्यधिक प्रीति हो गयी थी ।।५।। वे सभी भय का त्याग करके परम हर्षित होते हुए युद्ध करने के लिये वहां पर उपस्थित हुए थे। उनमें मय—तार—वराह—वीर्यवान्—हयग्रीव—विप्रचित्तिका पुत्रश्वेत दोनों खर और लम्ब—बलिका पुत्र अरिष्ट और किशोर नामधारी—स्वर्भानु--अमर प्रख्य-महासुर वक्त्रयोधी ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता तथा सभी तपश्चर्य्या में भी सुस्थित रहने वाले थे ।।६—८।

दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिं तमुद्धतम् ।
ते गदाभिर्भुशुण्डीभिस्चक्रैरथ परश्वधैः ।।९
कालकल्पैश्च मुसलैःक्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः ।।१०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ।।११
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः ।
दोर्भिश्चायतदीप्तैश्च प्रासैःपाशैश्च मूर्च्छनैः ।।१२
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः ।
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीव्यमानैश्च तोमरैः ।।१३

विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ।।१४

ये समस्त परम कृती दानव उस अतीव उद्धत कालनेमि के समीप में पहुँचे थे । ये सभी दैत्यगण बहुत से हथियारों से समन्वित थे जिनमें गदा–भुशुण्डी–चक्र–परश्वध–काल कल्प मुसल–क्षेपणीय–मुद्गर–अद्रि सदृश अश्म (पाषाण)–दारुण भण्ड शैल–पट्टिश–भिन्दि पाल—उत्तमायस परिघ–घातिनी और अत्यन्त गुरु (भारी एव बहुत विशाल) शतघ्नी (तोप)–युग यन्त्र – उग्र ताड़ित निर्युक्त मार्गण (शर)—आयत और दीप्त भुजाएँ—प्रास—मूर्च्छन पाश—भुजङ्गों के तुल्यमुखों वाले लेलिहान (फुस्कारें भरने वाले) और विशेष रूप से सर्पण करने वाले सायक–वज्र–प्रहरणीय–दीप्य मान तोमर–विना कोश (म्यान) वाले खड्ग–शीत निर्मल तोमर आदि अनेक आयुध थे । इन सभी प्रकार के अनेक अस्त्र—शस्त्रों से सुसज्जित होकर सभी दानव संदीप्त मन वाले थे और शरासनों को ग्रहण किए हुए वहाँ पर युद्ध स्थल में समुपस्थित होगये थे ।।९–१४।।

ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे ।
सा दाप्तशस्तप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः ।।१५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे ।
देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता ।।१६
उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः ।
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ।।१७
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।
यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता ।।१८
सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा ।
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ।।१९
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ।

तयोश्चम्वोस्तदानीन्तु बभूव स समागमः।।२०
द्यावापृथिव्योः सयोगो यथा स्याद्युगपर्यये ।
तद्युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम् ।।२१

उस समय में उस महान् रण स्थल में ये सब कालनेमि को अपना पुरोगामी बनाकर उपस्थित हो गये थे और वह दैत्यों की विशाल सेना परम दीप्त–प्रशस्त एवं अतीत श्रेष्ठ होकर दीप्तिमती हो गई थी। ।।१५।। इसी भाँति महेन्द्र के द्वारा सुरक्षित देवों की भी सेना दिवलोक में निमीलित समस्त अङ्गों वाली नीलाम्बुदागम में घनी परम प्रहृष्ट हो रही थी ।।१६।। चन्द्र और सूर्य्य के श्वेत एवं कृष्ण ताराओं से समुपेत वह देवों की सेना थी जो वायु के सदृश वेग से युक्त परम सौम्य और तारागणों की पताकाओं वाली थी ।। १७ ।। तोयदों से आविद्ध वसनों वाली—ग्रहों तथा नक्षत्रों के हास से सयुत थी। वह देवों की विशाल सेना यम—इन्द्र—वरुण और परम धीमान् धनद कुबेर के द्वारा सुरक्षित थी ।। १८ ।। अत्यन्त सम्प्रदीप्त अग्नि के नयनों वाली—नारायण प्रभु में परायण एवं समुद्रों के ओघ के समान वह देवों की अतीव महान् एवं विशाल सेना दिव्य हो रही थी ।। १९ ।। यक्षों और गन्धर्वों की शोभा से सुसम्पन्न—भीम स्वरूप वाली तथा नाना भाँति के अस्त्र–शस्त्रों से युक्त होती हुई दीप्तिमती हो गई थी। उसी समय मे उन दोनों दैत्यों तथा देवों की सेनाओं का वहाँ पर समागम होगया था ।२०। जिस प्रकार से युग के विपर्यय उपस्थित होने पर द्यावा पृथ्वी का संयोग हो जाया करता है उसी भाँति वह देवों और दानवों का परम संकुल घोर युद्ध हो गया था ।।२१।।

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च ।
निश्चक्रमुबलाभ्यान्तु भीमास्तत्र सुरासुराः ।।२२
पूर्वापराभ्यां सरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ।
ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः ।।२३

वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यांयथागजाः ।
समाजघ्नुस्ततोभेरीःशङ्खान्दध्मुरनेकशः ॥२४
स शब्दोद्यां भुवं खञ्च दिशश्च समपूरयत् ।
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ॥२५
दुन्दुभीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम् ।
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तःपरस्परम् ॥२६
बभञ्जु र्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः ।
देवास्तु चाशनिं घोरंपरिघांश्चोत्तमायसान् ॥२७
निस्त्रिंशान् ससृजुःसंख्ये गदागुर्वीश्च दानवाः ।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गाबाणैश्च शकलीकृताः॥२८

वह युद्ध दर्प तथा विनय का क्षमा एवं पराक्रम में परायण था । वहाँ पर उन दोनों ही सेनाओं से अतीव भीम (भयावह) स्वरूपों वाले सुर और असुर निकल पड़े थे अर्थात् युद्ध करने के लिये मैदान में आ गये थे । पूर्व और अपर सागरों से सरब्ध अम्बुदों के समान उन दोनों ही दलों से बाहिर निकल कर देखे गये वे देव तथा दानव वहाँ रणस्थल में विचरण कर रहे थे । २२ । २३ ॥ पुष्पों से समन्वित पर्वतीय वनों से जिस तरह गज निकल आया करते हैं उसी तरह से उन देव-दानवों ने सेनाओं के समुदाय से बाहिर निकल कर अनेक भेरी और शखों की ध्वनि भूमण्डल-दिवलोक और सब दिशाओं में पूरित हो गयी थी । धनुषों की प्रत्यञ्चाओं के घात से समुत्थित निर्घोष-धनुषों के कूजित दुन्दुभियों की ध्वनि यह सब दैत्य ध्वनि मे अन्तर्हित हो गयी थी । वे परस्पर में अस्त्रों का सम्पातन करते हुए एक दूसरों को नीचे गिराने लगे थे । बाहुओं से बाहुओं का भञ्जन करने लगे थे और दूसरे योधा द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा वाले भी थे देवगण परम घोर अशनि और उत्तमायस परिघों को प्रयोग उस युद्ध में कर रहे थे । दानव गण युद्ध में निस्त्रिंशों का तथा अत्यन्त भारी एव विशाल गदाओं को शत्रुओं पर छोड़

रहे थे। गदाओं के प्रहारों से सैनिक भग्न अङ्गों वाले तथा वाणों के द्वारा खण्ड-खण्ड अंगों वाले होगये थे ।। २४-२८ ।।

परिपेतुर्भृशं केचित् पुनः केचित्तु जघ्निरे ।
ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ।।२६
समीयुस्तेसुसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे ।
संवर्तमानाः समरे सन्दष्टौष्टपुटाननाः ।।३०
रथारथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः ।
तेषां रथानान्तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ।। १
नभोनभश्चहि यथानभस्यैर्जलदस्वनैः ।
बभञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पाटितारथैः ।
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथान् ।
अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ।।३३
संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः ।
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हतायुधि ।। ४
क्षरज्जलानां सदृशाःजलदानां समागमे ।
तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् ।।३५

परस्पर में इस तरह से शास्त्रास्त्रों के प्रहारों से कुछ तो नीचे गिर गये थे और कुछ उठकर पुनः हनन किया करते थे। इसके उपरान्त रथों तुरङ्गों और शीघ्रगामी विमानों के द्वारा वे समक्ष में समागत हुए थे ।। २६ ।। उस महायुद्ध में वे रोषावेश में परस्पर में अत्यन्त सरब्ध होकर समागत हुए थे। समराङ्गण में वर्त्तमान होकर अपने मुखों के ओष्ठों को क्रोध से काट रहे थे ।। ३० ।। रथों पर सवार रथ वालों से और पैदल सैनिक वीर पदातियों के साथ युद्ध कर रहे थे। शब्दवाही उनके रथों का शब्द अत्यन्त तुमुल हो रहा था ।। ३१ ।। जिस प्रकार से नभस्य जलदों की ध्वनि होती है वैसे ही नभ नभ से टकरा रहा था। कुछ लोगों ने रथों का भञ्जन किया था और कुछ लोग सम्पाटित रथों

के द्वारा सम्बाध कर रहे थे। अन्य लोग ऐसी सम्बाधा प्राप्त करके रथों के आगे चलाने में भी असमर्थ हो गये थे। दूसरे लोग उस समर में परस्पर में हाथों से ऊपर को क्षिप्त करके दंशित हुए थे ॥३२॥३३॥ वहाँ पर भी चर्म्मधारी गण संह्लादमान आभरण वाले होकर हनन कर रहे थे। अन्य लोग अस्त्रों से निर्मित्त होकर युद्ध में आहत हुए रक्त का वमन करते थे। जलदों के समागम काल में क्षरण करते हुए जलों के सदृश हो गये थे। उन सबके द्वारा वहाँ युद्ध शस्त्रों और अस्त्रों से ग्रथित तथा क्षिप्त एवं उत्क्षिप्त गदाओं से अवलि था ॥३४॥३५॥

देवदानवसंक्षुब्धं संकुल युद्धमाबभौ ।
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ॥३६
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिः स दानवः ॥३७
व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।
तस्य विद्युच्चलापीडैः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ॥३८
गात्रैर्नगगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः ।
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ॥३९
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः ।
तिर्यगूर्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ॥४०
पर्वतादिव निष्क्रान्ताः पञ्चास्या इव पन्नगाः ।
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुभिः परिघैरपि ॥४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ।
सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः ।४२

वह देवों और दानवों से परम संक्षोभ वाला एवं संकुल युद्ध हुआ था। वहाँ युद्ध दानव रूपी महान् मेघों वाला और देवों के अनेक आयुधों से शोभित तथा परस्पर में एक दूसरों पर बाणों की वर्षा से एक दुर्दिन के समान ही शोभा दे होरा था। इसी बीच में परम क्रुद्ध होकर वह

कालिनेमि दानव समुद्रों के ओघों से पूर्य्यमाण एक अम्बुद के तुल्य बढ़ रहा था। विद्युत् के चलायमान आपीड़ों के द्वारा प्रदीप्त अशनि की वर्षा करने उसके अङ्गों से नागगिरि नाम वाले बलाहक निपातित हुए थे। भौंहों के भेद से समुत्पन्न स्वेद की वर्षा करने वाले—क्रोध से उष्ण और लम्बी श्वास लेने वाले उसके मुख से अग्नि के कणों से प्रतत अर्चियाँ निकलने लग गई थीं। गगन में ऊपर और तिरछी उस की बाहुऐं बढ़ गई थीं जो कि पर्वत से मानो निकले हुए पाँचुमुखों वाले पन्नगों के ही समान थीं। वह कालिनेमि दानव अनेक प्रकार के अस्त्रों के जालों से—धनुषों से और परिघों के भी द्वारा उत्पन्न ऊँचे पर्वतों की भांति दिव्य आकाश से बातें कर रहा था। वह संग्राम करने की लालसा वाला जिसके वस्त्र वायु से उद्धूत हो रहे थे वहाँ रणस्थल में स्थित हो गया था। ॥ ३६-–४२ ॥

सन्ध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरु रिवाचलः।
ऊरुवेगप्रमथितैः शैलश्रृङ्गाग्रपादपैः ॥४३
अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन्।
बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः। ४४
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि।
मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित्तु विदलीकृताः ॥४५
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः।
तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ॥४६
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः।
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्पन्दितः शरबन्धनैः ॥४७
ऐरावतगतः संख्ये चयितुं न शशाक ह।
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः ॥४८
निर्व्यापारः कृतस्तेन त्रिपाशो वरुणोमृधे।
रणोवैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा ॥४९

सन्ध्याकालीन आतप से जिसकी शिलाओं को ग्रसित कर लिया है ऐसा साक्षात् मेरु पर्वत के तुल्य वह ऊरुओं के वेग से प्रमथित हुए पर्वत की चोटियों के अग्रभाग में स्थित पादपों से वज्र के द्वारा महान् पर्वतों के ही तुल्य देवगणों का पालन कर रहा था। बहुत से शस्त्र और निस्त्रिशों से छिन्न-भिन्न शिरोरुहों वाले युद्ध में कालनेमि के द्वारा निहत हुए देवगण चलने में भी असमर्थ हो गये थे। कुछ तो मुष्टियों के प्रहारों से निहत किये गये थे और कुछ देवगण विदली कृत कर दिये गये थे। ।। ४३, ४४ ४५ ।। यक्ष और गन्धर्व यतिगण महोरगों के साथ ही नीचे निपातित हो गये थे। उस कालनेमि के द्वारा समर भूमि में समस्त देवगण विशेष रूप से त्रासित कर दिये गये थे ।४६ ।। वे सब देवता ऐसे विगत चेतना वाले हो गये थे कि वे यत्न करते हुए भी अर्थात् यत्न करने की पूर्ण चेष्टा करने पर भी कुछ भी यत्न नही कर सके थे। उसने सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र को भी शरों के बन्धनों से स्पन्दित कर दिया था ।। ४७ ।। वह यद्यपि अपने ऐरावत हाथी पर स्थित था तो भी वहाँ से हिल नहीं सकता था। वह बिना जल वाले अम्भोद (मेघ) के सदृश तथा निर्जन अर्णव के तुल्य प्रभा वाला हो गया था ।। ४८ ।। युद्ध में बिना पाश बदले वरुण को उसने बिना व्यापार वाला बना दिया था। काम रूपी उसने परिघों के द्वारा वैश्रवण को भी विरत कर दिया था ।। ४६ ।।

वित्तदोऽपि कृतः सख्ये निर्जितः कालनेमिना ।
यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे ।५०
याम्यामवस्थां सन्त्यज्य भीतः स्वान्दिशमाविशत् ।
स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषाञ्च कर्म तत् ।।५१
दिक्षु सर्वासु देहं स्व चतुर्धा विदधे तदा ।
स नक्षत्रपथङ्गत्वा दिव्य स्वभानुदर्शनम् ।।५२
जहार लक्ष्मीं सामस्य तं चास्य विषयं महत् ।

चालयामास दीप्तांशं स्वर्गद्वारात् स भास्करम् ॥५३
सायनञ्चास्य विषयं जहार दिनकर्म्मं च ।
सोऽग्नि देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ॥५४
वायुञ्च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।
स समुद्रान् समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ॥५५
चकारात्ममुखे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धवः ।
अपः स्ववशगाःकृत्वादिविजा याश्च भूमिजाः ॥५६

उस महा दानव कालनेमि ने युद्ध में वित्तद (कुवेर) को भी निर्जित कर दिया था । मृत्यु के प्रहरणों वाले उस रण में उसने सर्वदा यम को भी विजित कर दिया था और अपनी याम्य अवस्था का परित्याग करके वह भयभीत होकर अपनी दिशा में प्रवेश कर गया था । उसने सब लोकपालों को हटाकर और उनका जो कर्म था उसे स्वयं ही करने लगा था । उस समय में सब दिशाओं में अपने ही देह को उसने चार रूपों में बनाकर स्थित कर दिया था । नक्षत्रों के मार्ग में पहुँच कर वह दिव्य स्वर्भानु का दर्शन करता था ।। ५०, ५१, ५२ ।। उसने सोम की लक्ष्मी और इसके महान् विषय का हरण कर लिया था । उसने दीप्त अंशु वाले भास्कर को स्वर्ग के द्वार से चालित कर दिया था । इसके सायन विषय को तथा दिन के कर्म्म को भी समाहृत कर दिया था । उस कालनेमि ने देवमुख अग्नि को देखकर उसे अपने मुख के आश्रय वाला बना लिया था ।। ५३, ५४ ॥ उसने वायुदेव को भी बड़े वेग से जीतकर अपने वश में रहने वाला अनुग बना लिया था । उस कालनेमि दानव ने बलपूर्वक समस्त समुद्रों और सरिताओं को भी लाकर अपने ही मुख में कर लिया था । उसके वीर्य से सब सिन्धु उसके देहभूत बन गये थे । जो जल दिवलोक में समुत्पन्न थे और जो भूमिज थे । उन सबको अपने ही वेश में रहने वाले कर लिया था था ।। ५५, ५६ ।।

स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतिर्यथा ।
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः ।।५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान् ।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ।।५८
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः ।
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थानेलोकानां प्रभवोपमे ।।
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ।।५९।।

वह स्वयं ही भूमण्डल में भूतों के पति के समान शोभित हो रहा था । वह दैत्य सब लोकों से परिपूर्ण और समस्त प्राणियो को भय देने वाला था । वह लोकपालों के एक ही वपु वाला स्वयं था और चन्द्र तथा आदित्य ग्रहों के भी स्वरूप वाला था । उसने धरणो धरों के द्वारा सम्पूर्ण जगती को सुगुप्त करके स्थापित किया था । युद्ध में वह दानव पावक और अनिल के सम्पात वाला दीप्तिमान् हो रहा था । वह लोकों के प्रभवोपम स्थान पारमेष्ठ्य में स्वयं ही स्थित हो गया था । पितामह को देवों की भाँति ही सब दैत्यगण उसका संस्तवन किया करते थे ।। ५७ । ५८ । ५९ ।।

७१ --कालनेमि और विष्णु का युद्ध

पञ्च तत्राभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्म्मणा ।
वेदो धर्म्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ।।१
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधोदानवेश्वरः ।
वैष्णवंपदमन्विच्छन्ययौनारायणान्तिकम् ।।२
स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ।।३
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ।

स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनंकाश्यपं खगम् ।।४
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थिम् ।
दानवो विष्णमक्षोभ्यं बभाषे लुब्धमानसः ॥५
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः ।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ।।६
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते ।
अनेन संयुगेष्वद्य दानवाबहवो हताः ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—उस समय में विपरीत कर्म्मों के होने के कारण से वेद–धर्म्म–क्षमा–सत्य और नारायण प्रभु के समाश्रय करने वाली श्री—ये पाँच नहीं रहे थे। इन पाँचों के उपस्थित न रहने से वह दानवेश्वर बड़े क्रोध से युक्त हो गया था और फिर भगवान् विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा करता नारायण प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था। उसने वहाँ पर सुपर्ण पर समवस्थित—दानवों के विनाश करने के लिये अपनी परम शुभ गदा को घुमाते हुए शख–चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु को देखा था।।१, २, ३।। वहाँ पर नारायण का स्वरूप जल सहित मेघ के समान था—विद्युत् तुल्य वसन धारण करने वाला उनका रूप था तथा वे कश्यप के पुत्र–स्वर्ण पक्षों से समन्वित शिखी खग पर समारूढ़ थे।। ४।। इस तरह के स्वरूप की शोभा से समवस्थित एवं परम स्वरूप और रण में दैत्यों के विनाश करने के लिए उद्यत विष्णु भगवान् को देखकर लुब्ध मन वाला वह दानव क्षोभ न करने के योग्य विष्णु भगवान् से बोला।। ५।। यह ही हम लोगों का सच्चा शत्रु है जो हमारे पूर्वजों के प्राणों का नाश करने वाला है तथा अर्णव में आवास करने वाले मधु तथा कैटभ का प्राण लेने वाला है। यही हमारा वह विग्रह है जो शमन न करने के योग्य कहा जाया करता है। आज इसने ही रणक्षेत्र में बहुत-से दानवों का हनन किया है। ।। ६, ७ ।।

110/1
21-10-73

अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालनिरपत्रपः ।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरण कृतम् ।।८
अयं सविष्णुर्देवानांवैकुण्ठश्चदिवौकसाम् ।
अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः ।।९
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम् ।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः ।।१०
अस्य च्छायापाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिताः ।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ।।११
अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम् ।
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ।।१२
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः ।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपतिशत्रुषु ।।१३
अय सकालोदैत्यानांकालभूतःसमास्थितः ।
अतिक्रान्तस्यकालस्यफलंप्राप्स्यति केशवः ।।१४

यह वह है जो अत्यन्त ही निर्घृण और स्त्री तथा बालकों में भी निर्लज्ज है जिसने दानवों की नारियों का श्रीमन्तों का उद्धरण किया था ।। ८ ।। यह ही वह विष्णु है जो दिवलोक में रहने वाले देवों का वैकुण्ठ है—योगियों का अनन्त और जल में शयन करने वाला आद्य स्वयम्भुव है । यह ही व्यथित आत्मा वाले हमारे देवों का नाथ है । इसी के क्रोध की प्राप्ति कर हिरण्य कशिपु मारा गया था ।। ९, १० ।। इसी की छत्र छाया का उपाश्रय प्राप्त करके देवगण मखों के मुख में श्रित हुआ करते हैं—और तीन प्रकार से हुत महर्षियों के द्वारा समर्पित आज्य का अशन किया करते हैं ।। ११ ।। समस्त देवों के दुश्मनों के निधन होने में यह ही एक हेतु है । जिसके चक्र में युद्ध क्षेत्र में हमारे कुल सब प्रविष्ट हो गये हैं अर्थात् सुदर्शन चक्र के द्वारा कुलों के कुल मारे गये होकर समूल नष्ट हो गये हैं । यही वह है जो सुरों के लिये

युद्धों में अपना जीवित भी त्याग देने वाला हो जाया करता है और जो सूर्य्य के तेज के तुल्य अपने सुदर्शन चक्र को शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया करता है। यह दैत्यों का वह साक्षात् काल है जो कि कालभूत होकर समास्थित रहा करता है। यह केशव अतिक्रान्त काल का फल प्राप्त करेगा ।।१३–१४॥

दिष्टचेदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः ।
अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ।।१५
यास्याम्यपचितिं दिष्टचा पूर्वेषामद्य संयुगे ।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ।।१६
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः ।
जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ।।१७
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः ।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ।।१८
द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च ।
पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा ॥१९
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः ।
त्रीन् लोकानुज्जहारैको क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ।।२०
भूयस्त्विदानीं संग्रामे संप्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ।।२१

बड़े ही हर्ष की बात है कि इस समय में यह विष्णु मेरे समक्ष में समागत हो गया है। आज यह मेरी बाहुओं से निष्पिष्ट होकर मुझको प्रणाम करेगा। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि आज युद्ध क्षेत्र में मैं अपने पूर्व पुरुषों की अपचिति को प्राप्त करूँगा अर्थात् उनके साथ किये व्यवहार का बदला ले लूँगा। आज दानवों को भय देने वाले नारायण का मैं हनन करके ही बदला ले लूँगा ।। १५ । १६ ।। यह जाति में अन्तर्गत अर्थात् अन्य जाति वाला विष्णु युद्ध में दानवों को

बाधाऐं दिया करता है। आज मैं बहुत ही शीघ्र रण में इसके पश्चात् सब देवगणों का भी वध कर डालूँगा। यह पहिले अनन्त होकर पद्मनाभ—इस नाम से सुना गया है। इसने ही परम घोर एकार्णव में उन दोनों मधु कैटभ का हनन किया था। पहिले इसने दो प्रकार का शरीर धारण किया था जो आधा तो सिंह का था और आधा नर का था। इसी एक ने मेरे पिता हिरण्य कशिपु का हनन किया था ॥ १७। १८। १९ ॥ अदिति ने परम शुभ गर्भ धारण किया था और देवतारणि इसी एक ने तीन पैंड़ों के क्रम से क्रममाण होते हुए तीनों लोकों का उद्धरण कर डाला था। पुनः इस समय में इस तारकामय संग्राम के सम्प्राप्त होने पर मेरे साथ समागम करके वह देव विनष्ट हो जायगा ॥ २० । २१ ॥

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे ।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ॥२२
क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः ।
क्षमाबलेन महता सस्मित चेदमब्रवीत् ॥२३
अल्पं दपबलं दैत्य ! स्थिरमक्रोधजं बलम् ।
हतस्त्वं दपजैर्दोर्विहित्वा गद्धापसे त्तमम् ॥२४
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तत्र वाग्बलम् ।
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ॥२५
अहं त्वां दैत्य ! पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम् ।
प्रजापतिकृत सेतुं भित्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥२६
अद्य त्वांनाशयिष्यामिदेवव्यापारघातकम् ।
स्वेषुस्वेषुचस्थानेषुस्थापयिष्यामि देवताः ॥२७
एवं ब्रुवति वाक्य तु मृधे श्रीवत्सधारिणि ।
जहासदानवःक्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान् ॥२८

इस प्रकार से अनेक रीतियों से कहकर तथा नारायण पर रण

में आक्षेपों की बौछार करके अप्रतिरूप वाणियों के द्वारा उसने युद्ध करने को ही पसन्द किया था ।। २२ ।। इस तरह उस असुरेन्द्र के द्वारा आक्षिप्त होते हुए भी गदाधारी प्रभु ने कोई क्रोध नहीं किया था और महान् क्षमा के बल का सहारा लेते हुए मुस्करा कर यह वचन कहा था ।। २३ ।। दर्प का बल अल्प होता है, हे दैत्य ! जो बिना किसी क्रोध से उत्पन्न होने वाला बल होता है वह स्थिर बल हुआ करता है। तू क्षमा का त्याग करके जो कुछ भी इस समय में बोल रहा है इन दर्प (घमण्ड) से उत्पन्न हुए दोषों से ही हृत हो गया है ।। २४ ।। मेरी मति में तो तू बहुत ही अधीर है। तेरे इस वचनों के बल को धिक्कार है जहाँ पर कोई बलशाली पुरुष नहीं रहा करते हैं वहाँ पर स्त्रियाँ भी इसी प्रकार से गर्जन किया करती हैं ।। २५ ।। हे दैत्यराज ! में तो तुझको अपने पूर्वज पुरखाओं के ही मार्ग का अनुगमन करने वाला देख रहा हूँ। प्रजापति के द्वारा किये हुए सेतु का भेदन करके कौन पुरुष कल्याण वाला हो सकता है ? अर्थात् वह कभी भी कल्याणकारी हो ही नहीं सकता है । २६ । मैं आज ही देवों के व्यापारों के घात करने वाले तुझको नष्ट कर डालूँगा और उन देवताओं को उनके अपने अपने स्थानों पर स्थापित कर दूँगा ।। २७ ।। उस महान् युद्ध क्षेत्र मे श्रीवत्स के चिह्न को धारण करने वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से बोलने पर वह दानव कालनेमि बहुत हँसा था और उसने बहुत ही क्रोध से अपने हाथों को आयुधों से युक्त कर लिया था ।।२८।।

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुवक्षस्यताडयत् ।।२९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ।।३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः ।
न चचाल ततो युद्धे कम्पमान इवाचलः ।।३१

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः ।
सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः ॥३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि ।
कर्म्मणातेनदैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत् ॥३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्ध्नि सा गदा ।
सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा कृतञ्च वपुरात्मनः । ३४
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ।
व्यवर्द्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ॥३५

उस दानव ने उस रण स्थल में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण करने वाले सैकड़ों बाहुओं को उठाकर क्रोध से द्विगुणित लाल नेत्रों वाले ने भगवान् विष्णु पर उनके वक्षःस्थल पर प्रताड़ित किया था ।२९। अन्य दानव भी जिनमें मय और तार पुरोगामी थे सबने निस्त्रिंश और अन्य आयुधों को समुद्यत करके भगवान् विष्णु पर रण में आक्रमण कर दिया था ।। ३० ।। सब प्रकार के समुद्यत आयुधों वाले—अत्यन्त बलशाली दैत्यों के द्वारा इस भाँति ताड्यमान होते हुए भी भगवान् विष्णु उस युद्ध में बिना कम्प वाले एक पर्वत की तरह स्थित रहते हुए वहाँ पर विल्कुल भी चलित नहीं हुए थे ।। ३१ ।। विष्णु प्रभु सुपर्ण पर ही संसक्त थे कि महासुर उस कालनेमि ने अपना पूर्ण जोर लगाकर प्राण-पण से महान् विशाल गदा को बाहुओं से उठाकर जो कि अत्यन्त घोर और जाज्वल्यमान थी बहुत ही संरब्ध होते हुए गरुड़ के ऊपर उसे छोड़ दिया था । दैत्य के उस कर्म्म से भगवान् विष्णु को भी बड़ा विस्मय हो गया था ।। ३२, ३३ ।। जिस समय में उस दानव ने सुपर्ण के मस्तक पर उस महती गदा को पातित किया था सुपर्ण को देखकर उन्होंने अपना वपु व्यथित कर दिया था फिर महान् क्रोध से संरक्त नयनों वाला होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ ने अपना चक्र ग्रहण किया था और सुपर्ण के साथ ही वह विभु आगे को बढ़ गये थे ।।३४, ३५।।

भुजाश्चास्य व्यवर्द्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ।
प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः ।।३६
ववृधे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ।
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ।।३७
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ।
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ।।३८
पद्भ्याक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ।।३६
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् ।
सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयापहम ।।४०
मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तन्दानवसम्भवैः ।
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ।।४१
स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् ।
स्वयंस्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ।।४२

इनकी भुजाऐं दशों दिशाओं में व्यापक होती हुई बढ़ गयीं थीं और भगवान् केशव ने उनको सब प्रदिशाओं में—भूमि तथा आकाश मे पूरित कर दिया था ।। ३६ ।। फिर महान् ओज से समस्त लोकों का क्रमण करने की इच्छा वाले प्रभु और भी वर्धित हो गये थे तथा नभस्तल में भी उन असुरेन्द्रों के तर्जन के लिये वे बद्धमान हो गये थे । अम्बरों के द्वारा अभ्र सहित अम्बर की भाँति किरीट के द्वारा सबका स्पर्श करते हुए वे उस समय में हो गये थे तथा वहाँ पर मधुसूदन प्रभु का संस्तवन ऋषिगण और गन्धर्व लोग करने लगे थे ।। ३७, ३८ ।। प्रभु ने अपने चरणों से सम्पूर्ण वसुधा को समाक्रान्त करके बाहुओं से सभी दिशाओं को प्रच्छादित कर दिया था तथा उनने फिर सूर्य्य की किरणों के तुल्य आभा वाले—सहस्र अरों से समन्वित और अरियों के क्षय को करने वाले उस चक्र को प्रयुक्त किया था ।। ३६ ।। वह चक्र दीप्त अग्नि के

समान महान् घोर था तथा देखने से वह सुन्दर दर्शन वाला अर्थात् सुदर्शन नामधारी था। सुवर्ण रेणुपर्यन्त—वज्रनाभ—भयों का अपहरण करने वाला—दानवों के शरीरों से समुत्पन्न मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रुधिर से सिक्त—क्षुर पर्यन्त मण्डल वाला—एक परम अद्वितीय प्रहरण (अस्त्र)—स्रगदाम (मालाऐं) से विनत—स्वेच्छया गमन करने वाला—कामरूपी—समस्त शत्रुओं को भय देने वाला और स्वयं ही स्वयम्भू प्रभु के द्वारा वह सृजित किये जाने वाला था ॥४०-४२॥

महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम् ।
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥४३
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्ति यान्ति महामृधे ।
तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा ॥४४
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ।
समुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा ॥४५
चिच्छेद वाहूश्चक्रेण श्रीधरः कालनेभिनः ।
तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै ॥४६
तस्य दत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः ।
स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पतदानवः ॥४७
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाखइव पादपः ।
सम्वितत्यमहापक्षौवायोःकृत्वासमञ्जवम् ॥४८
उरसा पातयामास गरुडःकालनेमिनम् ।
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन् ॥४९

वह ऊपर में बतलाये गुणगणों वाला सुदर्शन चक्र महर्षियों के रोषों से समाविष्ट था और नित्य ही युद्ध में दर्प से समायुक्त रहने वाला था। जिसके क्षेपण करने से सभी स्थावर एवं जङ्गम लोक मूर्च्छित हो जाया करते हैं। महान् युद्ध में क्रव्याद आदि जो भूत हैं वे उस चक्र के द्वारा प्रवाहित हुए शत्रुओं के रक्त के पान से परम तृप्ति को प्राप्त

हुआ करते हैं ऐसे उस अनुपम कर्म के करने से उग्र और सूर्य के वर्चस के तुल्य उस अपने सुदर्शन चक्र को उठाकर समर में क्रोध से दीप्त गदाधर ने छोड़कर अपने तेज के द्वारा युद्धस्थल में दानवों के तेज का छेदन कर दिया था और श्रीधर प्रभु ने उस अपने चक्र से कालनेमि की बाहुओं को भी काट डाला था। उस दानव के अग्नि से परिपूर्ण अट्टहास वाले सौ परम घोर मुखों का श्री हरि ने उसी चक्र के द्वारा बलपूर्वक प्रमथन कर दिया था। किन्तु वह दानव बाहुओं शिर के कट जाने पर भी वहाँ पर प्रकम्पित नहीं हुआ था। उसका वह कबन्ध (धड़) युद्ध स्थल में बिना शाखा वाले पादप के समान अवस्थित था। गरुड़ ने अपने पंखों को फैलाकर तथा वायु के समान वेग को करके अपने उरस्थल के द्वारा उस कालनेमि के धड़ को नीचे गिरा दिया था और उसका वह बिना मुख तथा बाहुओं वाला देह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था ।। ४३–४९।

निपपात दिवन्त्यक्तवा क्षोभयन् धरणीतलम् ।
तस्मिन्निपतितेदैत्येदेवाः सर्षिगणास्तदा ।।५०
साधु साध्विति वैकुण्ठ समेताः प्रत्यपूजयन् ।
अपसर्पन्तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः ।।५१
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे ।
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेष्ववपीडयन् ।।५२
चकर्ष कस्यचिद्वक्त्रं मध्येगृह्णादथापरम् ।
ते गदाचक्रनिदग्धा गतसत्वा गतासवः ।।५३
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले ।
तेषु दत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः ।।५४
तस्थौशकप्रिय कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः ।
तस्मिन् विमर्दे निवृत्ते संग्रामे तारकामये ।।५५
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ।।५६

वह धरणी तल को क्षोभित करता हुआ दिवलोक को त्याग कर के भूमि पर गिर गया था। उस समय में उस महा दानवेश्वर के निपतित हो जाने पर समस्त देवगण और ऋषि वृन्द "साधु–साधु" अर्थात् वहुत ही अच्छा हुआ यह कहते हुए सब एकत्रित होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ की पूजा करने लने थे। युद्ध में दैत्यगण पराक्रम देख लेने वाले अपसर्पण कर जावें। किन्तु बाहुओं से व्याप्त वे सब रणस्थल में चल नहीं सकते थे। उनमें से कुछ को तो केश पकड़ कर ग्रहण किया था और कुछ को कण्डों में ताड़ित किया था ।। ५०, ५१, ५२ ।। किसी के मुख को पकड़ कर कर्षित किया था और दूसरे को मध्य भाग में ग्रहण किया था। वे सब गदा और चक्र के प्रहारों से निर्दग्ध—गत प्राण और हीन तत्वों वाले हो गये थे ।। ५३ ।। गगन से उद्भ्रष्ट समस्त अङ्गों वाले धरणी तल में सब निपतित हो गये थे। उन सब दैत्यों के निहत हों जाने पर पुरुषोत्तम प्रभ गदाधारी महेन्द्र का कर्म्म सम्पादन करके तथा इन्द्र का प्रियकर्म करके उस बिमर्द तारकामय सग्राम के निर्वृत होने पर वहाँ पर हीं समवस्थित हो गये थे। उसी स्थल पर लोकों के पिता यह ब्रह्मा जी समस्त ब्रह्मर्षिगण और गन्धर्व एवं अप्सरागणों के साथ शीघ्र ही आकर उपस्थित होगये थे ।५४–५६।।

देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत् ।
कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम् । ५७
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः ।
योऽयं त्वया हतो विष्णो ! कालनेमी महासुरः ।।५८
त्वमेकोऽस्य मृधेहन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ।
एषदेवान्परिभवन्लोकांश्चससुरासुरान् ।।५९
ऋषीणां कदन कृत्वा मामपि प्रतिगजति ।
तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ।।६०

यदयं कालकल्पस्तु कालनेमी निपातितः ।
तद्रा गच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ॥६१
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ।
कञ्चाहं तव दास्यामि वर वरवताम्बर ! ॥६२
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् ।
निर्यातयैतत्त्रैलोक्यं स्फीत निहतकण्टकम् ॥६३

देवों के देव ने श्री हरिदेव का अभ्यर्चन करते हुए यह वाक्य कहा था कि हे देव ! आपने बहुत बड़ा कर्म सम्पादित किया है और सुरगणों के शल्य को आपने उद्धृत कर डाला है। दैत्यों के इस बध से आपने हम सबको परितोषित कर दिया है जो कि हे विष्णो ! आपने इस महासुर कालनेमि को निहत कर डाला है ॥ ५७, ५८ ॥ इस युद्ध में आप ही एक इसके हनन करने वाले थे अन्य कोई भी आपके अतिरिक्त नहीं है। इससे सब देवों को परिभूत कर दिया है और सुरों एवं असुरों के सहित लोकों का भी परिभव किया है। यह ऐसा दुष्ट था कि यह ऋषियों का कदन करके मुझको भी अपनी गर्जना दिखाता था। आपके अत्युत्तम इस कर्म्म से मैं बहुत ही परितुष्ट हुआ हूं ॥ ५९, ६० ॥ जो यह काल के सदृश कालनेमि आपके द्वारा निपतित हुआ है यह बहुत ही अच्छा हो गया। अब आप पधारिये आप का परम मङ्गल होवे—अब हम भी उत्तम दिवलोक को चलते हैं। वहाँ पर सदोगत समुपस्थित ब्रह्मर्षि गण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे वरदान देने वालों में परमश्रेष्ठ ! मैं आपको कौन–सा वरदान दूँगा। आप सुरों में और दैत्यों में वरदानों को प्रदान करने वाले वरद हैं। इस परम विस्तृत त्रैलोक्य को निहत कण्टक वाला निर्यात कर डालिये ॥ ६१ । ६२ । ६३ ॥

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शक्राय सुमहात्मने ।
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ॥६४

देवांश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।
शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥६५
श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ।
अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ॥६६

दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ।
अस्मिन्महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ ॥६७

विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ।
स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ॥६८

याम्यांयमः पालयितामुराञ्च धनधिपः ।
ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैवचन्द्रमाः ॥६९

अब्दं ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह ।
आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ॥७०

हे विष्णो ! इसी युद्ध में आपने महान् आत्मा वाले इन्द्र के लिये यह सब कर दिया है । इस प्रकार से भगवान् ब्रह्माजी के द्वारा अविनाशी श्री हरि से कहा गया था । तब श्री हरि नें इन्द्र जिनमें प्रधान थे उन समस्त देवा से परम शुभ वाणी से कहा था—विष्णु भगवान् ने कहा था—अब सब देवगण श्रवण करलो जितने यहाँ पर इस समय में समागत हुए हैं ॥ ६४, ६५ ॥ श्रवण मे परम समाहित श्रोत्रों से पुरन्दर आगे को करके हमने समर में कालनेमि प्रमुख सब दानव निहत कर दिये थे । ये समस्त दानव विक्रम से उपेत थे तथा इन्द्र से भी महत्तर थे । इस महान् संग्राम में दो दैतेय विनिःसृत हुए थे ॥ ६६, ६७॥ एक तो दैत्येन्द्र विरोचन था दूसरा महान् ग्रह स्वर्भानु था । अब इन्द्र अपनी दिशा का सेवन करें और वरुण अपनी दिशा में चले जावें ॥ ६८ । ६९ ॥ याम्य दिश में यम चले जावें । धनाधिप उत्तर दिशा में पहुँच जावें । ऋक्षों के सहित यथा योग चन्द्रमा भी चले जावें । ऋतुमुख में अयनों के सहित

सूर्य्य अब्द का सेवन करे। सदस्यों के द्वारा अभिभूजित आज्यभाग प्रवृत्त हो जावें ॥ ६९, ७० ॥

हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा।
देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः ॥७१
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्।
वायुश्चरतु मार्गस्थ स्त्रिधा दीप्यतु पावकः ॥७२
त्रींस्तु वर्णांश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चात्मजैर्गुणैः।
क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक।
गान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु ॥७४
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्वएव स्वकर्मभिः।
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः ॥७५
त्रैलोक्यमातर:सर्वा: समुद्रयान्तु सिन्धवः।
दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिव्रजतदेषताः ॥७६
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।
स्वगृहे स्वर्गलौके वा संग्रामे वा विशेषतः ॥७७

वेदों के द्वारा दृष्ट कर्म्म से विप्रों के द्वारा अग्नियों में हवन किया जावे। अग्नि के होम से देवगण—स्वाध्याय से महर्षि गण और श्राद्ध से पितृगण सुखपूर्वक तृप्ति को प्राप्त करें। वायु अपने मार्ग में स्थित होकर सञ्चरण करें और पावक तीन प्रकार दीप्त होवे। दीक्षणीय द्विजातियों के द्वारा क्रतुगण तीन वर्णों को और तीन लोकों को अपने गुणों से तृप्ति करते हुए सम्प्रवृत्त होवें ॥ ७१, ७२, ७३ ॥ याज्ञिकों के लिये पृथक २ दक्षिणाऐं उपफल होवें। सूर्य गौ को—सोम रसों को और वायु प्राणियों में प्राणों को प्रदान करें। सभी अपने २ कर्म्मों के द्वारा तृप्त करते हुए प्रवत्त होवें। यथावत् आनुपूर्वी से महेन्द्र और मलय में उद्भव पाने वाले स्वकर्मों से तृप्ति देते हुए प्रवर्त्तित हो जावें। त्रैलोक्य

की माताऐं समस्त सिन्धु समुद्र में गमन करें। सब देवता लोग अब दैत्यों के द्वारा होने वाले भय का त्याग कर देवें। और सबका कल्याण होवे। अब मैं सनातन ब्रह्मलोक को गमन करूँगा। अथवा घर में—स्वर्ग लोक में तथा विशेष रूप से संग्राम में गमन करूँगा ॥ ७४। ७५ ७६। ७७ ॥

विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः।
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थिति ध्रुवा ॥७८
सौम्यानामृजुभानां भवतामार्जवन्धनम्।
एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुःसत्यपराक्रम ॥७६
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं स्वलोकन्तु महायशाः।
एतदाश्चर्यमभवत् संग्रामे तारकामये ॥
दानवानाञ्च विष्णोश्च यन्मान्त्व परिपृष्टवान् ॥८०

आपको विश्रम्भ नहीं मानना चाहिए। ये दानव नित्य ही क्षुद्र हैं। छिद्रों में ही प्रहार किया करते हैं और उनकी संस्थिति निश्चित नहीं है ॥ ७८ ॥ आप लोग परम सौम्य तथा सरल भावों वाले हैं। आपका आर्जन (सरलता) ही धन है। इस प्रकार से सत्य पराक्रम वाले भगवान विष्णु ने सुरगणों से कह कर फिर महान् यश वाले वे ब्रह्मा जी के साथ ही स्वर्गलोक को चले गये थे। उस तारकामय संग्राम में यह एक आश्चर्य हो गया था जिसको दानवों का और भगवान् विष्णु का ही कहना चाहिए और यही आपने मुझसे पूछा था ॥७६। ८० ॥

७२—भव माहात्म्य वर्णन

अतः पद्मोद्भवस्तात विस्तेण त्वयेरितः ।
समासाद्भवमाहात्म्यं भैरवस्य विधीयताम् ।।१
तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम् ।
आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ।।२
तपसा महतायुक्तोह्यबध्य स्त्रिदिवौकसाम् ।
स कदाचिन् महादेवंपार्वत्या सहितंप्रभुम् ।।३
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे ।
तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना । ४
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति ।
तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ।।५
सुषुवे वाणमत्युग्रनाम्ना पाशुपतं हि तत् ।
रुद्राबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धकस्य तु ।।६
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तेषां विदार्यभाणानां रुधिरादपरे पुनः ।।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा वर्णित विस्तारपूर्वक पद्मोद्भव का श्रवण कर लिया है । अब आप संक्षेप से भैरव का भव माहात्म्य वर्णित कीजिए ।। १ ।। महा महर्षि सूतजी ने कहा—देवों के देव उसका भी उत्तम कर्म का आप श्रवण करो । एक अन्धक नाम वाला भिन्नाञ्जन चय वाला दैत्य था ।। २ ।। वह दैत्येन्द्र महान् तप से युक्त था और देवों का बध न करने के योग्य था । उसने किसी समय में पार्वती के सहित प्रभु महादेव को क्रीड़ा करते हुए देख लिया था और उसी समय में उस दैत्य ने देवी पार्वती के हरण करने का उपक्रम किया था । उसी समय में उस दैत्य का शम्भु के साथ परम घोर युद्ध हुआ था ।। ३, ४ ।। आनन्त्य घोर विषय में महाकाल बन के प्रति

उस समय में उस महायुद्ध में अन्धक के द्वारा रुद्रदेव को अत्यन्त उत्पीड़ित किया था ।५।। पाशुपत नाम वाले अत्यन्त उग्र वाण को प्रसूत किया था । रुद्रदेव के बाण के द्वारा विशेष निर्भेद को प्राप्त होने वाले अन्धक के रुधिर से सैकड़ों और सहस्रों अन्धक समुत्पन्न हो गये थे। जब उनका विदारण किया गया तो फिर विदीर्यमाण उनके रुधिर से दूसरे और फिर अन्धक पैदा होगये थे ।। ६, ७ ॥

वभूवुरन्धका घोरा र्येव्याप्तमखिलं जगत् ।
एव मायाविनं दृष्ट्वा तञ्च देवस्तदान्धकम् ।।८
पानार्थमन्धकास्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा ।
माहेश्वरी तथाब्राह्मी कौमारी म।लिनीतथा ।।६
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै नऋती तथा ।
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ।।१०
वाराहीनारसिंहीच वैष्णवीच चलच्छिखा ।
शतानन्दाभगानन्दा पिच्छिलाभगमालिनी ।।११
बला च।तिबला रक्ता सुरभीमुखमण्डिका ।
मातृनन्दा सुनन्दाच विडाली शकुनी तथा ।।१२
रेवतोच महारक्ता तथैग पिलपिच्छिका ।
जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ।।१३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।
सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ।।१४

उस समय में परम घोर अन्धक उत्पन्न हो गये थे जिनसे यह समस्त जगत् एकदम व्याप्त हो गया था । उस समय में इस प्रकार से मायावी उस अन्धक को देव ने देखकर उस अन्धकासत्र के पान के लिए उस समय में उन्होंने माताओं का सृजन किया था । अब उन माताओं के नाम बतलाये जाते हैं—माहेश्वरी—ब्राह्मी—कौमारी—मालिनी—सौपर्णि —वायव्या—शाक्री—नैऋती—सौरी—सौम्या—शिवा—दूती—

चामुण्डा—वारुणी ॥ ८ । ९ । १० ॥ वाराही—नारसिंही—वैष्णवी—चलच्छिखा—शतानन्दा—भगानन्दा—पिच्छला—भगमालिनी—बला—अतिबला—रक्ता—सुरभी—मुखमण्डिका—मातृनन्दा—सुनन्दा—बिडाली—शकुनी—रेवती—महारक्ता—पिलपिच्छिका—जया—विजया—जयन्ती—अपराजिता—काली—महाकाली दूती—सुभगा—दुर्भगा—कराली—नन्दिनी ॥११-१४॥

अदितिश्च दितिश्चैव मारीर्वं मृत्युरेव च ।
कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी ॥१५
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ॥१६
खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी ।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा ॥१७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्वरी तथा ।
सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा ॥१८
भ्रुकुटी बहुपुत्रीच प्रेतयाना विडम्विनी ।
क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनुः ॥१९
उषा रम्भा मेनकाच सलिलाचित्ररूपिणी ।
स्वाहास्वधा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठाकपर्दिनी ॥२०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।
मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी ॥२१

अदिति—दिति—मारी—मृत्यु—कर्णमोटी—ग्राम्या—उलूकी—घटोदरी—कपाली—वज्रहस्ता—पिशाची—राक्षसी—भुशुण्डी—शाङ्करी—चण्डा—लाङ्गली—कुटभी—खेरा—सुलोचना—धूम्रा—एक वीरा—करालिनी—विशाली दंष्ट्रिणी—श्यामा—त्रिजटी—कुक्कुटी—वैनायकी—वैताली—उन्मत्ता—उदुम्बरी—सिद्धि—लेलिहाना—केकरी—गर्दभी—भृकुटी—बहुपुत्री—प्रेतयाना—बिडम्बिनी—क्रौञ्चा—शैलमुखी—विनता—सुरमा—दनु—उषा—रम्भा—

मेनका-पलिला-चित्ररूपिणी-स्वाहा—स्वधा-वषट्कारा-धृति--ज्येष्ठा-कमर्दिनी-माया--विचित्र रूपा-कामरूपा--सङ्गना--मुखेविला--मङ्गला-महानाशा-महामुखी ॥१५-२१॥

कुमारी रोचनाभीमा सदाहा सा मदोद्धता ।
अलम्वाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णीमहासुरी ॥२२
केशिनी शङ्खिनीलम्बा पिङ्गलालोहितामुखी ।
घण्टारवाथदष्ट्राला रोचना काकजङ्घिका ॥२३

गोकर्णिकाच मुखिकामहाग्रीवा महामुखी ।
उल्कामुखीधूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ॥२४
मोहना कम्पनाक्ष्वेला निर्भया बाहुशाहिनी ।
सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोकानन्दिनीतथा ॥२५

जोत्स्नामुखीच रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ॥२६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला ।
अवाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ॥२७
चिता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी ।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी ॥२८

कुमारी—रोचना—भीमा—सदाहा--मदोद्धता – अलम्बाक्षी—कालपर्णी—कुम्भपर्णी--महासुरी—केशिनी-शखिनी—लम्बा--पिङ्गला-लोहितामुखी—घन्टारवा – दष्ट्राला-रोचना-काक जङ्घिका-गोकर्णिका-मुखिका—महाग्रीवा – महामुखी-उल्कामुखी-धूमशिखा--कम्पिनी-परिकम्पिनी—मोहना---कम्पना क्ष्वेला—निर्भया—बाहुशाहिनी—सर्पकर्णी—एकाक्षी—विशोका—ज्योत्स्नामुखी—रभसा-निकुम्भा---रक्त कम्पना--अविकारा-महाचित्रा-चन्द्रसेना —मनोरमा-अदर्शना-हरत्पापा-मातङ्गी-लम्ब मेखला-अवाला--बञ्चना-काली-प्रमोदा—लाङ्गलावती--चिन्ता-

चित्त–जला – कोणा–शान्तिका– अघ विनाशनी – लम्बस्तनी—-लम्बसटा–बिसटा–वास चूर्णिनी ।।२२–२७।

स्खलन्ती दीर्घकेशीच सुचिरा सुन्दरी शुभा ।
अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनीच तथाशनी ।।२९
कुटुम्त्रिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ॥३०
कंकुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी ।
हुङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ।।३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा ।
एताश्चान्याश्च देवेशः सोऽसृजन्मातृस्तदा ।।३२
अन्धकानां महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा ।
ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः ।।३३
तासु तृप्तासु सम्भूता भूय एवान्धकप्रजाः ।
अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः ।।३४
ततः स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः ।
जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ।।३५

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, कंकुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी, हुंकारी, रुद्र सुसटा, रुद्रेशी, भूतडामारी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी, इन इतनी तथा अन्य माताओं का देवेश्वर ने उस समय में सृजन किया था ।। २९, ३०, ३१, ३२ ।। उस समय में इन महा घोराओं ने अन्धकों क रुधिर का पान किया था । इसके अनन्तर अन्धकों के रुधिर से सभी माताऐं परम तृप्ति को प्राप्त हुई थीं । उनके तृप्त होने पर भी पुन: अन्धकों की प्रजा उत्पन्न हुई थीं । शूल और मुद्गर हाथों में धारण करने वाले उनके द्वारा महादेव बहुत ही अर्दित

हुए थे। इसके उपरान्त वह देव शंकर अन्धकों के द्वारा व्याकुल कर दिये गये थे और फिर वे अज—प्रभु वासुदेव भगवान् की शरणागति में प्राप्त हुए थे ।।३३-३५।।

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम् ।
या पपौ सकलन्तेषामन्धकानामसृक् क्षणात् ।।
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम् ।।३६।।
तथा तथाऽधिकं देवी संशुष्यति जनाधिप ! ।
पीयमाने तथातेषामन्धकानां तथासृजि ।।
अन्धकास्तु क्षयन्नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा ।।३७।।
मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक् ।
चकार वेगाच्छूलाग्रे सचतुष्टाघशङ्करम् ।।३८
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः ।
सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च ।।३९
ततो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ।
भगवन् ! भक्षयिष्यामः स देवासुरमानुषान् ।।४०
त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ।
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीयाः न संशयः ।।४१
तस्माद्घोरानभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम् ।
इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा ।।४२

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने शुष्क रेवती की सृष्टि की थी जिसने क्षण भर में ही उन अन्धकों के रक्त को पी लिया था। हे जनाधिप ! जैसे २ वे उस अन्धक के रुधिर का पान करती थीं वैसे २ ही देवी अधिक शुष्क हो जाया करती थी। उस प्रकार से अन्धकों के रक्त का पान कर लेने पर वे सब अन्धक त्रिपुरारि के द्वारा क्षय को प्राप्त कर दिये गये थे ।। ३६, ३७ ।। उस समय में जो मूल अधिक था उस पर त्रिलोकी के धारण करने वाले भगवान् शिव ने विक्रम करके वेग के साथ

उसको अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर कर दिया था। उस अन्धक ने फिर भगवान् शंकर का स्तवन किया था। वह अन्धक महान् वीर्य वाला था और उससे भगवान् भव परम तुष्ट हो गये थे। फिर तो शंकर ने उसको अपनी समीपता को रहने का पद तथा गणेशत्व पद का प्रदान किया था ।। ३८, ३९ ।। इसके अनन्तर सब मातृगणों ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहा था—हे भगवन्! हम अब सब देव-असुर और मानवों का भक्षण करेंगी क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही प्रसाद से समुत्पन्न हुआ है और स्थित है सो अब आप हमको आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं। भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा था। शंकर बोले—आप सबको इन प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिये इन घोर जो प्रजाओं के भक्षण कर जाने के अभिप्राय हैं उनसे शीघ्र ही अपने मन को हटालो। इस प्रकार से कहे हुए इन भगवान् शंकर के वचनों का उन मातृगणों ने उस समय में अनादर कर दिया था ।। ४०, ४१, ४२ ।।

भक्षयामसुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै ।।४३
नृसिहमूर्ति देवेश प्रदध्यो भगवाञ्छिवः ।
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम् ।।४४
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् ।
विद्युज्जिह्व महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम् ।।
कल्पान्तामरुतक्षुब्ध सप्तपर्णसमस्वनम् ।।४५
वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम् ।
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ।।४६
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्वलाननम् ।
नखनिःसृतरोषाग्नि ज्वालाकेसरमालिनम् ।।४७
वज्राङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषमम् ।

श्रोणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥४८
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम् ॥ ४९

अत्युग्र स्वरूप वाली उन माताओं ने इस चराचर सम्पूर्ण जगत् तथा त्रैलोक्य का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया था। उस समय में मातृगण के द्वारा इस त्रिलोकी के भक्ष्यमाण होने पर भगवान् शिव ने देवेश श्री नृसिंह मूर्त्ति का ध्यान किया था जिनका स्वरूप आदि और अन्त से रहित है और जो इस सम्पूर्ण लोक के उत्पत्ति को करने वाले हैं। दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु के वक्षः स्थल के रुधिर से चर्चित महान् नखों वाले—विद्युत के तुल्य जीभ से युक्त—महान् दाढ़ों वाले—स्फुरित हुए केसरों के कण्टकों से सम्युत–कल्प के अन्त में क्षोभ से पूर्ण मारुत से समन्वित तथा सप्तपर्ण वृक्षों के तुल्य ध्वनि वाले थे। बज्र के समान तीक्ष्ण नखों वाले–घोर–कानों तक व्याहित मुख बाले—मेरु पर्वत के सदृश–उदय कालीन सूर्य के समान नेत्रों वाले–हिमालय को शिखर के समान आकार से संयुत–सुन्दर दाढ़ों समुज्ज्वल मुख वाले–नखों से निकली हुई रोषाग्नि की ज्वालाओं की माला वाले—बज्र के अङ्गों के धारण कर्त्ता–मुकुट से युक्त---हार और केयूरों के आभरण से भूषित---तेज से समाक्रान्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आगार से संकुल उनका स्वरूप था। ॥ ४३--४९ ॥

पवनं भ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् ।
आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ॥५०
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्तं महास्रजम् ।
स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौतस्य दर्शनम् ॥५१
यादृशेनैवरूपेण ध्याते रुद्रेण धीमता ।
तादृशेनेव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतः ॥५२

प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धर ! ॥५३
दैत्यनाथासृजापूर्ण ! नखशक्तिविराजित ! ।
ततः सकलसंलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ॥५४
नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वांसुशक्र ! जगद्गुरो ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष ! सूर्यकोटिसमप्रभ ॥५५
सहस्रयमसंक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम ! ।
सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ॥५६

हुत की हुई हव्य को वहन करने वाले अग्नि की भ्रम्यमाण अर्चियों के पवन, आवर्त्त के सदृश आकारों वाले देह के लोमजों से संयुक्त, सभी तरह के पुष्पों से अद्भुत महामाला को धारण करने वाले श्री नृसिंह का स्वरूप था । जैसे ही शिव ने उनका उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित वपु का ध्यान किया था वैसे ही तुरन्त उन्होंने शिव को अपना दर्शन दिया था । जिस प्रकार के स्वरूप का धीमान् रुद्रदेव के द्वारा ध्यान किया गया था उसी प्रकार के देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्षणीय स्वरूप में वह वहाँ उपस्थित हुए थे । भगवान् शंकर ने उनको प्रणिपात करके फिर स्तुति की थी । भगवान् शंकर ने कहा---हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो नर और सिंह दोनों के स्वरूप को धारण करने वाले हैं । ऐसे आपको नमस्कार है । हे दैत्यनाथों के रक्त से आपूर्ण---हे नखों की शक्ति से विराजमान ! हे सम्पूर्ण संलग्न हेम के सदृश पिङ्गल विग्रह वाले ! हे पद्मनाभ ! मैं आपको प्रणत होता हूँ । हे सुरों के शक्र ! हे जगत् के गुरो ! हे कल्पान्त में अम्भोद के समान निर्घोष वाले ! आप तो करोड़ों सूर्य्यों के समान प्रभा वाले हैं । आपका क्रोध सहस्रों यमों के समान है । आप सहस्रों इन्द्रों के समान पराक्रम वाले हैं । आप सहस्रों धनदों के तुल्य सकीत हैं और आप सहस्रों वरुणों के स्वरूप वाले हैं । ॥ ५०--५६ ॥

सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ।
सहस्रभूमिसद्धैर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ! ।।५७
सहस्रचन्द्रप्रतिम ! सहस्रग्रहविक्रम ! ।
सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मसंस्तुत ! ।।५८
सहस्रबाहुवर्गोग्र ! सहस्रास्य निरीक्षण ! ।
सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रबधमोचन ! ।।५९
अन्धकस्य विनाशयया:सृष्टा:मातरो मया ।
अनादृत्य तु मद्वाक्च्यम्भक्षयन्त्यद्यता:प्रजा: ।।६०
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तंमपराजित ।
स्वयङ्कृत्वा कथन्तासांविनाशमभिकारये ।।६२
एवमुक्त: स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धर: ।
ससर्ज देवोजिह्वायास्तदावाणीश्वरीं हरि: ।।६२
हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी ।
अस्थिभ्यश्च तथाकाला सृष्टापूर्वं महात्मना ।।६३

हे सहस्र कालों से रचित ! हे सहस्र नियत इन्द्रियों वाले ! हे सहस्र भूमि सद्धैर्य्य ! हे सहस्रानन्त ! हे मूर्त्तिमन् ! हे सहस्र चन्द्रों की प्रतिभा वाले ! आप तो सहस्रों ग्रहों के विक्रम वाले हैं और सहस्र चन्द्रों के तेज से सयुत हैं। आप सहस्रों ब्रह्माओं के द्वारा संस्तुत हैं। हे सहस्र बाहु बर्गोग्र ! हे सहस्राक्ष के समान नेत्रों वाले ! हे सहस्र यन्त्रय मन ! हे सहस्र बध मोचन ! मैंने अन्धक दैत्य के विनाश के लिये जिन मातृगण का सृजन किया था वे ही आज मेरे वचन का अनादर करके उन प्रजाओं का भक्षण कर रहे हैं। हे अपराजित! उस मातृगण को सृजन करके अब उसके संहार करने में मैं अशक्त हो रहा हूँ क्योंकि स्वयं ही मैंने जिसको बनाया था उसका विनाश मैं ही स्वयं कैसे करूँ। इस प्रकार से रुद्रदेव के द्वारा उन नरसिंह वपु के धारी प्रभु से जब कहा गया था उन हरिदेव ने जिह्वा की वाणीश्वरी की

रचना की थी। हृदय से माया—गुह्य से भवमालिनी और अस्थियों से कोली का पहिले उस महात्मा ने सृजन किया था ॥ ५७-६३ ॥

यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकानां महात्मनाम् ।
याचास्मिन्कथिता लोकेनामत:शुष्करेवती ॥६४
द्वात्रिशन्मातर: सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा तत: ।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदत: शृणु ॥६५

सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च ।
त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्ववशङ्करी ॥६६
तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसङ्कर्षणी तथा ॥६७

इत्येता: पृष्ठगाराजन् ! वागीशानुचरा: स्मृता: ।
सङ्कर्षणीतथाश्वत्थांवीजभावापराजिता: ॥६८
कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका ।
इति देव्यष्टकं राजन् ! मायानुचरमुच्यते ॥६९

जिसने महात्मा अन्धकों का रुधिर पान किया था और जो नाम से लोक में शुष्क रेवती कही गयी थी। इसके पश्चात् चक्रधारी प्रभु ने अपने ही गात्रों से बत्तीस माताओं का सृजन किया था। उन सबके नामों को बतलाने वाले मुझसे अब तुम सुनलो ॥ ६४, ६५ ॥ उनमें सभी महान् भागों वाली थीं। घण्टा कर्णी—त्रैलोक्य मोहिनी—पुण्या सर्वसत्व शंकरी—चक हृदया—पाँचवीं व्योमचारिणी—शंखिनी—लेखिनी काल सकर्षिणी ये सब हे राजन् ! उस वागीशा के पीछे गमन करने वाली अनुचारिणी थीं—ऐसा कहा गया है। संकर्षणी—अस्वत्था—बीजभावा—अपराजिता—कल्याणी—मधुदंष्ट्री और कमला तथा उत्पल हस्तिका हे राजन् ! देवियों का जो अष्टक था वह मायानुचर कहा जाता है। ॥ ६६-६९ ॥

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना ।
नृसिंहभैरवा विल्वा गरुत्महृदया जया ॥७०
भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः ।
आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ॥७१
ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चबालिका ।
तथापद्मकराराजन् ! रेवत्यनुचराःस्मृता ॥७२
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः ।
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ॥७३
ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु ।
प्रधाविता महाराज ! क्रोधविस्फारितेक्षणाः ॥७४
अविषह्यतमन्तासां दृष्टितेजः सुदारुणम् ।
तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ॥७५
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् ।
जयन्ति ते तथैवाशु यथावैदेवतात् सुतान् ॥७६
भवत्स्तु तथालोकान्पालयन्तु मयेरिताः ।
मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम् ॥७७

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्म दशना, नृसिंह भैरवा, बिल्वा गरुत्महृदया, जया और भवमालिनी ये आठ अनुचर नृप माताऐं थीं । आर्कपानी, सम्भरा, उत्तर मालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका, देगजन् ! पद्मकरा ये रेवती की अनुचारिणी थीं—ऐसा कहा गया है । ये आठ महाबल वाली और सभी देव के गात्रों से समुत्पन्न होने वाली थीं । ये सब देवता त्रैलोक्य की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ थीं । वे देव के द्वारा सृष्ट मात्र होते ही हे महाराज ! अति क्रुद्ध होकर क्रोध से त्रिस्फारित नेत्रों वाली मातृगण के पीछे प्रधावित हुईं थी । उनकी दृष्टि का तेज अविषह्यतम और परम सुदारुण था । उन सबने उन्हीं की शरणागति प्राप्त की थी तब श्री नृसिंह प्रभु ने यह वाक्य कहा था—जिस

प्रकार से मनुष्य और पशु चिरकाल तक सुतों का पालन किया करते हैं उसी भाँति देवगण के समान शीघ्र ही जय को प्राप्त होते हैं। आप लोग मेरे द्वारा प्रेरित होकर लोकों का पालन करें तथा मनुष्य और देवगण सब त्रिपुरान्तक का अभ्यर्चन किया करें।।७०, ७१, ७२, ७३, ७४।। ।।७५, ७६, ७७।।

नच बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके।
येच मां संस्मरन्तीह तेच रक्ष्याः सदानराः ।।७८
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः।
सर्वकामप्रदारतेषां भविष्यध्वन्तथैच ।।७९
उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम्।
तेच रक्ष्याः सदालोकार्रक्षितव्यं मदासनम् ।।८०
रौद्रीं चैव परां मूर्ति महादेवः प्रदास्यति।
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्षय ।।८१
मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः।
एष नित्यं विशालाक्ष्यो मयैव सह रंस्यते ।।८२
मया साद्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ।
पृथक् सुपूजिता लोकैः सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ।।८३
शुष्कां संपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः।
तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यन्तिनसंशयः। ८४

भगवान् त्रिपुरान्तक के जो भी भक्तगण हों उनको कोई भी बाधा नहीं करनी चाहिए। जो मनुष्य यहां पर मेरा स्मरण किया करते हैं उनकी भी सदा रक्षा करनी चाहिए। जो नर आपका सर्वदा बलिकर्म्म किया करते हैं अर्थात् आपको बलि समर्पित करते हैं उनकी समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले आप लोग उसी भाँति बन जाइये। मेरे द्वारा प्रेरित जो उच्छाशनादिक का कथन करते हैं उन लोकों की सदा रक्षा करनी चाहिये और मेरे आसन की भी सुरक्षा करने की कृपा करें। महादेव परा

रौद्री मूर्त्ति का प्रदान करेंगे। आपमें जो मुख्य महादेवियाँ हैं वे सब उपर्युक्त सबकी रक्षा करें। मेरे द्वारा इस मातृगण का सृजन किया गया है जो यह इस समय में विगत भय वाला है यह नित्य ही विशाल नेत्रों वाली मेरे ही साथ रमण में रमण करेंगे। मेरे ही ये नरों से पूजा प्राप्त करेंगी। यदि इन्हें पृथक् भी समर्चन किया जावेगा और लोग ऐसा करेंगे तो ये सभी मनोकामनाओं की प्राप्ति करा देंगी। जो पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं उन जनों को यह देवी पुत्र प्रदा अवश्य ही हो जायेंगी—इसमें तनिक भी संशय का कोई अवसर ही नहीं रहता है ॥ ७८, ७९ ॥ ॥८०, ८१, ८२, ८३, ८४॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु।
ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्यरधीयत ॥८५
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः।
तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः ॥८६
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्त्वा रुद्रस्तु पार्थिव।
रौद्रां दिव्यां तनुं तत्रमातृमध्येव्यवस्थितः ॥८७
सप्त ता मातरो देव्यः सार्द्धनारीनरः शिवः।
निवेश्य रौद्रं तत् स्थानं तत्रैवान्तरधीयत ॥८८
स मातृवर्गस्य हरस्य मूर्त्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्तेः पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः ॥८९

इस प्रकार से कहकर वह भगवान् मातृगण के साथ ही ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल वपु वाले वहां पर अन्तर्हित हो गये थे ॥८५॥ वहां पर एक तीर्थ की उत्पत्ति हो गई थी जिसको कृतशौचा—इस नाम से गान किया जाता था। वहां पर भी पूर्वज देव इस जगत् की आर्त्ति का (पीड़ा का) हरण करने वाले हर ही थे ॥८६॥ हे पार्थिव! भगवान् रुद्रदेव रौद्र मातवर्ग को रौद्र एवं दिव्य तब प्रदान करके वहां पर मातृ मध्य में व्यवस्थित हो गये थे। वे सात तो माताऐं देविया हैं और सार्द्ध

नारी नर शिव हैं । उस रौद्र स्थान को निवेशित करके वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे । वह जब जब भी वह मातृ वर्ग की हर की मूर्त्ति उसके समीप में जाती है तब त्रिपुरान्धकारि शिव देवेश्वर नृसिंह मूर्त्ति की भी पूजा किया करते हैं ।।८७, ८८, ८९।।

७३—वाराणसी माहात्म्य

श्रुतोऽन्धकबधः सूत ! यथावत्त्वदुदीरितः ।
वाराणस्यास्तु माहात्म्य श्रोतुच्छिाम साम्प्रतम् ।।१
भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः ।
अन्नदत्त्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः ।।२
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वञ्च कथङ्गतः ।
एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत ! त्वया ।।३
शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः ।
अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह ।।४
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यज्ञः प्रतापवान् ।
हरिकेश इतिख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह ।।५
तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा ।
तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।।६
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन् ।
भुञ्जानोऽथ पिबन्वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत् ।।७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे सूतजी ! आपके द्वारा वर्णित ठीक २ रीति से हमने अन्धक का वध श्रवण कर लिया अब इस समय में वाराणसी पुरी का माहात्म्य हम श्रवण करने की सब अभिलाषा रखते हैं । ।।१।। भगवान् पिङ्गल किस के द्वारा अथवा किस कारण से गणत्व को प्राप्त हुए थे ? यह महा द्युति से सुसम्पन्न वाराणसी में अन्न दत्त्व को

भी सम्प्राप्त हो गये हैं ? ।।२।। यह क्षेत्रपाल कैसे हुए और प्रियत्व की प्राप्ति भी किस तरह से हुई थी ? हे ब्रह्माजी के पुत्र ! यह सब आपके द्वारा वर्णित हम सब श्रवण करना चाहते हैं। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—उस पिङ्गल ने जिस रीति से गणेशत्व की प्राप्ति की थी उसे आप लोग सुनिये। लोकों को अन्न देने वाले और यहां पर यह वाराणसी का स्थान जैसे प्राप्त हुआ वह भी सुनिये ।।३, ४।। पूर्णभद्र का पुत्र प्रताप वाला श्रीमान् यक्ष था। वह हरिकेश—इस नाम से विख्यात था और परम धार्म्मिक तथा ब्रह्मण्य था ।।५।। उसकी जन्म के आरम्भ से ही लेकर भगवान् शिव में अतीव उत्तम भक्ति थी। उस समय में शिव को ही नमस्कार करने वाला—उन्हीं में पूर्ण निष्ठा रखते हुए यह सर्वदा उन्हीं में परायण रहा करता था ।।६।। यह बैठा हुआ—शयन करता हुआ—गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—अनुव्रजन करते हुए—भोजन करने की दशा में तथा पान करते हुए भी रुद्र का ही सदा अनुचिन्तन किया करता था ।।७।।

तमेवं युक्तमनसम्पूर्णभद्रः पिताब्रवीत् ।
न त्वां पुत्रमहं मन्येदुर्जातो यस्त्वमन्यथा । ८
न हि यक्ष कुलीनानामेतद्वृत्तं भवत्युत ।
गुह्यका वत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः ।।९
क्रव्यादाश्चैव किं भक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक ।
मैवं कार्षीर्नते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ।।१०
स्वयम्भुवा यथादिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत् ।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत् ।।११
हित्वा मनुष्यभावं च कर्मभिर्विविधैश्चर ।
यत्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एवच ॥१२
यथावद्विविधन्तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम् ।
मयापि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः ।।१३

इस प्रकार से युक्त मन वाले उससे उसके पिता पूर्ण ने कहा था—मैं पुत्र तुझको दुर्जात नहीं मानता हूं जो कि तू अन्यथा रहा करता है। ॥८॥ यक्ष कुलों में समुत्पन्नों का यह चरित नहीं हुआ करता है। खेद है आप लोग गुह्यक हैं स्वभाव से क्रूर चित्त वाले हुआ करते हैं ॥६॥ हे पुत्रक ! क्रव्याद लोग क्या भक्षण करने वाले हैं और हिंसा करने के स्वभाव वाले होते हैं। ऐसा मत करो। महान् आत्मा वाले के द्वारा तुम्हारी इस प्रकार की वृत्ति नहीं देखी गयी है ॥१०॥ स्वयम्भू ने जो समादिष्ट की है यदि आपमें हो तो उसे त्याग देना चाहिये। जो गृही होते हैं वे दूसरे आश्रम में उत्पन्न होने वाले कर्म को नहीं किया करते हैं और न उन्हें करना ही चाहिये ॥११॥ मनुष्यों के भाव को छोड़ कर विविध भाँति के कर्म्मों के द्वारा चरण करो। जो तू इस प्रकार से विमार्ग में स्थित है तो तू मनुष्य से ही समुत्पन्न हुआ है। यथावत् उनके अनक कर्म है जो उनकी जाति का संश्रय रखने वाला है। मैंने भी कर्म्म किया है उसे देखो। इससे इसमे कुछ भी सशय नहीं होगा ॥१२, १३॥

एवमुक्त्वा स तँ पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान् ।
उवाचनिष्क्रमन्क्षिप्रं गच्छपुत्र ! यथेच्छसि । १४
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं स.म्बन्धिनस्तथा ।
वाराणसीं समासाद्यतपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥१५
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः ।
सन्नियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः ॥१६
अथ तस्यंवर्मानिशन्ततत्परस्य तदा शिषः ।
सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यध्यवर्तत ॥१७
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः ।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णैं विध्यमानस्तथंव च ॥१८
निर्मांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेदुसप्रभः ।
अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि ॥१६

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत शङ्करम् ।
उद्यानं पुनरेवेह द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा ।।२०
क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहल हि मे ।
यतश्च प्रियमेतत्ते तथास्य फलमुत्तमम् ।।२१

श्री सूत महर्षि ने कहा—वह प्रताप वाले पूर्णभद्र ने उस अपने पुत्र से इस प्रकार से कहकर फिर हे पुत्र ! तू यहां से निष्क्रमण करते हुए बहुत शीघ्र जहां भी चाहता है चला जा ।।१४।। इसके उपरान्त वह वहां से निर्गत होकर अपने गृह और समस्त सम्बधियों का परित्याग कर चला गया था । फिर वाराणसी पुरी में प्राप्त होकर उसने परम दुश्चर तप किया था ।।१५।। वहां पर पलकें पूर्णतया खोले हुए-एक स्थाणु (वृक्ष का ढूंठ) के रूप वाला—सूखा हुआ काष्ठ तथा पाषाण के सदृश होकर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को भली भाँति नियन्त्रित करके एक दम निश्जल होकर अवस्थित होगया था ।।१६।। इसके अनन्तर उसको निरन्तर इस प्रकार से तप मे तत्पर हुए को उस समय में एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये थे ।।१७।। उसका शरीर सर्पों की बाँबियों से समाक्रान्त हो गया था—पिपीलिकाऐं (चीटियां) उस शरीर को खा रही थीं तथा तीक्ष्ण वज्रसूची मुख कीटों से वह उसका वपुपूर्ण या विंधा हुआ सा हो गया था ।।१८।। यद्यपि उसका शरीर बिना माँस-रुधिर और त्वचा वाला ही था किन्तु फिर भी कुन्द—इन्दु और शंख के समान प्रभा से पूर्ण था । देवेश्वर का ही चिन्तन करते हुए वह पूरा शरीर केवल अस्थियों का ही एक ढाँचा शेष रह गया था । इसी बीच में देवी ने श्री शङ्कर भगवान् को विज्ञापित किया था ।।१९।। देवी ने कहा—मैं सर्वदा उस उद्यान को यहाँ पर देखने की अभिलाषा करती हूँ ।।२०।। हे देव ! इस उत्तम क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करने के लिये मेरे हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । क्योंकि यह आपका प्रिय है तथा इसका उत्तम फल है ।।२१।।

इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः ।
शर्वः पृष्टोयथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ।।२२
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः ।
उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक् ।।२३
प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरूढ़पुष्पैः परितः प्रियंगुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ।।२४
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभि सकर्णिकारैकुलैश्च सर्वशः ।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः ।।२५
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः ।।२६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम् ।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं-
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ।२७।।
मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभि र्निषेवितञ्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित् सुपुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ।।२८

शर्वाणी के द्वारा परमेश्वर देव को यह विज्ञापित किया गया था और याथातथ्य को जब शिव प्रभु से पूछा गया तो वह पूछे हुए होकर इसे कहने के लिये उपक्रम करने लगे थे ।।२२।। देवेश्वर भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ ही निकलकर चले गये थे । फिर पिनाकधारी देव ने वह उद्यान देवी को दिखलाया था ।।२२।। देवों के देव बोले—यह उद्यान विकसित नाना भाँति के गुल्मों से शोभा वाला था । लताओं के प्रतानों से अवनत एवं मनोहर था । दोनों ओर विरूढ पुष्पों वाले प्रियंगुओं से—सुन्दर पुष्पों से समान्वत कण्टकित केतूकों से—सुगन्ध युक्त तमाल के गुल्मों से निर्मित और सब ओर कर्णिकारों के सहित वकुलों से वह समन्वित था ।।२४, २५।। द्विरेफों (भौंरों) की मालाओं से समाकुल पुष्पों के सञ्चय वाले सुपुष्पित अशोक पुन्नाग वरों से सयुत है ।।२५।। इस उद्यान में कहीं

चरु प्रफुल्ल कमलों के रेणु से रूषित तथा चारु एवं कल (मधुर) प्रणाद करने वाले विहंगमों से यह निनादित हो रहा था तथा किसी जगह पर सारस मण्डन आदि से एवं परम वल्गु प्रमत्त दात्यूहों के शब्दों से शब्दायमान था ॥२६॥ किसी स्थल पर चक्रवाकों की ध्वनियों से निनादित और कहीं पर कदम्बों के समूहों से यह उद्यान संयुत था। किसी स्थान में कारण्डवों की कल ध्वनियों से निनादित था और कहीं पर प्रमत्त अलियों के कुलों से आकुलीकृत हो रहा था ॥ २७ ॥ महान् कुलों वाली भ्रमरों की अङ्गनाओं के द्वारा सेवित तथा सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण यह उद्यान था। कहीं पर सुन्दर पुष्पों वाले सहकार के वृक्षों से तथा लताओं से उपगूढ तिलक के द्रुमों से समन्वित था ॥२८॥

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणं प्रवत्तनृत्याप्सरसाङ्गणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोन्नादितम् ॥२६
मृगेन्द्रनादाकुलसत्वमानसैः क्वचित् वचितुद्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः ।
प्रफुल्लानानाविधचारुपङ्कजैः सरस्तटाकैरुपशोभितं क्वचित् ॥३०
निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं-
मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफ—
नवकिशलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥३१॥
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं किं पुरुषव्रजैः क्वचित् ॥३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुश्रृङ्गैरभ्रङ्कषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजितं-
त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ॥३३॥
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तै ।
स्तोयावयंस्तमनुशोभितदेवमार्गम् ॥

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम् ।।३४
तुङ्गाग्रै र्नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-
र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
च्छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ।।३५

वह उद्यान विद्याधर—सिद्ध और चारणों के गीतों से परिपूर्ण—नृत्य करने में प्रवृत्त हुई अप्सराओं के गणों से समाकुल था। परम प्रहर्ष वाले अनेक भाँति के पक्षियों के द्वारा यह उद्यान सेवित था। यह उद्यान प्रमत्त हारीत नाम वाले पक्षियों के समूह से उपनादित था ।।२९।। किसी स्थल पर मृगेन्द्रों की गर्जनों से सत्वों के मानसों को समाकुलित करने वाला था। कोई भाग इसका मृगों के जोड़ों के समुदायों से युक्त था। कहीं पर खिले हुए अनेक तरह के चारु कमलों से युक्त सरोवर और तड़ागों के द्वारा यह उद्यान शोभा वाला था ।।३०।। यह उद्यान घने निचुलों से नील वर्ण वाला—नील कण्ठों से अभिराम—मद से परम प्रसन्न पक्षियों के समूहों के नाद से परम मनोहर था। पुष्पों वाले वृक्षों की शाखाओं में जिस उद्यान में भौंरे प्रमत्त होते हुए लीन हो रहे थे और नूतन पत्रों की शोभा से शोभित प्रान्त शाखाओं वाला वह उद्यान था। कहीं पर गजों के द्वारा किये गये क्षतों से सुन्दर वीरुधों वाला था और कहीं पर लताओं के द्वारा सुन्दर वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा था। किसी स्थल पर विलास में अलस गमन करने वाले वर्हि वाला तथा कहीं किम्पुरुषगण उस उद्यान का सेवन कर रहे थे ।।३१, ३२।। पारावतों की ध्वनि से विशेष रूप से कूजित सुन्दर शिखरों से जो कि आकाश को छूने वाले बहुत ही ऊँचे थे और श्वेत एवं मनोहर चारु रूप से युक्त थे वह उद्यान विभ्राजित हो रहा था और समाकीर्ण पुष्पों के निकुरम्ब से विमुक्त हास्य वाले अनेक देवों के कुलों के द्वारा वह सेवित था ।।३३।। खिले हुए

बड़े २ सहस्रों उत्पलों के वितानों से युक्त तोयाशयों से शोभा वाले देवमार्ग वाला वह उद्यान बहुत ही सुन्दर हो रहा था। मार्ग के बीच में गलित हुए पुष्पों से विचित्र भक्ति से सम्बद्ध झाड़ियों तथा विटपों से समायुक्त था बहुतही ऊंचे जिनके अग्रभाग हैं ऐसे नीले पुष्पों के स्तवकों के भार से अवनत शाखाओं वाले अशोक के वृक्षों से समायुक्त था तथा अत्यन्त प्रमत्त भ्रमरों के समुदायों के गुञ्जित गीतों से कानों को सुख समुत्पन्न करने वाले और अन्दर मनोज्ञता को भासित करने वाले तिलकों के कुसुमों के द्वारा तथा रात्रि में चन्द्र की दीप्ति से एकता को प्राप्त हुआ और छाया में प्रसुप्त होकर फिर जगे हुए संस्थित हिरनों के कुलों से आलुप्त दर्भों के अंकुरों वाला वह उद्यान था अर्थात् वहां पर लेटे हुए हरिणों के समूह से डाभों के अकुर दवे हुए हो गये थे ॥३४, ३५॥

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयम्
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम् ।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतित रञ्जितक्ष्माप्रदेशम्
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्ताहारीतवृक्षम् ॥३६
सारङ्गः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सच्छन्नं कुसुमचयः क्वचिद्विदैः ।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नराङ्गनाभिः
क्षीबाभिः समधुरगीतवृक्षखण्डम् ॥३७
संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम् ।
आमूलात् फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरुत्तुङ्गैः
पनसमहीरुहैरुपेतम् ॥३८

फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं,
सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम् ।
रम्यप्रियंगु तरुमञ्जरिसक्तभृङ्ग भृङ्गावलीषु ॥
स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम् ॥३९॥
पुष्पोत्करानिलविघूर्णितपादपाग्रमग्रेसरो भुवि निपातितवंशगुल्मम् ।
गुल्मान्तरप्रभृतिलीनमृगासमूहं संमुह्यतान्तनुभृतामपवर्गदातृ ॥४०

चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः
सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः
फुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः ॥४१
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः ।
क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ॥ ४२

अभी तक निरन्तर उसी उद्यान की शोभा का ही वर्णन किया जा रहा है वह उद्यान हंसों के पंखों के प्रपात से विचलित होने वाले कमलों के द्वारा परम स्वच्छ एव विस्तीर्ण जल वाला था। जलाशयों के तट पर समुत्पन्न एवं प्रविकच कदलियों के वाट में नृत्य करने वाले मयूरों से युक्त वह उद्यान था। किसी स्थल पर गिरे हुए मयूरों के पक्ष चन्द्रों के द्वारा रञ्जित क्षमा प्रदेश वाला था तथा देश-देश में विकीर्ण—प्रमुदित–विलसत् मस्त हारीतों से संयुत वृक्षों वाला उद्यान था ॥३६॥ कहीं पर सारङ्गों सेवित प्रदेश वाला और किसी स्थल पर विचित्र कुसुमों से चयों से संछन्न -किसी स्थान पर परम क्षीब एवं प्रहर्षित किन्नरों की अङ्गनाओं के द्वारा सुमधुर गीतों वाले वृक्षों के खण्डों से समन्वित वह उद्यान था ॥३७॥ कही पर संसृष्ट तथा उपलिप्त प्रकीर्ण पुष्पों से युक्त मुनियों के निवास स्थानों से परिवृत पादपों से समन्वित वह उद्यान था। कहीं पर अत्यन्त विशाल एवं उत्तुङ्ग और मूल से ही लेकर फलों से निचित पनस कटहट) के वृक्षों से उपेत वह उद्यान था ॥३८॥ विकसित और अतिमुक्त लताओं के गृहों में सिद्धों की लीला वाला था तथा सिद्धों की अङ्गनाओं के सुवर्ण रचित नूपुरों के नाद से परम सुन्दर वह उद्यान था। परमरम्य प्रियंगु के वृक्षों की मञ्जरियों में संसक्त भ्रमरों से समन्वित तथा भृङ्गों की कतारों में स्खलित होने वाले जल कदम्बों के पुष्पों से संयुत वह उद्यान था ॥३९॥ कुसुमों के उत्करों से मिश्रित वायु से विघूर्णित वृक्षों के अग्रभाग वाला तथा भूमण्डल में निपातित बाँसो की

झाडियों से युक्त था । गुल्मों के बीच में लीन होने वाले मृगों के समुदाय वाला—सम्मोह को प्राप्त देहधारियों को अपवर्ग को देने वाला था । चन्द्रमा की किरणों के समान धवल मनोज्ञतिलकों से तथा सिन्दूर, कुंकुम और कुसुम्भ के तुल्य अशोकों से–चामीकर (सुवर्ण) की आभा के समान कर्णिकारों से और परम विशाल शाखाओं के द्वारा फुल्ल अरविन्दों से रचित वह उद्यान था । कहीं पर तो रजत वर्णों की आभा वाले—कहीं पर द्रुमों के सदृश–कहीं पर सुवर्ण के समान पुष्पों से समाचित भूतल वाला वह उद्यान था ।।४१, ४२।।

पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्ताशोकस्तबकभरनमितम् ।
रम्योपान्तं श्रमहरपवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम् ।।४३
सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीन्तु-
हिमशिखरिपुत्र्याः सार्द्धमिष्टैर्गणेशैः ।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्ट-
मुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः ।।४४
उद्यानं दर्शितं देव ! शोभया परया युतम् ।
क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि ।।४५
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा ।
श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिरतो भूयोवदस्वमे ।।४६
इदं गुह्यत क्षेत्रं सदा वाराणसी मम ।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ।।४७
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः ।।४८
अभ्यसन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः ।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगकूजिते ।।४९

वह दिव्य उद्यान ऐसा मनोरम था जिसमें पुन्नागों में द्विजगणों (पक्षियों) का कूजन हो रहा था और जो रक्त अशोकों के स्तवकों के भार

से नमित था जिसके उपान्त परमरम्य थे—शारीरिक श्रम को हरण करने वाला वायु जिसमें वहन कर रहा था तथा विकसित कमलों में जिस उद्यान में भ्रमरों का विलास हो रहा था ॥४३॥ उस समय में समस्त भुवनों के भरण करने वाले—लोकों के नाथ ने अपने इष्ट गणेशों के साथ में तुहिना शिखर हिमालय अद्रिराज की पुत्री देवी पार्वती को अनेक प्रकार के वृक्षों अत्यन्त विशाल—मत्त एवं हृष्ट अन्यो के द्वारा पुष्प और उपवन के तरुओं से रम्य उस उद्यान को दिखा दिया था ॥४४॥ देवी ने कहा—हे देव ! परा शोभा से युक्त इस उद्यान को तो आपने दिखला दिया है। अब समस्त इस क्षेत्र के गुणों को यहाँ पर आप कहने के योग्य हैं। अविमुक्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करके भी मुझे पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है। इसलिये इसे ही आप पुनः मुझे श्रवण कराइये ॥४५, ४६॥ देवों के देव ने कहा—यह अत्यन्त ही गुह्यतम क्षेत्र है जो सदा मेरा वाराणसी है। यह सर्वदा सभी प्राणियों के मोक्ष का हेतु होता है ॥४७॥ हे देवि ! इस क्षेत्र में सदा सिद्धगण मेरे ही व्रत में समास्थित रहते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के चिन्हों के धारण करने वाले और नित्य ही मेरे लोक के प्राप्त करने की अभिकाङ्क्षा वाले थे ॥४८॥ मुक्त आत्मा वाले जितेन्द्रिय लोग अनेक वृक्षों से समाकीर्ण और नाना प्रकार के विहङ्गों से कूजित इस स्थल मे पर योग का अभ्यास किया करते हैं ॥४९॥

कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते।
अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेवितेशुभे ॥५०
रोचते मे सदा वासोयेन कार्येण तच्छृणु।
मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः ॥५१
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित्।
एतन्मम परं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥५२
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः।
अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम ॥ ५३

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
महत् क्षेत्रमिद तस्यादविमुक्तमिदंस्मृतम् ।।५४
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ।।५५
इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते।
प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ।।५६

कमल-उत्पल पुष्पों से आढ्य सरोवरों से समलंकृत-अप्सराओं के गण और गन्धर्वों के द्वारा सदा से सेवित शुभ स्थल यह है। जिस कार्य्य के कारण मुझे सदा इसका निवास पसन्द है उसे भी सुनलो। मेरे में ही मनको निवेशित करने वाला मुझ में ही सर्वस्व समर्पित कर देने वाला तथा सब किये हुए कर्मों को भी मेरी ही सेवा में अर्पित करने वाला मेरा भक्त जिस प्रकार से यहां मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है वैसा अन्य किसी भी स्थान में नहीं कर सकता है। यह ही मेरा परम दिव्य-महत् और गुह्य से गुह्यतम क्षेत्र है ।।५०, ५१, ५२।। ब्रह्मादिक देवगण और जो भी मुमुक्षु सिद्ध लोग हैं वे इसे भली भाँति जानते हैं। इसीलिये मेरा यह सबसे अधिक प्रिय क्षेत्र है और इसी कारण से मेरी यहा पर अत्यधिक रति है। इसी से मैंने इसको कभी नहीं छोड़ा है और न भविष्य में भी मेरे द्वारा इसका त्याग किया जायगा इसी से उसका यह महत् क्षेत्र है और यह उसका अविमुक्त कहा गया है ।।५३, ५४।। नैमिष—कुरुक्षेत्र गङ्गाद्वार और पुष्कर में स्नान करने से तथा सेवित करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता है। नहीं परम दुर्लभ मोक्ष यहाँ पर सम्प्राप्त कर लिया जाया करता है इसी से यह सब से विशिष्ट होता है। या तो प्रयाग में इस मोक्ष की प्राप्ति होती है अथवा यहाँ पर मेरे परिग्रह करने से मुक्ति हो जाती है ।।५५, ५६।।

प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम्।
जैगीषव्यः परां सिद्धि योगतः स महातपाः ।।५७

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात् ।
जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते ।। ५८
ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम् ।
कैवल्यं परमं याति देवानामपिदुर्लभम् ।। ५९
अव्यक्तलिंगैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः ।
इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः ।।६०
तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम् ।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेवच ।।६१
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा शर्वार्पितक्रियः ।
क्षेत्रसम्वसनादेव गणेशत्वमवाप ह ।। ६२
सम्वर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु ।
इहैवाराध्य मां देवि ! सिद्धि यास्यत्यनुत्तमाम् ।। ६३

समस्त तीर्थों में प्रथम प्रयाग से भी यह ही महान् तीर्थ कहा गया है । वह महान् तपस्वी जैगीषव्य योग से परम सिद्धि को इस क्षेत्र के ही माहात्म्य से— भक्ति से और मेरी भावना से महान् श्रेष्ठ जैगीषव्य योगियों के स्थान को प्राप्त करता है ।।५७, ५८।। वहां पर नित्य ही मेरा ध्यान करने वाले की योगाग्नि अत्यन्त दीप्त हो जाया करती है और फिर वह देवों को भी दुर्लभ परम कैवल्य पद को प्राप्त करता है । अव्यक्त लिङ्गों वाले—सम्पूर्ण सिद्धान्तों को जानने वाले मुनियों के द्वारा यहां पर ही मोक्ष की प्राप्ति की जाया करती है जो देवों और दानवों के द्वारा भी अतीव दुर्लभ है ।।५९, ६०।। उन मेरे परम भक्तों को मैं अत्युत्तम भोग एवं ऐश्वर्य्य प्रदान किया करता हूं । तथा उनको अपना सायुज्य पद एवं अभीप्सित स्थान का प्रदान किया करता हूं । महान् यक्ष कुबेर तथा शिव के लिये ही अपनी समस्त क्रियाओं को अर्पित कर देने वाला इसी क्षेत्र में सम्वास करने ही से गणेशत्व के पद को प्राप्त हो गया था ।। ६१, ६२ ।। और जो सम्वर्त्त होगा वह भी मेरी ही भक्ति से हे

देवि ! यहां पर ही मेरी समाराधना करके अत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा ।। ६३ ।।

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः ।
धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ।।६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः ।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ।।६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः ।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे सामेवसुव्रत ।।६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः ।
अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा ।।६७
अलर्कश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति ।
स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् ।।६८
स्फातां जनसमाकीर्णां भक्त्याच सुचिरंनृपः ।
मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ।।६९
ततः प्रभृति चार्वङ्गि ! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः ।
गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ।।७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम् ।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ।।७१
इहक्षेत्रेमृतः सोऽपिसंसारंन पुनर्विशेत् ।
ये पुनर्निर्ममा धीराःसत्वस्था विजितेन्द्रियाः ।।७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान् तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्म्मों का करने वाला–आगे भविष्य में होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्त्तक होगा ।।६४।। हे पद्माक्षि ! वह मुनियो में परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा । ब्रह्मा—देवर्षियों के साथ विष्णु–वायु–दिवाकर–देवों का राजा इन्द्र और अन्य जो देवगण हैं वे सभी महान् आत्माओं

वाले हे सुव्रते ! मेरी ही उपासना किया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी योगीजन—सिद्धगण और छिपे हुए महान व्रतों वाले लोग अनन्य मन वाले होकर यहां पर सर्वदा मेरी ही उपासना किया करते हैं। अलर्क इस पुरी को मेरे ही प्रसाद से प्राप्त करेगा और वह इस पुरी को पूर्व की ही भाँति करके जो चारों वर्णों से समाकुल–स्फीत और जनों से समाकीर्ण है। वह नृप बहुत समय पर्यन्त अपनी भक्ति की उत्कट भावना के द्वारा प्राप्त करेगा और फिर सर्वार्पित प्राण वाला होकर अन्त में मुझ को ही प्राप्त कर लेगा। हे चार्वङ्गि ! तभी से लेकर जो भी इस क्षेत्र के निवास करने वाले गृही एवं लिङ्गों के धारण करने वाले—मुझमें ही परायण रहने वाले मेरे भक्त परम दुर्लभ मोक्ष का सेवन करेंगे और वह मेरे ही प्रसाद से होगा। विषयों में समासक्त चित्त वाला भी धर्म में रति के त्याग करने वाला मनुष्य इस परम पुण्य मय क्षेत्र में मृत्युगत होकर फिर ससार में प्रवेश प्राप्त नहीं किया करता है और जो निर्मम एवं धीर तथा सत्त्वस्थ इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने वाले हैं उनकी तो बात ही क्या है ।।६५।। ।।६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२।।

व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः ।
देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः ।।
गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते ।।७३
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात् ।
तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति ।।७४
एतत्सङ्क्षेपतो देवि ! क्षेत्रस्यास्य महत्फलम् ।
अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम् ।।७५
अतःपरतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि ! ।
एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वराभुवि ।।७६
एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम् ।
एतदेव परम्ब्रह्म एतदेव परम्पदम् ।। ७७

व्रतों के धारण करने वाले—आरम्भों से रहित जो जन हैं वे सभी मुझमें भावित होते हैं और सर्व सङ्ग से रहित वे धीमान् देहों के भङ्ग को प्राप्त कनके हे सुव्रते ! मेरे ही प्रसाद से परम मोक्ष को प्राप्त हो ही गये हैं ।।७३।। सहस्रों जन्मों में योग का अभ्यास करके जिसकी प्राप्ति की जाती है उसी परम मोक्ष को यहां पर मरण करने से ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।।७४।। हे देवि ! यह अति संक्षेप से अविमुक्त इस क्षेत्र का महान् फल जो परम उत्तम और अत्यन्त गुह्यतम है मैंने आपको बतला दिया है । हे महेश्वरि ! इससे परतर कुछ भी सिद्धि गुह्य नहीं है । इसको योग के ज्ञाता और भूमण्डल में स्थित योगेश्वर गण ही जो होते हैं वे ही जानते हैं । यह ही सर्वोपरि परम स्थान है—यह ही परम शिव है—यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सर्वोत्कृष्ट परम पद है ।। ७५ ।। ।।७६, ७७।।

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या–
सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि ! ।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि–
पापक्षयाद्विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः ।।७८
एतत्स्मृतं प्रियतम मम देवि !
नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगल्मलतासु पुष्पम् ।
अस्मिन्मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति–
मूर्खागमेन रहितापि न सशयोऽत्र ।।७९
एतस्मिन्नन्तरे देवो देवी प्राह गिरीन्द्रजाम् ।
दातुं प्रसादाद्यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि ।।८०
भक्तो मम वरारोहे ! तपसा हतकिल्विषः ।
अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि ! ।।८१
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।
जगाम यक्षा यत्रास्ते कृशोधमनिसन्ततः ।।८२

ततस्तं गुह्यकं देवी द्दष्टिपातैर्निरीक्षती ।
श्वेतवर्णं दिचार्माणं स्नायुवद्धास्थिपञ्जरम् ॥ ८३
देवी प्राह तदा देवं दर्शयन्ती च गुह्यकम् ।
सत्यं नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शङ्कर ! ॥८४

यह वाराणसी पुरी हे गिरिराज पुत्रि ! तीनों भुवनों की सारभूता—सदा अतीव रम्य मेरी पुरी है । यहां पर आये हुए अनेक प्रकार के दुष्कृतों को करने वाले भी मनुष्य पापों के क्षय हो जाने से परम शुद्ध होकर दीप्तिमान् हो जाया करते हैं । हे देवि ! यह मेरा प्रियतम क्षेत्र है और नित्य है । यहां पर विचित्र तरु और लता तथा गुल्मों में पुष्प हुआ करते हैं । इस मृत्यु को प्राप्त होने वाले देहधारी लोग अत्यन्त मूर्ख एवं आगमों रहित होते हुए भी परम पद को प्राप्त किया करते हैं इसमें किञ्चित्मात्र भी संशय नहीं है ।।७८, ७९।। महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसी अन्तर में वह देव गिरिन्द्रजा देवी से भक्त यक्ष के लिये प्रसन्नता से वरदान प्रदान करने के लिये बोले थे-हे भामिनि ! हे वरारोहे ! यह मेरा भक्त है और तपश्चर्य्या के द्वारा इसने अपने सब पापों को हत कर दिया है । हे भुवनेश्वरि ! इसने हमसे वर प्राप्त कर लिया है । इस प्रकार से कहकर जगत् के पति देव अपनी देवी के साथ वहां पर गये थे जहां पर अत्यन्त कृश केवल धमनियां ही शेष रहने वाला यक्ष तप में निमग्न था । इसके अनन्तर उस देवी ने अपनी दृष्टि के पातों से उस गुह्यक का निरीक्षण किया था । वह एकदम श्वेत वर्ण वाला—चर्म्म से रहित और स्नायुओं से वद्ध अस्थियों के पञ्जर वाला था । उस समय में देवी ने उस गुह्यक को दिखलाते हुए ही देव से कहा था कि हे शङ्कर ! जैसा कि देवों ने कहा था आप सचमुच ही बहुत उग्र रूप एवं स्वभाव वाले हैं ।।८०, ८१, ८२, ८३, ८४।।

ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।
अत्र क्षेत्रे महादेव ! पुण्येसम्यगुपासिते ।।८५

कथमेवं परिल्केशं प्राप्तो यक्षकुमारकः ।
शीघ्रमस्य वरं यच्छ प्रसादात् परमेश्वर ! ॥८६
एव मन्वादयो देव ! वदन्ति परमर्षयः ।
रुष्टाद्वाचाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतोभवेत् ॥८७
भोगप्राप्रिस्तथा राज्यमन्तेमोक्षः सदाशिवात् ।
एवमुक्तस्ततो देवःसह देव्या जगत्पतिः ॥८८
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधमंनिसन्ततः ।
तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः ॥८६
दिव्यञ्चक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत् स शङ्करम् ।
अथ यक्षस्तदा देशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी ॥
अपश्यत् सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ॥९०॥

हे महादेव ! इस क्षेत्र में पुण्य की उपासना करने वाले इसके इस प्रकार के तप में भी आप कोई अभी तक इस को वरदान नहीं दे रहे हैं– यही तो आपके स्वभाव की उग्रता है । हे परमेश्वर ! यह यक्ष का कुमार क्यों ऐसे महान् तपस्या के क्लेश को प्राप्त हो गया है ? आप प्रसन्न होकरअति शीघ्र ही इसको वरदान कीजिए प्रदान ।८५,८६। हे देव ! मनु आदि परमर्षिगण तो इसी प्रकार से कहा करते हैं कि रुष्ट से अथवा तुष्ट से दोनों ही प्रकार से सिद्धि हुआ करती है । सदाशिव प्रभु से पहिले भोगों की प्राप्ति और राज्य प्राप्त हुआ करता है और अन्त में मोक्ष के पाने का लाभ होता है । इस प्रकार से जब देवी के द्वारा देव से कहा गया था तो तुरन्त ही जगत् के स्वामी वह देव देवी के ही साथ में वहां पर पहुँच गये थे जिस स्थल पर परम दुर्बल और शेष धमनियों वाला वह यक्ष तप में लीन होकर समुपस्थित था। भक्ति से हरिकेश को प्रणाम करते हुए उसको देखकर भगवान् वृषध्वज ने दिव्य चक्षु प्रदान कर दी थीं जिससे उसने शङ्कर को देख लिया था । इसके उपरान्त उसी समय में वह यक्ष अपने चक्षुओं को उनमीलित करके स्थान से धीरे से उठा था

और उसने गणों के सहित वहां पर समुपस्थित वृषध्वज देव को देखा था ।।८७, ८८, ८९, ९०।।

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा ।।९१
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः ।
ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च ।।९२
पादयोः प्रणतस्तथौकृत्वा शिरसिसाञ्जलिम् ।
उवाचाथतदातेन वरदोऽस्मीतिचोदितः ।।९३
भगवन् ! भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे ।
अन्नदत्व च ते लोकानां गाणपत्यं तथाऽक्षयम् ।।९४
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा ।
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम् ।।९५
जरा मरणसन्त्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः ।।९६
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः ।
अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालोभविष्यसि ।।९७
महाबलो महासत्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः ।
त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च ।।९८
उद्भ्रमःसम्भ्रमश्चैव गणौतु परिचारकौ ।
तवाज्ञाञ्च करिष्येते लोकस्योद्भ्रमौ ।।९९
एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् ।
जगाम वामदेवेशः सह तेनामरेश्वरः ।।१००

देवों के भी देव ने कहा—मैं पहिले तुझे वरदान देता हूं तथा त्रैलोक्य में दर्शन देता हूं । फिर बिगत ज्वर वाला होकर शरीर की सवर्णता और मुझको देखना ।।९१ ।। श्री सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त उसने वरदान को पाकर अक्षत शरीर से शिव के चरणों में प्रणत होते हुए शिव पर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर वहां पर

स्थित हो गया था फिर उसने उस समय में कहा था कि हे भगवन् ! मैं वर प्राप्त होने वाला हो गया हूं। अब तो आप अपने में अव्यग्र और अनन्य भक्ति मेरी कर देवें तथा लोकों को अन्न का देने वाला एवं उच्क्षय गाणपत्य पद प्रदान कीजिए । ६२, ६३, ६४।। मुझे ऐसा ही बना दीजिये कि मैं सर्वदा आपके अविमुक्त स्थान का दर्शन करता रहूं। हे देवेश्वर ! आप से मैं यही उत्तम वरदान चाहता हूं ।।६५।। देवों के देव ने कहा—जरा (वृद्धता) और मौत इन दोनों से सन्त्यक्त होता हुआ तू सब रोगों से वर्जित रहेगा तथा सबके द्वारा पूजित गणों का अध्यक्ष धनद हो जायगा। योग के ऐश्वर्य का समाश्रय करके सबका तू अजेय होगा और लोकों के लिये अन्न का प्रदान करने वाला क्षेत्रपाल होगा। इसके अतिरिक्त तू महान् बल वाला-महान् सत्व से युक्त-ब्राह्मण्य त्र्यक्ष (तीन नेत्रों वाला)-दण्डपाणि-महायोगी और मेरा प्रिय हो जायगा ।।६६, ६७, ६८।। उद्भ्रम और सम्भ्रम ये दो गण तुम्हारे परिचारक होंगे। लोक के उद्भ्रम और सम्भ्रम तेरी आज्ञा को करेंगे सूत जी ने कहा – इस तरह भगवान् ने उस यक्ष को गणेश्वर बनाकर अमरेश्वर वामदेव उसी के साथ चले गये थे। ।। ६९, १०० ।।

।। वाराणसी क्षेत्रमाहात्म्य ।।

इमांपुण्योद्भवां स्निग्धांकथां पापप्राशिनीम् ।
शृण्वन्तु ऋषयःसर्वेसुविशुद्धास्तपोधनाः ।।१
गणेश्वरपतिं दिव्य रुद्रतुल्यपराक्रमम् ।
सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम् ।।२
ब्रूहि गुह्यं यथा तत्वं यत्र नित्य भव स्थितः ।
माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्मामहेश्वरः ।।३
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः ।
आभूतसंप्लवं यावत् स्थाणुभूतो महेश्वरः ।।४

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम् ।
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ।।५
तता देवेनतुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया ।
कथितं भुविविख्यातं यत्र नित्यं स्वयंस्थितः ।।६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी ।
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ।।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा— सुविशुद्ध—तप के धन वाले सब ऋषिगण आप लोग इस पुण्य से उत्पन्न हुई—पापों के नाश करने वाली अत्यन्त स्निग्ध कथा का श्रवण करिये ।।१।। भगवान् सनत्कुमार ने गणेश्वरों के स्वामी-दिव्य और रुद्र के तुल्य पराक्रम से सम्पन्न नन्दिकेश्वर से पूछा था ।।२।। हे भगवन् ! परम गुह्य तत्त्व जहाँ पर भगवान् नित्य ही स्थित रहा करते हैं—समस्त भूतों का माहात्म्य और परमात्मा महेश्वर देव—दानवों के साथ अतिदुष्कर और परम घोर रूप में समास्थित होकर स्थाणु भूत महेश्वर सब भूतों का संप्लव होता है तब तक रहा करते है । ।।३, ४।। नन्दिकेश्वर ने कहा—पहिले समय में जो परम उत्तम पुराण पुण्य से संयुत देव ने कहा था वही सब मैं अब भगवान् महेश्वर को नमनमस्कार करके कहूंगा ।।५।। इसके अनन्तर परम सन्तुष्ट हुए देव ने उमा के प्रिय की कामना से भूमण्डल में विख्यात को कहा था जहां कि वह स्वयं संस्थित थे ।।६।। रुद्र के अर्द्धासन पर स्थित--मेरु शृङ्ग में संस्थित यशस्विनी देवी महादेव के सामने प्रणत हुई पूछती है ।।७।।

भगवन् ! देवदेवेश ! चन्द्रार्द्धकृतशेखर ! ।
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोद्ध्वरेतसाम् ।।८
जप्तं दत्त हुत चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ।
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम् ।।९
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाचक्ष्व शङ्कर ! ।।१०

यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्र ! ।
व्रतानि नियमाश्चैवआचारो धर्मएवच ॥११
सर्वसिद्धिकरं यत्र:ह्यक्षय्यगतिदायकम् ।
वक्तु मर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ॥१२
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गह्यमुत्तमम् ।
सर्वक्षेत्रेपु विख्यातमविमुक्तं प्रिये मम ॥१३
अष्टषष्टि:पुराप्रोक्तास्थानानांस्थानमुत्तमम् ।
यत्रसाक्षात्स्वयंरुद्र कृत्तिवासा:स्वयंस्थित: ॥१४

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे आधे चन्द्र को शिर में धारण करने वाले ! अ.प कृपया भूमण्डल में मनुष्यों का और ऊर्ध्व रेताओं का धर्म्म बतलाओ ॥८॥ जाप–दान–हवन–इष्ट–तप और किया हुआ ध्यान—अध्ययन आदि यह सभी किस प्रकार से अक्षय होता है जो कभी भी क्षीण ही न होवे ? हे शङ्कर देव ! सहस्रों अन्य जन्मों में पूर्व से ही सञ्चित किया हुआ जो पाप है वह किस प्रकार से क्षय को प्राप्त हुआ करता है–यह सभी आप मुझको बतलाइये ॥९, १०॥ जिसमें विशेष रूप से अवस्थित होकर भक्ति से आप सन्तुष्ट हुआ करते हैं हे परमेश्वर ! उन व्रतों को—नियमों को—आचार को और धम्म को आप बतलाने के योग्य हैं जिसमें अक्षय गति के देने वाला और जो सम्पूर्ण सिद्धियों के करने वाले हों—यह सभी आप मुझे परम अनुग्रह करके बतलाइये । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥११, १२॥ भगवान् महेश्वर ने कहा–हे देवि ! आप सुनिये ! मैं गोपनीय से भी अधिक गोपनीय और उत्तम जो भी है उसे अब तुमको बतला दूंगा । हे प्रिये ! समस्त क्षेत्रों में विख्यात अविमुक्त क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय होता है ॥१३॥ पहिले अड़सठ स्थानों में अत्युत्तम स्थान बतलाये हैं जहां पर कृत्तिका वसन धारण करने वाले साक्षात् स्वय रुद्र स्थित रहा करते हैं ॥१४॥

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम् ।

तत्क्षेत्रं न मयामुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥१५
अविमुक्तेपरा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः ।
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥१६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ॥१७
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ॥१८
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्रा वै वर्णसङ्कराः ।
कृमिम्लेच्छाश्चयेचान्ये सङ्कीर्णाःपापयोनयः ॥१९
कीटाः पिपीलिकाञ्चैव येचान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्तेशृणुप्रिये ! ॥२०
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
शिवे ममपुरे देवि ! जायन्तेतत्र मानवाः ॥२१

जिस अविमुक्त में निरन्तर नित्य ही मैं सन्निहित रहा करता हूं और मेरे द्वारा वह क्षेत्र कभी भी मुक्त नहीं किया जाता है इसीलिये वह अविमुक्त-इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ उस अविमुक्त स्थान में सर्वोत्तम परा सिद्धि होती है और उस अविमुक्त में परागति हुआ करती है। जाप-दान-हुत-चेष्टा-तप्त तपस्या और किया हुआ धर्म्म का कार्य्य-ध्यान-अध्ययन-दानादि यह सभी वहां पर अक्षय होता है। सहस्रों पूर्व में हुए जन्मों में जो भी कुछ पाप कर्म्म सञ्चित हो गया है वह भी सब अविमुक्त नामक मेरे परम प्रिय स्थान में प्रवेश करने वाले पुरुष के सभी कुछ तुरन्त ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। वह सब अग्नि में आहित तूल की ही भाँति अविमुक्त स्थल की अग्नि से दग्ध हो जाया करता है ॥१६, १७, १८॥ ब्राह्मण—क्षत्रिय-वैश्य शूद्र और वर्णसंकर-कृमि —म्लेच्छ और जो अन्य सङ्कीर्ण पाप योनि वाले हैं तथा कीट—पिपीलिका (चींटियाँ) और जो अन्य मृग एवं पक्षिगण हैं हे प्रिये! वे सब

काल से अविमुक्त क्षेत्र में मुत्यु को प्राप्त होते हैं उनके विषय में श्रवण करलो। हे देवि! वे सभी चन्द्रार्ध मौलि वाले—वृषध्वज और ललाट में नेत्र वाले होकर मेरे शिवपुर में मानव होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं ॥१९, २०, २१॥

अकामो वा सकामोवाह्यपितिर्यग्गतोऽपि वा।
अविमुक्तेत्यजन्प्राणान्ममलोकेमहीयते ॥२२
अविमुक्तं यदागच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात्।
अश्मनाचरणौ बद्ध्वा तत्रैवनिधनं व्रजेत् ॥२३
अविमुक्तं गतोदेवि! ननिर्गच्छेत्ततः पुनः।
सोऽपिमत्पदमाप्नोति नात्रकार्याविचारणा ॥२४
वस्त्रप्रदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम्।
गोकर्णं रुद्रकर्णञ्च सुवर्णाक्षं तथैव च ॥२५
अमरञ्च महाकालं तथा कायावरोहणम्।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥२६
कालिञ्जरवनञ्चैव शंकु कर्णं स्थलेश्वरम्।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये ॥
अविमुक्ते वरारोहे! त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः ॥२७॥
हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम्।
जलेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा ॥२८

बिना कामना वाला हो अथवा सकाम हो अथवा तिर्यग् योनि में रहने वाला हो कोई भी कैसा ही हो अविमुक्त क्षेत्र में प्राणों का त्याग करता हुआ फिर मेरे ही लोक में जाकर प्रतिष्ठित हुआ करता है। किसी भी समय में काल के पर्यय से अब भी उस अविमुक्त में चला जावे तो पाषाण से अपने चरणों को बाँधकर वहीं पर निधन को प्राप्त हो जाना चाहिए अर्थात् वहां पहुँच कर फिर उस क्षेत्र को किसी भी तरह से मृत्यु तक नहीं छोड़ना चाहिये ॥२२, २३॥ जो कोई भी किसी भी तरह से

यदि मेरे परम प्रिय अविमुक्त क्षेत्र में एक बार प्राप्त हो जावे तो फिर उससे कभी भी निकल कर नहीं जाना चाहिये। वह पुरुष भी मेरे पद को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥२४॥ वस्त्रप्रद—रुद्र कोटि—सिद्धेश्वर महालय—गोकर्ण—रुद्रकर्ण—सुपर्णाक्ष—अमर—महाकाल—वायावरोहण ये स्थल भी दोनों सन्ध्याओं के सान्निध्य होने से परम पवित्र स्थल हैं ॥२५॥ कालिञ्जर वन—शंकुकर्ण—स्थलेश्वर ये स्थल भी पवित्र है हे प्रिये ! मेरे सान्निध्य होने के कारण से ही ये पवित्र होते हैं। हे वरारोहे ! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य है—इसमें कुछ भी संशय नही है ॥२६, २७॥ हरिश्चन्द्र परम गुह्य है और आम्रातकेश्वर भी गोपनीय है। जलेश्वर गुह्य है तथा श्रीपर्वत भी उसी भाँति गुह्य स्थल होता है ॥२८॥

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।
गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च ॥२९
अष्टावेतानि स्थानानिसान्निध्याद्धि ममप्रिये !।
अविमुक्तेवरारोहे ! त्रिसन्ध्यंनात्रसंशयः ॥३०
यानि स्थानानि श्रूयन्तेत्रिषुलोकेषु सुव्रते !।
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यंसन्निहितानिवै ॥३१
अथोत्तरांकथांदिव्यामविमुक्तस्यशोभने।
स्कन्दोवक्ष्यतिमाहात्म्यमृषीणांभावितात्मनाम् ॥३२

महालय उसी भाँति गुह्य है और कृमि चण्डेश्वर परम शुभ है। गुह्य से भी अधिक गुह्य केदार तथा महाभैरव है ॥२९॥ हे प्रिये ! ये आठ स्थान हे प्रिये ! मेरे ही सान्निध्य से हे वरारोहे ! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३०॥ हे सुव्रते ! तीनों लोकों में जो भी स्थान सुने जाते हैं वे सभी अविमुक्त क्षेत्र के पादों में नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं। इसके अनन्तर दिव्य उत्तर कथा जो कि अवि-

मुक्त की है उसे हे शोभने ! उसको जिसमें भावितात्मा ऋषियों का माहात्म्य है अब स्कन्द बतलायेगा ।।३१, ३२।।

७५–नर्मदामाहात्म्य

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितन्त्वया ।
इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यंवदसत्तम ! ।।१
यत्राङ्कारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य च ।
अमरेशस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम् ।।२
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा ।
मार्कण्डेयश्च भगवान्न विनष्टस्तदा किल ।।
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ।।३
एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना ।
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ।।४
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्था वनवासिना ।
दृष्टः पूर्वां महागाथा धर्मपुत्रेण धीमता ।।५
श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसाद्द्विजोत्तम ! ।
भूयश्चश्रोतुमिच्छामि तन्मे कथयसुव्रत ! ।।६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने ! ।।७

ऋषिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य यथा रीति से कह दिया है अब नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिए ।। १ ।। जिसमें ओङ्कार का माहात्म्य—कपिला सङ्गम का माहात्म्य तथा पापों के नाश करने वाले अमरेश का माहात्म्य कहा जाता है ।।२।। पहिले प्रलय काल में जब सभी विनिष्ट हो जाया करते हैं यह नर्मदा कैसे नष्ट नहीं हुई थी और उस समय में भगवान् मार्कण्डेय भी विनष्ट नहीं हुए थे—यह सभी आपने पूर्वमें वर्णित किया था अब पुनः

इस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आप कृपा कीजिए ।।३।। श्री सूतजी ने कहा—यह ही प्रश्न इसी तरह से महात्मा पाण्डव ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा था जिसमें नर्मदा का माहात्म्य भी था । मार्कण्डेय महामुनि परम उग्र तप से युक्त थे उनसे वन में ही निवास करने वाले धीमान् धर्म्म पुत्र ने पहिली इस महा गाथा को पूछा था ।।४, ५।। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परम उत्तम ! आपके ही प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्म्मों का श्रवण किया था । हे सुव्रत ! अब मैं पुनः उनको ही सुनना चाहता हूँ सो आप मेरे सामने उन्हें कहिए ।।६।। यह महान् पुण्यों वाली नदी सर्वत्र कैसे प्रसिद्ध हुई है ? तथा इसका नर्मदा—यह नाम भी किस प्रकार से हे महामुने ! विख्यात हुआ है—इसे ही आप सर्व प्रथम मुझे बतलाइये ।।७

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणासिनी ।
तारयेत सर्व भूतानि स्थावराणि चराणि च ।।८
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! तत्सर्वं कथयामि ते ।।६
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।।१०
त्रिभिः सारस्वतं तोय सप्ताहेन तु यामुनम्
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ।।११
कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्ये च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ।।१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वा महाराज ! सिद्धिश्च परमाङ्गता ।।१३
तत्र स्नात्वानरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छताम् ।।१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ है

और सम्पूर्ण पापों का विनाश कर देने वाली है । यह सभी स्थावर तथा चर प्राणियों का तारण कर दिया करती है । नर्मदा नदी का माहात्म्य जो कि मैंने पुराणों में श्रवण किया है हे महाराज ! इसका सम्पूर्ण माहाम्य अब मैं आपसे कहता हूँ ।।८।।९।। गङ्गा कनखल में—सरस्वती कुरुक्षेत्र में—पुण्यमयी हैं किन्तु नर्मदा ग्राम तथा अरण्य में सर्वत्र परम पुण्यमयी होती हैं ।।१०।। सरस्वती का जल तीन दिन में—यमुना का जल एक सप्ताह में और गङ्गा भागीरथी का जल तुरन्त पान करते ही मनुष्य को पवित्र कर उसके पापों का नाश कर देता है किन्तु नर्मदा के जलके तो दर्शन मात्र से ही पापों का विनाश हो जाया करता है ।।११।। कलिङ्ग देश में पीछे के अर्द्ध भाग में अमर कण्टक पर्वत में जो कि परम पुण्यमय है तथा तीनों लोकों में यह नर्मदा अतीव मनोरम और रमणीय है ।।१२।। हे महाराज ! देव—गन्धर्व—असुर और तप के ही धन वाले ऋषिगण यहां पर तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं । उसमें स्नान करके हे राजन् ! नियमों से संस्थित तथा इन्द्रियों को जीतने वाला एक रात्रि में ही निवास करके अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है ।।१३।।१४।।

जलेश्वरे नरः न्सात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ।।१५
पर्वतस्य समन्तांत्तु रुद्रिकोटिः प्रतिष्ठिता ।
स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनं ।।१६
प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः ।
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः ।।१७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पितृकार्यश्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ।।१८
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः ।
आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।।१९

पष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
अप्सरोगणसंकीर्णो सिद्धचारण सेविते ।।२०
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कार भूषितः ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ।।२१

जलेश्वर में मनुष्य स्नान करके विधि पूर्वक पिण्डदान करके पितृगण भूतों के संप्वल पर्य्यन्त संतृप्त रहा करते हैं ।।१५।। पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है वहाँ पर स्नान करके जो कोई गन्ध माल्यों और अनुलेपनों से अभ्यर्चन किया करता है उससे रुद्र कोटि शर्व परम प्रसन्न होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । पर्वत के अन्त में पश्चिम में स्वयं महेश्वर देव समवस्थित रहा करते हैं ।।१६।।१७।। वहां पर स्नान करके और परम शुचि होकर ब्रह्मचर्य से रहने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को इन्द्रियों को नियत रखते हुए -विधि पूर्वक पितृ कार्य्य करना चाहिए ।। १८ ।। वहीं पर तिलोदक के द्वारा पितृ देवताओं का तर्पण करना चाहिये । हे पाण्डव ! उसके सात कुल तक स्वर्ग में आनन्द पूर्ण निवास किया करते हैं ।।१९।। अप्सराओं के गणों से सेवित एवं संकीर्ण तथा सिद्धों एवं चारणों से निषेवित स्वर्ग लोक में वह साठ हजार वर्ष पर्य्यन्त प्रतिष्ठित रहा तरता है ।। २० ।। दिव्य गन्धों से अनुलिप्त एवम् दिव्य आभरणों से विभूषित वह स्वर्गीय सुख भोग करके जब वहां से परिभ्रष्ट होता है तो इस भूमण्ड में किसी बड़े श्री सम्पन्न कुल में जन्म ग्रहण किया करता है ।।२१।।

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ।।२२
कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शत साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।।२३
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च ।। २४

सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठतेऽमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥२५
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितेक्रोधो परित्यजेत् ॥२६
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतवर्षसहस्राणांस्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ॥२७
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ॥२८
क्रीडते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ॥२९

वह यहां पृथ्वी तल में समुत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी—दान करने के स्वभाव वाला और धार्म्मिक हुआ करता है । वह फिर उसी तीर्थ का स्मरण करता है और वहां पर गमन करना उसे अच्छा लगता है । वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और वह रुद्र लोक में चला जाता है । यह उत्तम सरित् डेढ़ सौ योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है ॥२२, २३॥ हे राजेन्द्र ! यह दो योजन विस्तार से आयत है । साठ सहस्र तीर्थ तथा साठ करोड़ तीर्थ उसके चारों ओर अमर कण्टक में स्थित हैं । जो कोई ब्रह्मचर्य पालन करने वाला—परम शुचि—क्रोध को जीतने वाला और इन्द्रियों को वश में रखने वाला होकर सभी प्रकार की हिंसा से निवृत्त—समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला भगवान् शर्व में ही समाचरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग किया करता है हे राजन् ! उसके होने वाले पुण्यों के फल को तुम परम सावधान होकर श्रवण करो । हे पाण्डव ! वह पुरुष सौ सहस्र वर्ष तक स्वर्ग में आनन्दित जीवन यापन किया करता है ॥२४, २५, २६, २७॥ अप्सराओं के गणों से समाकुल सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित स्वर्ग में दिव्यगन्ध से अनुलिप्त एवं दिव्य पुष्पों से उपशोभित होता हुआ देव लोक में स्थित

होकर देवगणों के साथ क्रीड़ा और आनन्द किया करता है फिर उस स्वर्ग से जब परिभ्रष्ट होता है तो परम बल—वीर्य वाला राजा होता है। ॥२८, २९॥

गृहन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम् ।
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ॥३०
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।
मत्तमातङ्गमब्दैश्च हयानां हेषितेन च ॥३१
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारं इन्द्रस्य भवनं यथा ।
राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥३२
तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीड़ाभोगसमन्विते ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥३३
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके ।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ॥३४
अनिर्वर्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप ! ॥३५

उस को यहां पर गृह भी अनेक रत्नों से समलंकृत—हीरा और वैदूर्य मणियों से परिपूर्ण, दिव्य स्तम्भों से समन्वित—आलेख्यों से चित्रित—दास और दासियों से संयुत था। प्रमत्त हाथियों के चिंघाड़ों से तथा अश्वों की हिनहिनाटों से उसके गृह का द्वार इन्द्र के भवन की भाँति क्षुब्ध रहा करता था। उस घर में श्री सम्पन्न सब स्त्री जनों का वल्लभ वह राज राजेश्वर निवास किया करता है जो पूर्ण क्रीड़ा और भोगों से युक्त था। वहां पर सभी प्रकार के रोगों से रहित होकर वह डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित रहता है। जो कोई पुरुष उस अमर कण्टक में मृत्यु को प्राप्त होता है उसे इसी प्रकार के भोगों के उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है। जो अग्नि में—विषजल में तथा अनाशक में हे नराधिप ! अमरेश में पतन किया करता है उसकी अम्बर में पवन की भाँति अनिवर्त्तिका गति हुआ करती है ॥३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५॥

कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे ।
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च ।।३६
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीड़ते कालमक्षयम् ।
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिताः ।।३७
स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
प्रीतःसोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्नसंशयः ।।३८
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्ययं देवो महेश्वरः ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारोजितेन्द्रियः ।।३९
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः ।
तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवताः ।।४०
आसप्तमं कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।४१
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ।।४२

तीन सहस्र कन्याऐं और एक-एक की दूसरे उसके भुवन में स्थित रहती हैं एवं प्रेषण को प्रार्थनाऐं किया करती हैं। इस प्रकार से परम दिव्य भोगों से सुसम्पन्न होकर वह अक्षय काल पर्यन्त क्रीड़ा करता है। उस पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित हैं। जो पुरुष वहा पर स्नान किया करता है और दिव्य गन्धों के अनुलेपनों से संयुत होता है उस पर वह सम्पूर्ण रुद्र कोटि परम प्रसन्न होता है—इसमें तनिक भी सशय नहीं है ।।३६, ३७, ३८।। इस पर्वत के पश्चिमीय अन्त भाग में यह महेश्वर देव स्वयं विराजमान हैं। वहां पर स्नान करके और शुचि होकर—ब्रह्मचारी एवं इन्द्रिय जीत रहकर जो नियत इन्द्रियों वाला अपने पितृगण के अभ्यर्चन—तर्पण आदि का विधि के साथ कार्य किया करता है और तिलों के सहित उदक से विधि पूर्वक पितृ देवताओं का तर्पण करता है हे पाण्डव ! उसके सात कुलों तक के सब लोग स्वर्ग का आनन्द निवास

प्राप्त करते हैं और साठ हजार वर्ष तक वे नल और स्वयं वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित पद पर समारूढ रहता है फिर स्वर्गीय सुखोपभोग की अवधि समाप्त होने पर वहां से परिभ्रष्ट होकर दिव्यगन्ध से समनुलिप्त तथा परम दिव्य आभूषणों से परिष्कृत होकर यहाँ किसी बहुत बड़े कुल में समुत्पन्न हुआ करता है ।।३९, ४०, ४१, ४२।।

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तीर्थार्थं गमनं तत्र रोचते ।।४३
तारयेत्तु कुलान् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।।४४
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्य स्तथैव च ॥४५
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।।४६
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
एवं शर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।।४७
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गमोदेतपाण्डव ! ।।४८
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते ।
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ ! पर्वतेऽमरकण्टके ।।४९

वह यहां पर उत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी—दाता धार्म्मिक होता है और फिर भी वह उसी तीर्थ का स्मरण किया करता है तथा वहीं पर गमन करने की उसकी रुचि रहती है ! वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और अन्त में रुद्र लोक को चला जाता है । यह उत्तम सरिता सौ और पचास योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है ।।४३, ४४ ।। हे राजेन्द्र यह दो योजन के विस्तृत आयत वाली है। अमर कण्टक में उसके चारों ओर बहुत तीर्थ हैं जिनकी सख्या साठ हजार तथा साठ करोड़

बताई जाती है । वहां पर ब्रह्मचारी—शुचि—जितक्रोध—जितेन्द्रिय—सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त—सबभूतों के हित में रत और शिव में समाचरण करने वाला जो अपने प्राणों का त्याग करता है हे राजन्!! उस का जो परम महान् पुण्य-फल हुआ करता है उसे अवहित होकर सुन लो । हे पाण्डव!! वह पुरुष एक सौ सहस्र वर्ष पर्य्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है समुद्र पर्यन्त पृथ्वी में इस प्रकार का कोई भी उत्पन्न नहीं होता है, हे नृप श्रेष्ठ!! जैसा यह अमरकण्टक पर्वत में हुआ करता है ।। ४५, ४६, ४७, ४८, ४९।।

तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे ।।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।५०
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा ।
पितरो दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै ।।५१
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी ।
सकलार्जुनसंछन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ।।५२
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ।।५३
पुराणे श्रूयते राजन्!! सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।।५४
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा ।।५५
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् ।।
तत्र देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ।।५६
यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ।।५७

उस पर्वत के पश्चिम भाग में उस तीर्थ को जान लेना चाहिये जिस का जलेश्वर ह्रद है और यह तीनों लोकों में बहुत ही विख्यात है ।।५०।।

वहां पर पिण्डों का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपासना के कर्म्म से पितृगण दशवर्षों तक परम तृप्त रहा करते हैं। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर कपिला नाम वाली एक महानदी है। वह सम्पूर्ण अर्जुन के वृक्षों से संच्छन्न रहने वाली है और वह उससे अधिक दूर में व्यवस्थित नहीं है अर्थात् बहुत ही समीप में ही है ॥५१, ५२॥ वह नदी भी अति पुण्यमयी और महाभागा है तथा लोकों में बहुत प्रसिद्ध भी है। हे युधिष्ठिर! वहां पर डेढ़ सौ करोड़ तीर्थ हैं ॥५३॥ हे राजन्! पुराण में यह श्रवण किया जाता है कि सब कोटि गुण वाला होता है। उस के तट पर जो वृक्ष काल के विपर्यय से पतित हो गये हैं और नर्मदा नदी के जल से जिनका संस्पर्श हो गया है वे जड़ भी परमोत्तम गति को प्राप्त किया करते हैं। दूसरी एक नदी परम शुभ महाभागा व शल्य करणी है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके क्षणमात्र में ही विगत शल्य वाला हो जाया करता है। वहां पर उस अमरकण्टक पर्वत में समस्त देवगण – किन्नर — महोरग — यक्ष – राक्षस — गन्धर्व और तप के ही धन वाले ऋषि वृन्द समागत होते हैं ॥५४, ५५, ५६, ५७॥

तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।
नर्मदामाश्रिता पुण्या त्रिशल्यानाम नामतः ॥५८

उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्! ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥५९
उपोष्य रजनीमेकांकुलानान्तारयेच्छतम्।
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम! ॥६०
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तो लोकानां हितकाम्यया।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलंलभेत् ॥६१
अनाशकन्तु यःकुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप!।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २

नर्मदायास्तु राजेन्द्र ! पुराणेयन्मया श्रुतम् ।
यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलंलभेत् ।।६३

इन सबने जो तपोधन मुनिगण थे वहां पर एकत्रित होकर नर्मदा नदी का समाश्रय प्राप्त किया था तथा विशल्या नाम वाली पुण्यमयी नदी को समुत्पादित किया था। जो महान् भाग वाली और सभी प्रकार के पापों का विनाश करने वाली थी। हे राजन् ! उसमें मनुष्य स्नान करके जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी रहकर एक रात्रि में वहां पर निवास करता है तो वह अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है। हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! कपिला और विशल्या इनके विषय में सुना जाता है कि प्राचीन काल में ईश्वर ने लोकों के हित की कामना से ही इनको कहा था। हे राजन् ! वहां पर स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ।।५८।५९।६०।६१।६२।६३।।

ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ।
सरस्वत्याञ्च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ! ।।६४
समं स्नान च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।
परित्यजतियः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ।।६५
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ।
नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिभिरलङ्कृतम् ।।६६
पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
नर्मदा पर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी । ६७
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
एव रम्या च पुण्या नमदा पाण्डुनन्दन ! । ६८
त्रयाणामपि लोकानां पुण्या ह्येषा महानदी ।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने । ६९
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः संशितव्रताः ।
श्रुत्वा दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसङ्गमे ।।७०

जो लोग इसके उत्तर दिशा वाले तट पर निवास किया करते हैं वे अन्त में जाकर रुद्रलोक में वास पाते हैं। हे युधिष्ठिर ! सरस्वती में—गङ्गा में और नर्मदा में स्नान और दान सम होता है जैसा कि भगवान् शङ्कर ने मुझे बतलाया था। जो अमरकण्टक पर्वत में अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह डेढ़ सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। नर्मदा महानदी का जल परम पुण्यमय है और फेनकी उर्मियों से समलंकृत है। यह परम पवित्र है तथा शिर से वन्दना करने के योग्य है इसके जल का स्पर्श करके ही मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है। नर्मदा पर्वतपुण्या है और ब्रह्महत्या के महा पातक का हरण करने वाली है। एक अहोरात्र वहाँ पर स्थित रहकर उपवास करने से ब्रह्म हत्या से छुटकारा हो जाया करता है। हे पाण्डु नन्दन ! इस प्रकार से यह नर्मदा रम्य और पुण्य शालिनी महानदी है ॥६४।६५।६६।६७॥ ॥६८॥ यह तीनों लोकों में परम पुण्य शालिनी महानदी है जो वरेश्वर में—महापुण्य मय गङ्गा द्वार में और तपोवन में इन स्थानों में द्विजगण संशित व्रतों वाले होते हैं उनके उस पुण्य से दश गुना अधिक पुण्य नर्मदा और उदधि के सङ्गम में सुना गया है ॥६९, ७०॥

७६—नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! ह्यङ्कुशेखरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्मदेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! स्वर्गलोकेमहीयते ॥२
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्चभोगवान् जायतेनरः ॥३

पितामहं ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्तया पितृपिण्डन्तु दापयेत् ॥४
तिलदर्भविमिश्रन्तु ह्युदकं तत्र दापयेत् ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ॥६
मनोहरं ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! पितृलोकेमहीयते ॥७

महामुनि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर उत्तम अंकुशेश्वर पर जाना चाहिए । वहाँ पर उन देव के दर्शन से ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥ १ ॥ इसके उपरान्त फिर हे राजेन्द्र ! उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में गमन करे । हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में एक परम प्रतिष्ठित पद पर समारूढ़ हुआ करता है ॥ २ ॥ फिर अश्वतीर्थ को गमन करना चाहिये और वहाँ पर पहुँच कर स्नान करे । इसका ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य परम सुभग दर्शनीय और भोगों के करने वाला हुआ करता है । इसके पीछे पितामह नाम वाले तीर्थ पर जावे जिसको पहिले ब्रह्माजी ने निर्मित किया था । वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके भक्ति-भाव से पितृगणों को पिण्डदान करना चाहिए ॥ ३ । ४ ॥ तिलों और डाभों से मिश्रित जल भी तर्पण के लिये पितृगणों को देवे । उस तीर्थ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि वहाँ पर किया सभी अक्षय हो जाया करता है ॥ ५ ॥ सावित्री तीर्थ पर पहुँच कर जो भी व्यक्ति उसमें स्नान किया करता है वह अपने समस्त पापों को विधूनित करके अन्त में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है । फिर मनोहर नामक तीर्थ पर गमन करे जो कि एक परम शोभन तीर्थ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मानव रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ ६ । ७ ॥

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वानरा राजन् ! रुद्रलोके महीयते ।।८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कुब्जतीर्थमनुत्तमम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ।।६
यान्यान्कामयतेकामान् पशुपुत्रधनानिच ।
प्राप्नुयात्तानिसर्वाणि तत्र स्नात्वानराधिप ।।१०
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! त्रिदशज्योतिविश्रुतम् ।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः ।।११
भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः ।
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः ॥१२
विकृताननीवभत्सुव्रंती तीथमुपागतः ।
तत्र कन्यां महाराज ! वरयन् परमेश्वरः ।।१३
कन्यां ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् ।
तीर्थं तत्र महाराज ! ऋषिकन्येति विश्रुतम् ।।१४

इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! उत्तम मानस तीर्थ पर गमन करना चाहिए। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है। फिर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कुब्जतीर्थ में गमन करे जो सभी लोकों में अत्यधिक विख्यात है और सब प्रकार के पापों के विनाश करने वाला है। उस तीर्थ पर जो—जो भी कामनाओं के प्राप्त करने की इच्छा करता हे जैसे पुत्र–पशु और धन आदि उन सभी का प्राप्ति हे नराधिप वहाँ पर स्नान करके प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! त्रिदश ज्योति विश्रुत नाम वाले तीर्थ पर जाना चाहिये जहाँ पर वे ऋषि कन्याऐं सुन्दर व्रतों वाली होकर तपश्चर्या करती थीं ।। ८। ६। १०। ११ ।। उन कन्याओं का यही मनोरथ था कि हम सबका भर्त्ता अविनाशी प्रभु ईश्वर होवें। उनकी तपस्या से दण्डरूप के धारण करने वाले हर महादेव परम प्रसन्न हो गये थे। वह देवेश्वर विकृत मुख वाले

वीभत्सु व्रती उस तीर्थ पर समागत हुए थे। वहाँ पर हे महाराज ! परमेश्वर ने उन कन्याओं का वरण किया था। कन्या का वरण करने को ऋषियों ने कन्यादान दी। हे महाराज ! ऋषि कन्या इस नाम वाला एक प्रसिद्ध तीर्थ था ॥१२-१४॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! स्वर्णनिन्दुत्विति स्मृतम् ॥१५
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! दुर्गतिं न च पश्यति ।
अप्सरेश ततो गच्छेत् स्नान तत्र समाचरेत् ॥१६
क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरैः सह मोदते ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! नरकं तीर्थमुत्तमम् ॥१७
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं च न पश्यति ।
भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः ॥१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम् ।
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते ॥१९
अस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्वाभारभूतौ महात्मनः ।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवंगाणेश्वरीगतिः ॥२०
कर्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम् ।
अश्वमेधाद्दशगुण प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२१

हे राजन् ! उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् स्वर्ण विन्दु इस नाम से विश्रुत तीर्थ में जाना चाहिये ॥१५॥ हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य दुर्गति को कभी भी नहीं देखता है। इसके अनन्तर अप्सरेश नामक तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान कर समाचरण करना चाहिए ॥ १६ ॥ इस तीर्थ के स्नान का यह फल होता है कि वह नागलोक में समवस्थित होकर अप्सराओं के साथ आनन्दानुभव किया करता है। हे राजेन्द्र ! फिर वहाँ से नरक नामक उत्तम तीर्थ में गमन

करे ॥ उस तीर्थ में स्नान करके देव का अभ्यर्चन करे तो वह मनुष्य कभी भी नरक को नहीं देखता है। इसके अनन्तर भारभूति नामा वाले तीर्थ पर जावे और उपवास में परायण होवे ॥ १७ । १८ ॥ फिर इसके उपरान्त ऋचावतार शाम्भव तीर्थ का समासादन करे तथा वहाँ पर भगवान् विष्णु का अर्चन करने से वह मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥ १९ ॥ इस तीर्थ में जिसका नाम भारभूति है स्नान करके जहाँ-तहाँ मृत हुए महात्मा की भी निश्चय ही गणेश्वरी (गणेश सम्बन्धिनी) गति हुआ करती है। कार्त्तिक मास में महेश्वर का समर्चन करके अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से दशगुना फल प्राप्त हुआ करता है—ऐसा महामनीषी लोग कहा करते हैं ॥ २० । २१ ॥

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णन्तु दापयेत् ।
विमानैः सूर्य्यसङ्काशव्रजते यत्र शङ्करः ॥२२
वृषभं यः प्रयच्छेत्तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृशयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥२३
धेनुमेकान्तु यो दद्यात्तस्मिस्तीर्थे नराधिप ! ।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणिविविधानि च ॥२४
यथाशक्त्याचराजेन्द्र ! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
तस्य तीर्थप्रभावेणसर्वं कोटिगुणंभवेत् ॥२५
नर्म्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिञ्चनपश्यतितस्मिस्तीर्थेनराधिप ! ॥२६
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोक स गच्छति ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥२७
गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत् स्वर्गेमहीयते ।
अनाशकन्तुयः कुर्यात्तस्मिस्तीर्थेनराधिप ॥२८
गर्भवाये तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते पुमान् ।
ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र ! आषाढीतीर्थमुत्तमम् ॥२९

तत्र स्नात्वा वसे राजन्निन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ।।३०

वहाँ पर एक सौ दीपकों को घृत से पूर्ण करके प्रज्वलित करे और उनका दान करे। वह पुरुष जहाँ भगवान् शङ्कर होते हैं सूर्य्य के सदृश विमानों के द्वारा गमन किया करता है ।। २२ ।। जो आदमी, शंख-कुन्द और इन्दु के समान प्रभा से सम्पन्न वहाँ पर वृषभ का दान किया करता है वह वृष से समन्वित यान के द्वारा रुद्रलोक में गमन किया करता है ।। २३ ।। हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई एक धेनु का दान किया करता है—मधु से संयुक्त पायस और अनेक प्रकार के भक्ष्यों को यथा शक्ति हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणों के लिये भोजन कराता है। उस तीर्थ के प्रभाव से यह सभी करोड़ गुना फल वाला होता है ।। २४।२५।। हे नराधिप ! नर्मदा के जल का पान करके और वृषध्वज का अभ्यर्चन करके उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति को नहीं देखता है। वह मनुष्य हंस से युक्त यान के द्वारा सीधा रुद्रलोक को चला जाता है। जब तक चन्द्र—सूर्य्य—हिमवान्—महोदधि और गङ्गा आदि सरिताऐं संसार में स्थित हैं तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। हे राजेन्द्र ! गर्भ के वास को फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! आम आषाढ़ी तीर्थ में गमन करना चाहिए। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य इन्द्र के आधे आसन पर अपनी संस्थिति प्राप्त किया करता है। इसके पीछे स्त्री के तीर्थ में गमन करे जो सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ।।२६=३०।।

तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ।
ऐरण्डीनर्म्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम् ।।३१
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः ।।३२

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसङ्गमम् ।।३३
जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धोयत्र जनार्दनः ।
यत्रेष्ट्वा वहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत ।।३४
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसङ्गमे ।
त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलप्राप्नोतिमानवः ।।३५

वहाँ पर भी केवल स्नान भर कर लेने वाले की निश्चय ही गाणेश्वरी गति हुआ करती है । ऐरण्डी और नर्म्मदा इन दोनों सरिताओं का सङ्गम लोक में परम प्रसिद्ध है । वह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और समस्त पापों के नाश करने वाला भी है । वहाँ पर उपवास में परायण होकर तथा नित्य ही व्रतों में तत्पर होकर वहाँ स्नान करके हे राजेन्द्र ! मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! नर्मदा और उदधि का जहाँ सङ्गम होता है वहाँ जाना चाहिए । वहाँ जाने वाला मानव अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ।। ३१–३५ ।।

पश्चिमस्योदधेः सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ।।३६
आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरोराजन् ! रुद्रलोकेमहीयते ।।३७
विमलेश परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ।।३८
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा यान्त्यमरालयम् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ।।३९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः ।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ।।४०

एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ।।४१
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्ते संस्थितः शिवः ।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ।।४२

पश्चिमोदाद्य की सन्धि में स्वर्ग द्वार विघट्टन है । वहाँ पर देवगण—गन्धर्व—ऋषिवृन्द—सिद्ध और चारण ये सब तीनों सन्ध्याओं में विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । यह विमलेश परम प्रमुख तीर्थ है जो न हुआ और न होगा । वहाँ पर उपवास करके जो भगवान् विमलेश्वर का दर्शन किया करते हैं वे सब अपने पहिले जन्मों में सात जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर सीधे अन्त समय अमरालय को चले जाया करते हैं। इसके पीछे हे राजेन्द्र ! उत्तम कौशिकी तीर्थ में गमन करे ।। ३६ । ३७ । ३८ । ३९ ।। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके उपवासों में परायण होवे और एक रात्रि में वहाँ निवास करके नियत अशन वाला तथा नियत जो रहता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाया करता है। जो मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिषेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है। योजन के अभ्यन्तर में आवर्त्त में प्रभु शिव स्थित रहते हुए वहाँ पर समवस्थित रहते हैं। उसका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके उस दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा हुआ ही समझ लेना चाहिये अर्थात् उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।। ४०–४२ ।।

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।
नर्म्मदासङ्गमं यावद्यावश्चामरकण्टकम् ।।४३
क्षत्रान्तरे महाराज ! तीर्थकोट्यो दशस्मृताः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्रऋषिकोटिनिषेवितम् ।।४४

साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः ।
सेवितानेन राजेन्द्र ! त्वभीप्सितार्थप्रदायिका ।।४५
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भावतः ।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ! ।।४६
नर्म्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः ।
प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः ।।४७
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।
कन्या लभेत भर्त्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ।।४८
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।।४९
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥
नरकञ्च न पश्येत्तु वियोगञ्च न गच्छति ।।५०।।

वह पुरुष सभी पापों से छुटकारा पाकर वहां पर ही चला जाता है जहाँ पर साक्षात् भगवान् रुद्र विराजमान रहा करते हैं और वहां पर वह तब तक रहता है जब तक नर्मदा का सङ्गम और अमरकण्टक संसार में स्थित है ।।४३।। इसी बीच में हे महाराज ! दश तीर्थ कोटियां बताई गई हैं। तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जहां पर ऋषि कोटि निषेवित है । अग्निहोत्र करने वाले—ध्यान में परायण समस्त विद्वानों के द्वारा सेवित हुए इससे हे राजेन्द्र ! यह अभीष्ट अर्थ की प्रदान करने वाली हुआ करती है ।।४४, ४५।। हे पाण्डव ! जो तीर्थों के माहात्म्य का नित्य ही पाठ किया करता है तथा इसका भक्तिभाव से श्रवण किया करता है उसका सभी तीर्थ समवेत अभिषेक किया करते हैं ।।४६।। यह नर्मदा सरिता सर्वदा उस पर परम प्रसन्न होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस पर रुद्र देव भी प्रसन्न होते हैं तथा महामुनि मार्कण्डेय भी प्रसन्न हुआ करते हैं । इसके पठन एवं श्रवण से वन्ध्या स्त्री पुत्रों का लाभ लिया करती है

और जो दुर्भगा होती है वह सुभगा होजाया करती है। जो कन्या होती है मनोभीष्ट स्वामी की प्राप्ति कर लेती है और जो भी कोई जैसा भी कुछ फल चाहता है वह उसी समय में तुरन्त ही सब कुछ पा जाया करता है— इस विषय में कुछ भी विचारण (व्यर्था) करने की आवश्यकता ही नहीं है। जो ब्राह्मण होता है उसको वेद के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह सदा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला होता है। वैश्य अपने व्यवसाय में लाभन्वित होता है तथा शूद्र की सद्‌गति हो जाया करती है। जो महामूढ होता है उसे विद्या का लाभ होता है। जो नर इसका तीनों सन्ध्याओं में पाठ किया करता है वह कभी भी नरक का दर्शन नहीं किया करता है और न कभी किसी से उस का वियोग ही हुआ करता है। ॥४७, ४८, ४९, ५०॥

७७-भृगु वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओङ्कारस्याभिवर्णनम् ।
ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे ॥१
ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा ।
प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद ॥२
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवान्तरे ।
तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्तय ॥३
दाक्षायणीनंच तथा प्रजाः कीर्तय मे प्रभो ।
ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम् ॥४
मन्वन्तरेऽस्मिन् संप्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा ।
चरित्रं कथ्यते राजन् ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ।
ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ॥६

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ।
स्कन्नशुक्रं महाराज ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से इस ओङ्कार के अभिवर्णन का श्रवण करके फिर इसके उपरान्त उस मत्स्य के स्वरूप वाले देवेश्वर से उस जलार्णव में पूछा गया था। श्री मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! अब ऋषियों के शुभ नाम तथा गोत्र—वंशों का अवतरण एवं प्रवरों की समता और असम्यता आप कृपा करके विस्तार के साथ वर्णन कीजिएगा ।।१, २।। स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव जी के द्वारा ऋषियों को शाप दे दिया गया था वैवस्वत प्राप्त होने पर उनका भी सम्भव आप मुझे कीर्त्तित करके श्रवण कराइये ।।३।। हे प्रभो ! आप मेरे सामने दाक्षायणी (दक्ष प्रजापति से समुत्पन्न) जो प्रजा हुई थी उसका भी वर्णन करिये तथा ऋषियों का वंश एव भृगु के वंश की विशेष वृद्धि भी बतलाइये ।।४।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! पहिले इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो चरित्र है वह कहा जाता है। महादेव जी के शाप से स्वयं ही देह का त्याग करके महात्मा के शुक्र के च्युत हो जाने पर ऋषिगण समुत्पन्न हुए थे। देवों की मातायें देख कर उसी भाँति देव पत्नियाँ भी समुत्पन्न हुई थीं हे महाराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का शुक्र (वीर्य) स्कन्न हो गया था। ।।५, ६, ७।।

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ।।८
अङ्गारेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च ।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः ।।९
केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः ।
केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततोजातोमहातपाः ।।१०
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः ।

भृगुःपुलोम्नस्तुसुतांदिव्यांभार्यामविन्दत ।।११
यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकाः ।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ।।१२
शुचिक्रतुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह !
प्रभवश्चाऽव्ययश्चैव दक्षोऽथद्वादशस्तथा ।।१३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।
पौलोम्यांजनयन् विप्रान्देवानांतुकनीयसः ।।१४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने हवन किया था फिर हुताशन से उत्पत्ति हुई थी। इसके उपरान्त महान् तेज वाले तपों की निधि भृगुदेव समुत्पन्न हुए थे ।।८।। अङ्गारों में अङ्गिरा उत्पन्न हुए और हुताशन की अर्चियों से अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी और इसके अनन्तर मरीचियों से महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे ।।९।। केशों से कपिश और महान् तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। पुलम्ब केशों से फिर महान् तपस्वी पुलह समुत्पन्न हुए ।।१०।। वसु के मध्य से तप के ही धन वाले वसिष्ठ ऋषि प्रसूत हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पुत्री को अपनी दिव्य भार्य्या बनाई थी ।।११।। इसी भार्य्या में उस महर्षि के द्वादश याज्ञिक सुत उत्पन्न हुए थे। उन बारह सुतों के नाम ये हैं—भुवन—भौवन-सुजन्य—सुजन-शुचि क्रतु—मूर्द्धा—त्याज्य—वसुद—प्रभव—अव्यय और दक्ष ये द्वादश हैं। ये सब भृगु वंश वाले बारह देव कीर्त्तित हुए थे जो पौलोमी में देवों के छोटे भाई विप्रों को जन्म ग्रहण कराया था ।।१२, १३, १४।।

च्यवनन्तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च ।
आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ।।१५
और्वो गोत्रकरेस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।
तत्र गोत्रकरास्त्वन्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ।।१६
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः ।।१७

वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः ।
शौनकायन जीवन्ति रावेदःकार्पणिस्तथा ।।१८
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च ।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्चसः ।।१९
विष्णुःपौरोऽपि वालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः ।
भृतभार्गेयमार्कण्डजविनो वीतिनस्तथा ।।२०
मण्डमाण्डव्यमण्डूकफेनपास्तनितस्तथा ।
स्थलपिण्डःशिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैवच ।।२१

महाभाग च्यवन तथा आप्नुवान् उत्पन्न हुए । आप्नुवान का आत्मज और्व हुआ और उसका पुत्र जमदग्नि हुआ था । उन महान् आत्मा वाले भार्गवों के गोत्र के करने वाला और्व हुआ था तथा अन्य भी दीप्त-तेज वाले भृगु के गोत्रकर हुए थे ।।१५, १६।। अब उन सब के नामों का उल्लेख किया जाता है—भृगु—च्यवन—आप्नुवान—और्व—जमदग्नि—वात्स्य—दण्डि—नडायन—वैगायन—वीति हव्य—शौनकायन—जीवन्ति—अविद—कार्पणि—वैहीनरि—विरूपाक्ष—रौहित्यायनि—वैश्वानरि—नील—लुब्ध—सावर्णिक—विष्णु—पौर—वालाकि—ऐलिक—अनन्त भागिन—भृत—भार्गेय—मार्कण्ड—जविन—वीतिन—मण्ड—माण्डव्य—माण्डूक—फेनप—स्तनित—स्थल पिण्ड—शिखावर्ण और शार्कराक्षि ।।१७।१८।१९।२०।२१।।

जालधिः सौधिकः क्षुभ्यः कुत्सन्यो मौद्गलायनः ।
कर्मायनो देवपतिः पाण्डुरोचिः सगालवः ।।२२
साङ्कृत्यश्चातकिः सार्पियज्ञपिण्डायनस्तथा ।
गार्ग्यायनो गायनश्च ऋषिगार्ह्यायनस्तथा ।।२३
गोष्ठायनो वात्यायनो वैशम्पायन एव च ।
वैकर्णिनिः शाङ्करवो याज्ञेयिर्भ्राष्ट्रकायनिः ।।२४
लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ ।

आलुकिः सौचकिः कौत्सस्तथान्यः पैङ्गलायनिः ॥२५
सात्यायनिर्मालायनिः कौटिलिः कौचहस्तिकः।
सौहसोक्तिः सकौवाक्षिः कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ॥२६
नैकजिह्वो जिह्मकश्च व्यधाद्यो लोहवैरिणः।
शारद्वतिकनेतिष्यौलोलाक्षिश्चलकुण्डलः ॥२७
वागायनिश्चानुमतिः पूर्णिमागतिकोऽसकृत्।
सामान्येन यथा तेषां पञ्चैते प्रवरामताः ॥२८

जालधि–सौधिक–क्षुभ्य–कुत्सन्य–मौद्गलायन–कर्मायन–देवपति–पाण्डरोचि–सग्गलव–सांकृत्य–चातकि–सार्पि—यज्ञपिण्डायन–गर्ग्यायन—गायन–ऋषि–गार्हायन–गोष्ठायन–वात्सायन – वैशम्पायन––वैकर्णिनि—शाङ्करव––याज्ञेयि–भ्राष्ट्र कायनि–लालाटि–नाकुलि–लौक्षिण्य–परिमण्डल आलुकि–सौचकि–कौत्स–पैङ्गलायनि–सात्यायनि––मालायनि–कौटिलि–कौच हस्तिक–सौहसोक्ति––सकौवाक्षि––कौसि—चान्द्रमसि—नैकजिह्व–जिह्मक–व्यधाद्य–लौहवैरिण–शारद्वतिकन–तिष्य–लोलाक्षि–चल कुण्डल–वागायनि—अनुमति—पूर्णिमा गतिक ये सब सामान्य रूप से थे। इसमें पाँच सब में प्रवर माने गये हैं ॥२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८॥

भृगुश्च च्यवनश्चव आप्नुवानस्तथैव च।
औवश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मताः ॥२९
अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहान्।
जमदग्निर्विदश्चव पौलस्त्या वैजभृत्तथा ॥३०
ऋषिश्चभयजातश्च कार्यानिः शाकटायनः।
और्वेया मारुताश्चैवसर्वषांप्रवराः शुभाः ॥३१
भगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥३२
भगुदासो मागपथा ग्राम्यायनिकटायना।
आपस्तम्विस्तथा विल्विर्नैकशिः कपिरेवच ॥३३

आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेवच।
आश्वायनिस्तथार्रूपिर्ये चार्षेयाः प्रकीर्त्तिताः ॥३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैवच।
आर्ष्टियेणस्तथारूपिः प्रवरा पञ्चकीर्तिताः ॥३५

वे पाँचों प्रवरों के नाम ये हैं—भृगु–च्यवन–आप्नुवान–और्व और जमदग्नि ये ही पाँच प्रवर माने गये हैं ॥२९॥ इसके आगे मैं अन्य भृगूद्वहों को बतलाता हूं। उनका श्रवण तुम करलो–जमदग्नि–विद–पौलस्त्य–वैजभृत्त–ऋषि–उभय जात–कायनि–शाकटायन–और्वेय और मारुत्त सबमें प्रवर एवं शुभ थे ॥३०।३१॥ भृगु–च्यवन और आप्नुवान ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किये गये हैं ॥३२॥ भृगुदास–मार्गपथ––ग्राम्यायनि—कटायनि—आपस्तम्वि––विल्वि–नैकशि—कपि–आर्ष्टिषेण–रूपि–ये सब आर्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं। इनमें भृगु–च्यवन–आप्नुवान—आर्ष्टिषेण और रूपि ये पाँच प्रवर माने गये हैं ॥३३।३४।३५॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
यास्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्नु तथादमः ॥३६
जैवन्त्यायनिमौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा।
भागिलो भगावित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः ॥३७
वालपिः श्रमादगेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च।
गार्गीयस्त्यथ जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो ह्यृषिः ॥३८
ग्रामदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः।
भृगुश्च वीतहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ ॥३९
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
शालायनिः शाकटाक्षो मैत्रेयः खाण्डवस्तथा ॥४०
द्रौणायनो रौक्मायना पिशली चापि कायनिः।
हंसजिह्वस्तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः ॥४१

ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित हुए हैं। यास्क—वीति

हव्य—मथित—दम—जैवान्त्यायनि—मौञ्ज—पिलि—चलि—भगिल—भागवित्ति—कैंशापि—काश्यपि—बालपि—श्रमदागेपि—सौर—तिथि—गार्गीय—जाबालि—पौष्ण्यायन—ऋषि और ग्रामद ये सब आर्षेय एवं प्रवर माने गये हैं। भृगु-वीतहव्य—रैवस ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं। शालयनि—शाकटाक्ष—मैत्रेय—खाण्डव—द्रौणायन—रौक्मायन—पिशली—कायनि—हंसजिह्व ये सब आर्षेय प्रवर माने गये हैं ॥३६॥ ॥३७, ३८, ३९, ४०, ४१॥

भृगुश्चैवाथ वध्य्रश्वो दिवोदासस्तथैवच ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकोर्तिताः ॥४२
एकायनो याज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च ।
प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः ॥४३
तथा गृत्समदो राजन् ! सनकश्च महान् ऋषिः ।
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षयाः परिकीर्तिता ॥४४
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्त्तितौ ।
परस्परमवैवाह्या ऋषी वै परिकीर्तितौ ॥४५
एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं विजहातिजन्तु ॥४६

भृगु—वध्य्रश्व—दिवोदास ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्त्तित किये गये हैं। एकायन—याज्ञपति--मत्स्यगन्ध—प्रत्यूह—सौरि—औक्षि—कार्दमायानि—हे राजन् ! गृत्समद और महान् ऋषि सनक ये कहे हुए ऋषियों में प्रवर तथा आर्षेय कहे गये हैं। भृगु—गृत्समद ये दोनों आर्ष कीर्त्तित किये गये हैं। ये दोनों परस्पर में ऋषि अवैवाह्य कीर्तित हुए हैं। ये भृगु के वंश में उत्पन्न महानुभाव गोत्र करने वाले हैं। हे नृप! इन नामों के कीर्त्तन से जन्तु समग्र पापों को त्याग दिया करता है ।४२, ४३, ४४, ४५, ४६॥

७८–आङ्गिरसवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचितनया राजन् ! सुरूपा नाम विश्रुता ।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः ।।१
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदःप्राणस्तथैव च ।
हविष्मांश्च गविष्ठश्चऋतः सत्यश्च ते दश ।।२
एते चाङ्गिरसोनाम देवा वै सोमपायिनः ।
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ।।३
बृहस्पतिङ्गौतमञ्च संवर्त्तमृषिमुत्तमम् ।
उतथ्यं वामदेवं च अजस्यमृषिजन्तथा ।।४
इत्येते ऋषयःसर्वेगोत्रकाराःप्रकीर्तिताः ।
तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ।।५
उतथ्योगौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा ।
साधंनेमिःसलोगाक्षिःक्षीरः कौष्टिकिरेवच ।।६
राहुकणिः सौपुरिश्च कैरातिःसामलोमकिः ।
पौषजितिर्भार्गवतो ह्यृषिरौरीडवस्तथा ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् मरीचि के पुत्री सुरूपा—इस नाम से प्रसिद्ध भार्या थी। आङ्गिरस देव उसके दश पुत्र बताये गये हैं ।।१।। आत्मायु—दमन–दक्ष—सदः प्राण–हविष्मान्—गविष्ठ—ऋत–सत्ये ये दश उनके नाम थे। ये सब आङ्गिरस नाम वाले सोमपायी देव थे। इन सर्वेश्वर सब ऋषियों को सुरूपा ने ही जन्म दिया था ।।२, ३।। वृहस्पति–गौतम-सम्वर्त्त–उत्तम ऋषि—उतथ्य—वामदेव—अजस्य—ऋषिज—ये सब ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं। अब उनके गोत्र में समुत्पन्न जो गोत्र कार हैं उनको भी मुझसे जान लेना चाहिये। उतथ्य–गौतम—तौलेय—अभिजित—सार्धनेमि—सलौगाक्षि–क्षीर—कौष्टिक—राहुकणि–सौपुरि–कैराति–सामलोमकि—पौषजिति—भागवत—ऋषि—ऐरीडव ।।४-७।।

कारोटकः सजीवी च उपविन्दुसुरैषिणौ ।
वाहिनोपतिवैशाली क्रोष्टा चौवारुणायनिः ।।८
सोमोत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवास्तथा ।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ।।६
क्षपाविश्वकरोऽग्निश्च पारिकारारिरेव च ।
ह्यार्षेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु ।।१०
अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः ।
परस्परमववाह्या ऋषयः परिकोर्तिताः ।।११
आत्रेयायनिसौवेष्टच्यौ अग्निवेश्यः शिलास्थलिः ।
बालिशायनिश्चौकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा ।।१२
सौटिश्चत्रिणकर्णिश्चप्रावहिश्चाश्वलायनिः ।
वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च ।।१३
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः ।
कौचकिर्धूमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च । १४

कारोटक—सजीवी—उपविन्दु—सुरैषिण—वाहिनीपति-वैशाली-क्रोष्टा—वारुणायनि—सोमोत्रायनि—-कासोरु—-कौशल्य—-पार्थिव—रौहिण्यायनि—अग्नि—मूलप—-पाण्ड—क्षपाविश्वकर—अरि—पारिकारारि—येह्यार्षेय और प्रवर थे अब आगे उनके प्रवरों का श्रवण करो । अङ्गिरा-सुवचोतथ्य—उशिज—महानृषि—-ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किये गये हैं । आत्रेयायनि—सौवेष्टय—अग्निवेश्य—-शिलास्थलि—वालिशायनि—एकेपि—वाराहि—वर्हिसाही—शिखाग्रीवि—कारकि—महाकापि—उडुपति प्रभु—कौचकि—धूमति—पुष्पान्वेषी ।।८, ६, १०, ११, १२।। ।।१३, १४।।

सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा ।
देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकार्णिः सरिद्भुविः ।।१५
प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।

मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलाहारस्तथैव च ।।१६
गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च ।
नायकिर्जैत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च ।।१७
आपस्तम्बिमौञ्जवृष्टिमार्ष्टिपिङ्गलिरेव च ।
पैलश्चैव महातेजाः शालङ्कायनिरेव च ।।१८
द्व्याख्येयो मारुतश्चैषां त्र्यार्षेयः प्रवरो नृप ! ।
अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च वृहस्पतिः ।।१६
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ।।२०
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणाः ।
भ्राष्टृकृद्राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः ।।२१

सोमतन्दि-ब्रह्मतन्वि-सालडि-वालडि-दे।रारि देव स्थानि-हारिकर्णि-सरिद्भुवि-प्रावेपि-साद्य सुग्रीवि—गोमेद गन्धिक-मत्स्याच्छाद्य—मूलहर-फलाहार-गङ्गोदधि-कोरुपति-कौरुक्षेत्रि-नामकि—जैत्यद्रौणि—जैह्वलायनि-आपस्तम्बि-मौञ्ज वृष्टि-मार्ष्टपिङ्गालि-पैल-महातेजा—शालङ्कायनि—द्व्याख्येय-मारुत—त्र्यार्षेय—प्रवर-हे नृप ! उनमें अंगिरा प्रथम था और द्वितीय वहस्पति था। तीसरा भरद्वाज ये सब प्रवर कीर्तित किये गये हैं। ये परस्पर में अवैवाह्य कहे गये हैं। काण्वायन-कोपचय-वात्स्य तरायण—भ्राष्ट्रकृत—राष्ट्रपिण्डी—लैन्द्राणि-सायकायनि ।।१५।।।।१६, १७, १८, १६, २०, २१।।

क्रोष्टाक्षो वहुवीती च तालकृन्मधुरावहः ।
लावकृद्गालविद्गाथो मार्कटिः पौलिकायनिः ।।२२
स्कन्द्रसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा ।
वालाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ।।२३
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः ।
भरद्वाजस्तथा गर्गः सैन्यश्च भगवानृषिः ।।२४

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिःशक्तिःपतञ्जलिः ।।२५
भूयसिर्जलसन्धिश्चविन्दुर्मादिःकुसीदकिः ।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा ।।२६
शालिश्चकलशीकण्टःऋषिःकारीरयस्तथा ।
काटयोधान्यायनिश्चैवभावास्यायनिरेव च ।।२७
भारद्वाजिःसौबुधिश्च लघ्वी देवमतीस्तथा ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम ।।२८

क्रोष्टाक्षी—बहुवीती—तालकृत—मधुरावह—लावकृत्—गालविद्—गाथी—मार्कटि—पौलकायनि—स्कन्दस–चक्री–गार्ग्य–श्यामायनि-बालाकि, साहरि, ये पाँच आर्षेय प्रकीर्तित हुए हैं । अङ्गिरा, महातेजा, देवाचार्य्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग, सैन्य, भगवान् ऋषि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, विन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, रजकेशी, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ट, ऋषि कारीरय, काटय, धान्यायनि भावास्यायनि, भारद्वजि, सौबुधि, लम्वी, देवमती, हे भूमिपोत्तम ! ये त्र्यर्षेय, अभिमत प्रवर वाले थे ।।२२, २३, २४, २५, २६, २७, २८।।

अङ्गिरा दमबाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः ।
परस्परायणवर्णी च लौक्षिगार्ग्य हरिस्तथा ॥२६
गालविश्चैव त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ।
अङ्गिरा संकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च ।।३०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिः प्रवरा मताः ।।३१
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च ।
कुत्साकुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातना ।।३२

रथीतराणां प्रवरा त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैवच रथीतरः ।।३३
रथीतराह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः ।
विष्णुर्वृद्धिः शिवमतिर्जतृणः कत्तृणस्तथा ।।३४
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायणः ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ! ।।३५

अङ्गिरा, दमवाह्य, उरुक्षय, परस्परायणत्रपर्णी, लौक्षि, गार्ग्य, हरि, गालवि, त्र्यार्षेय, सबका प्रवर माना गया है। अङ्गिरा, संकृति, गौर वीति ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किये गये हैं। वृहदुक्थ, वामदेव ये त्रिप्रवर माने गए हैं। अङ्गिरा, वृहदुक्थ, वामदेव, कुत्साकुत्सै से ये अवैवाह्य थे–ऐसा पुरातन मनीषीगण कहते हैं। रथीतरों में प्रवर ये त्र्यार्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं। अङ्गिरा, विरूप और उसी भाँति से रथीतर। रथीतरों से नित्य हीं विवाहन करने के योग्य थे। विष्णु वृद्धि, शिवमति, जतृण, कत्तृण, पुत्रव, महातेजा, वैरपारायण हे नृप ! इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत था ।।२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।।

अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।३६
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडपः ।
अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ताविमौद्गलाः ।।३७
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपाः ।।३८
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीयः शाकटायनः ।।३९
ततः प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरणः शिवः ।
कटुमर्कटपश्चैव तथा नाडायनाह्यृषिः ।।४०
श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा शुभाः ।

अङ्गिराश्चाजमीणश्च कटचश्चैव महातपाः ॥४१
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषिः ॥४२

अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध, मुद्गल, महातपा ये ऋषिगण आपस में अवैवाह्य कहे गये हैं । हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्नि जिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यास्ताविमद्गल ये उनके त्र्यर्षेय सबके परम शुभ प्रवर अभिमत हुए हैं । अङ्गिरा, ताण्डि, मौद्गल्य, महातपा ये सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के योग्य थे–ऐसे कहे गये हैं । अपाण्डु, गुरु, तृतीय शाकटायन, इसके उपरान्त प्रागाथमा नारी, मार्कण्ड, मरण, शिव, कटुमकटप, नाडायन, ऋषि, श्यामायन उसी प्रकार से त्र्यार्षेय इनके शुभ प्रवर थे । अङ्गिरा, आजमीढ़, कटच, महातपा ये सब परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे गये हैं । तित्तिरि, कपिभू, गार्ग्य और महान् ऋषि ।।३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२।।

त्र्यार्षयो हि मतस्ते सर्वेषां प्रवरः शुभः ।
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कविभूश्च महानृषिः ॥४३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा ॥४४
ऋषिर्मैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ।
अङ्गिराः सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः ॥४५
ऋषिर्मित्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥४६
भारद्वाजो हुतःशौङ्गःशैशिरेयस्तथैव च ।
इत्येते कथिताः सर्वे द्व्यामुष्यायणगोत्रजाः ॥४७
पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः ।
अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च वृहस्पति ॥
मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः ॥४८

एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकारा।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषा जहाति ॥४६

उन सबका त्र्यर्षेय शुभ प्रवर माना गया है। अङ्गिरा, तित्तिरि, कविभू, महानृषि, ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किये गये हैं। इसके उपरान्त ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव ऋषि और मैत्रवर ये पाँच आर्षेय कीर्त्तित किये गये हैं। अङ्गिरा, भरद्वाज वृहस्पति ऋषि, मित्रवर, ऋषिवान् मानव ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगथ कहे गये हैं। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग, शैशिरेय, ये सब द्व्यामुष्यायण गोत्र में समुत्पन्न कहे गए थे ॥४३, ४४, ४५, ४६, ४७। इन सबके पाँच आर्षेय प्रवर परिकीर्त्तित हुए हैं उनमें अंगिरा, भरद्वाज, वृहस्पति, मौद्गल्य, शैशिर ये प्रवर कहे गये हैं ॥४८॥ ये सब आङ्गिरस के वंश में महानुभाव गोत्रकार ऋषिगण आपको बतला दिये गये हैं। जिनके केवल नाम मात्र के ही कीर्त्तन करने से पुरुष अपना समग्र पाप को त्याग दिया करता है ॥४६॥

७७–अत्रिवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे।
कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये ॥१
उद्दालकिः शोणकर्णिरथौ शौक्तवश्च ये।
गौराग्रीवा गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये ॥२
अर्द्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः।
कणजिह्वो हरप्रीतिर्नैद्राणिः शाकलायनिः ॥३
तैलपश्च सवैलेय अत्रिर्गोणीपतिस्तथा।
जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः ॥४

छन्दोगेयस्तथै तेषां ह्यार्षेयाः प्रवरा मताः ।
श्यावाश्च तथा त्रिश्चआर्चनानशएव च ।।५
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
दाक्षिर्बलिः पर्णविश्च ऊर्णनाभिः शिलार्दनिः ।।६
वीजवापी शिरोषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः ।
भलन्दनस्तथै तेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा--अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले गोत्रकारों का ज्ञान मुझसे प्राप्त करलो जो कर्दमायन शाखेय तथा शारायण थे । उद्दालकि, शोण, कर्णिरथ और जो शौक्रतव थे । जो गौर ग्रीव, गौरजिन तथा चैत्र यण थे । अर्द्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, तकिविन्दु, कणजिह्व, हरप्रीति, नैद्राणि, शाकलायनि, तैलय, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति-जलद, भगपाद, सौ पुष्पि, महातपा और छन्दोगेय, इनके ह्यार्षेय प्रवर माने गये हैं । श्यावाश्व, त्रिश्व और आर्चनानश ये आपस में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । दक्षि, बलि, पर्णवि, ऊर्णनभि शिलार्दनि, वीजवापी शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर और भलन्दन ये इनके प्रवर और त्र्यार्षेय माने गये हैं ।।१-७।।

अत्रिगविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथिः स्मृतः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ध्वं निबोध मे ।
कालेयाश्च सचालेया वासरथ्यास्तथैव च ।।९
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैवमहानृषिः ।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।१०
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवाह्या महानुभावा नृपगोत्रकाराः
येषां तु नाम्ना परिकीर्त्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।।११

अत्रि, गविष्ठिर, पूर्वातिथि ये ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य परिकीत्तित किये गये हैं ।।८।। अव आत्रेय पुत्रिका के पुत्रों को भी मुझसे समझ लो । कालेय, सचालेय, वासरथ्य आत्रेय, मैत्रेय, यार्षेय कीर्त्तित किये गये हैं । अत्रि, वामरथ्य, पौत्रि, महान् ऋषि से सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के ही योग्य थे । ये सब अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले नृपगोत्रकार महानुभाव हैं जो तुम्हारे सामने वर्णित कर दिये गए हैं । जिनके शुभ नामों के कीर्त्तन मात्र से ही पुरुष समग्र पाप का त्याग कर दिया करता है ॥८-११॥

८०–कुशिकवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अत्रोरेवापरं वंशन्तव वक्ष्यामि पार्थिव ! ।
अत्रो सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवान्नृप ।।१
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान् ।
तस्य वंशमह् वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ॥२
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः ।
वतण्डश्च सलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः ।।३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः ।
बाभ्रव्याश्व करीषाश्च संश्रुत्याः अथ संश्रुताः ॥४
उलूपा औपगह्चा पयोदजनपादपाः ।
खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ।।५
त्र्यार्षेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्त्तिताः ।
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः ।।६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।
देवश्रवाः सुजातेयाः सोसुकाः कारुकायनाः ।।७

तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ! ।
त्र्यार्येयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ।।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! अब मैं अत्रि के दूसरे वंश का वर्णन करूंगा। हे नृप ! सोम अत्रिका सुत श्रीमान् सोम उसका वंशोद्भव था। विश्वामित्र ने तपश्चर्या के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर ली थी। मैं अब उसके वंश का भी वर्णन करूंगा। बतलाने वाले मुझसे उसका आप लोग श्रवण कर लेवें। विश्वामित्र—देवरात–वैकृतिगालव–वतण्ड—सलङ्क—अभय—आयतायन–श्यामायन—याज्ञवल्का—जावाल–सैन्धवायन—वाभ्रव्य—करीष—संश्रुत्य—सश्रुत—उलूप—ओपगहय—पयोद जन पादप—खरवाच—हलयम—साधित—वास्तु कौशिक—उन सबके त्र्यर्षेय प्रवर कीर्त्तित किए गए हैं। विश्वामित्र—देवरात—महायशा उद्दाल थे परस्पर में विवाह न करने के योग्य ही हैं—ऐसे ही ऋषिगण कहे गए हैं। देवश्रवा—सुजातेय—सौसुक—कारुकायन—तथा वैदेहर त—हे नराधिप ! जो कुशिक है इन सबका शुभ प्रवर त्र्यर्षेय अभिमत है ॥१-८॥

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।९
धनञ्जयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव ! ।
पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः ।।१०
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च ।
त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।।११
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः ।
परस्परमवैवाह्याऋषयः परिकीर्त्तिताः ।।१२
कमलायजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च ।
वञ्चुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ।।१३
विश्वामित्रश्चाश्वरथो वञ्जुलिश्च महातपाः ।

परस्परमवैवाह्या ऋषयःपरिकीर्तिताः ।।१४

देवश्रवा, देवरात्र तथा विश्वामित्र ये ऋषिगण परस्पर विवाह न करने के योग्य कहे गये हैं ।।६।। हे पार्थिव ! धनञ्जय, कपर्देय, परिकूट और पाणिनि ये सब त्र्यार्षेय कीर्त्तित किए गये हैं ।।१०।। विश्वामित्र तथा आद्य और माधुच्छन्दस ये त्र्यार्षेय प्रवर ऋषिवर्ग बताये गए हैं ।।११।। विश्वामित्र, मधुच्छन्द, अघमर्षण ये आपस में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित हुए हैं ।।१२।। कमलायजनि, अश्मरथ्य, चञ्जुलि सबका त्र्यार्षेय प्रवर माना गया है । १३'। विश्वामित्र, अश्वरथ, महातपा वञ्जुलि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्त्तित हुए हैं ।।१४।।

विश्वामित्रोलोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा ।
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौप्रवरो स्मृतौ ।।१५
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम् ।
लोहिता अष्टकाश्चैषा त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।।१६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः ।
अष्टका लोहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम् ।।१७
उदरेणः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा ।
शाटचायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी ।।१८
मौञ्जायनिश्चभगवान्त्र्यार्षेयाःपरिकीर्तिताः ।
खिलिखिलीस्तथाविद्योविश्वामित्रस्तथैवच ।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।१६।।
एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र ! महानुभावाःसततंद्विजेन्द्रा ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।।२०

विश्वामित्र और लौहित—अष्टक–पूरण–विश्वामित्र और पूरण इन दोनों के दो प्रवर कहे गए हैं । पूरण आपस में अवैवाह्य हैं । लोहित और अष्टक इनके त्र्यार्षेय बताये गए हैं ।।१५, १६।। विश्वामित्र, लोहित, महातपा अष्टक, ये अष्टक लोहितों के साथ आपस में अवैवाह्य हैं ।।१७।।

उदरेणु, ऋथक, ऋषि उदावहि,शाटचायनि, करीराशी,शालयङ्काय, निलावकि, मौञ्जायनि; भगवान् ये न्यार्षेय कीर्त्तित हुए हैं। खिलिखिलि, विद्य तथा विश्वामित्र ये परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे गए हैं ।।१८,१९।। हे नरेन्द्र ! ये आपको द्विजेन्द्र महानुभाव सतत कुशिक सब बतला दिये गए हैं जिनके परम शुभ नामों के संकीर्त्तन मात्र से ही पुरुष अपने समस्त पापों को त्याग कर विशुद्ध हो जाया करता है ।।२०।।

* * *

८१—कश्यपवंशज-ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले ।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे श्रृणु ।।१
आश्रायणि ऋषिगणो मेषकीरिटकायनाः ।
उदग्रजामाठराश्च भोजा विनयलक्षणाः ।।२
शालाहलेयाः कौरिष्टाः कन्यकाश्चासुरायणाः ।
मन्दाकिन्यां वै मृगयाः श्रुतया भोजयापनाः ।।३
देवयाना गोमयानह्यधश्छाया भयाश्च ये ।
कात्यायनाःशाक्रयाणाःर्वाह्र्योगगदायनाः ।।४
भवनन्दि महाचक्रि दाक्षपायन एव च ।
योधयानाः कातिवयो हस्तिदानास्तथैव च ।।५
वात्स्यायनानि कृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।
प्रागायणाः पौलमौलिराश्ववातायनस्तथा ।।६
कौवेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायिणश्च ये ।
मेषपाः कैकरसपास्तथा चैव तु वभ्रवः ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महामहर्षि मरीचि का कश्यप पुत्र हुआ था तथा कश्यप के कुल में जो गोत्रकार ऋषिगण हुए थे उनकी शुभ

नामावली अव आप मुझसे श्रवण करलो ।।१।। आश्रायणि ऋषिगण, मेष-कीरिटकायन, उदग्रजामाठर, भोज, विनय लक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में मृगय, श्रुतम, भोजयापन, देवयान, गोमयान, अधश्छय्या, भया, कात्यायन, शाक्रयाण, बर्हियोग गदायन, भवनन्दि, महाचक्रि, दाक्ष पायन, योधयान, कार्त्तिवय हस्तिदान, वात्स्यायनि कृतज, आश्वलायनि, प्रागायण, पौलमौलि, आश्व वातायन, कौवेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कंकरसप, तथा वभ्रव ।।२-७।।

प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च ।
श्यामोदरा वैवशपास्तथाचैवोद्वलायनाः ।।८
काष्ठाहारिणमारीचाआजिहायनहास्तिकाः ।
वैकर्णयाःकाश्यपेयाःसासिसाहारितायनाः ।।९
मान्तगिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
वत्सरः कश्यपश्चेव निध्रवश्चमहातपाः ।।१०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
अतः पर प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोजान् ।।११
अनसूयो नाकुरयः स्नातपो राजवर्तपः ।
शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्रीरोपसेवकिः ।।१२
या मुनिः काद्रुपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्थैव च ।
दिवावष्टाश्व इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः ।।१३
त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
वत्सरः काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातपाः ।।१४

प्रचेय, ज्ञान संज्ञेय, अग्नि, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासिसाहारितायन, मान्तागिन, भृगुगण ये सब त्र्यार्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं। अब यहां से आगे हम द्व्यामुष्यायण गोत्रजों के विषय में वर्णन करेंगे। अनसूय, नाकुरम, स्नातम्य, राज वर्त्तप शैशिरोदवहि, सैरन्ध्रीरोप सेवकि,

यामुनि, काद्रु पिङ्गाक्षि, सजातम्बि, दिवावष्टाश्व ये इतने भक्ति भाव से काश्यपों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके सबके त्र्यार्षेय शुभ प्रवर हैं। वत्सर, काश्यप, वसिष्ठ महातपा ।।८-१४।।

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
संयातिश्च नभश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः ।।१५
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीमुखः।
हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ ।।१६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः।
निदाघमसृणौ भत्स्या महान्तः केवलाश्च ये ।।१७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा व देवजातयः।
पैप्पलादिस्स प्रवरा ऋषयःपारकीर्तिताः ।।१८
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः।।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।।१९।।
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यः सकलंप्रसूतम्।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं किं ते प्रवक्ष्याम्यहमन्तरेण।।२०

ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य बतलाये गये है। संयाति, नभ ये दोनों, पिप्पल्य, जलन्धर, भूजातपूर, पूर्व, कर्दम, गर्दभी मुख, हिरण्य वाहुक, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, भत्स्य, महान्त, केवल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति, पैप्पलादिस ये सब ऋषिवृन्द प्रवर कहे गए हैं इन सबके शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हुए हैं। असित, देवल और महातपा कश्यप ये ऋषिगण परस्पर में अविवाह्य हैं—ऐसा कीर्तित किया गया है। समस्त ऋषियों में परम प्रधान कश्यप के दाक्षायणीयों से यह सम्पूर्ण प्रसूत हुआ है। यह सम्पूर्ण जगत् सिंह क तुल्य मनु का पुण्य रूप है। अब मैं इसके उपरान्त आपको क्या बतलाऊ ।।१५-२०।।

८२—वशिष्ठ वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम ।
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः ॥१
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः ।
व्याघ्रपादाऔपगवावैक्लवाः शाद्वलायनाः ॥२
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चषठाः कठाः ।
गौपयानाबोधपाश्चदाकव्याह्यथवाह्यकाः ॥३
वालिशयाः पालिशयास्ततोवाग्ग्रन्थयश्चये ।
आपस्थूणाःशीतवृत्तास्तथाब्राह्मपुरेयकाः ॥४
लोमायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिर्गौडिनिस्तथा ।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ॥५
चौलिर्वौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च ।
पौड़वो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेयामहर्षयः ॥६
वसिष्ठ एषां प्रवर अवैवाह्याः परस्परम् ।
शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा ॥७

श्रीमत्स्य भगवान ने कहा—वसिष्ठ वश में समुत्पन्न विप्रों को बतलाते हुए मुझसे श्रवण करो। वासिष्ठों का एकार्षेय प्रवर प्रकीर्त्तित किया गया ह ॥१॥ वसिष्ठ ही वासिष्ठ हैं जो वसिष्ठ से समुत्पन्न होने वालों के साथ अविवाह्य हैं। व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव, शाद्वलायन, कपिष्ठल औपलोम, अलब्ध, षठ, कठ, गौपयान, वोधप, दाकव्य, वाह्यक, वालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थय, आपस्थूण, शीतवृत्त, ब्राह्म पुरेयक, लोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धः यौलि, वौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौड़व, याज्ञवल्का, ये सब एकार्षेय महर्षिगण हैं। इनका वसिष्ठ प्रवर है और परस्पर में अवैवाह्य हैं। शैलालय, महाकर्ण, कोड्य क्रोधिना ॥२-७॥

कपिञ्जलावालखिल्याभागवित्तायनाश्चये ।
कीलायनःकालशिखःकोरकृष्णासुरायणाः ।।८
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्चये ।
शाकायनाउहाकाश्चअथमाषशरावयः ।।९
दाकायनावालवयोवाकयो गोरथास्तथा ।
लम्बायनाःश्यामवयो ये चकोडोदरायणाः ।।१०
प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च ।
साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वेदशेरकाः ।।११
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः ।
मातेया ब्रह्मबलिनः पर्णागारिस्तथैव च ।।१२
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा ।
भिगीवसुवशिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेवच ।।१३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
औपस्थलास्वस्थलयो पालोहाला हलाश्च ये ।।१४

कपञ्जिल, बाल खिल्य, भाग वित्तायन, कीलायन, काल शिख, कोर कृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकार्धी, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्याम-वय कोडोदरायन, प्रलम्बायन ऋषिगण, औपमन्यव, साङ्ख्यायन ऋषि-वर्ग, वैदशेरक, पलङ्कायन, उद्गाह ऋषिगण, वलेक्षव, मातेय, ब्रह्मबलिन, पर्णागारि, इस सबके प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत है। भिगोवसु, वशिष्ठ और इन्द्र प्रमदि ये ऋषिगण आपस में विवाह विधि नहीं करने के योग्य होते हैं—ऐसा ही कहा गया है। औपस्थल स्वस्थल ये—पालोहाल—हल ।।८-१४।।

माध्यन्दिनो मान्तयः पैप्पलादिर्विचक्षुषः ।
तैस्तृङ्गायन सैवल्काः कुण्डिनश्च नरोत्तम ! ।।१५
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।

वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः ॥१६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ॥१७
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा ।
जातृकर्ण्योवसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ! ॥
पपस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ॥१८
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ॥१९

माध्यन्दिन, माक्षतप, पैप्पलादि, विचक्षुष, चैश्रृङ्गायन, सैवल्क, कुण्डिन हे नरोत्तम ! इन सब के परम शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हैं। वसिष्ठ, मित्रावरुण, महातपा, कुण्डिन ये ऋषि वृन्द परस्पर में अवैवाह्य हैं—ऐसा कीर्त्तित किया गया है। शिवकर्ण, वय, पादप, इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत है। हे पार्थिव ! जातृकर्ण्य वसिष्ठ तथा अत्रि ये ऋषि वृन्द आपस में विवाहन करने के योग्य ही कहे गये हैं। १५-१८॥ मैंने आपको वसिष्ठ के वंश में ऋषियों में प्रधान और निरन्तर द्विजेन्द्र आपको कह दिये गये हैं जिनके परम शुभ नामों के परिकीर्त्तन से पुरुष अपने सम्पूर्ण पापों का त्याग कर दिया करता है ॥१९॥

८३—ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन

वसिष्ठस्तु महातेजानिमेः पूर्वपुरोहितः ।
बभूव पार्थिवश्रेष्ठ ! यज्ञास्तस्य समन्ततः ॥१
श्रान्तात्मापार्थिवश्रेष्ठ ! विशश्राम तदा गुरुः ।
तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत् ॥२
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मां याजयमाचिरम् ।

तम्वाच महातेजा वसिष्ठःपार्थिवोत्तमम् ।।३
कञ्चित्कालं प्रतोक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः ।
श्रान्तोऽस्मि राजन् ! विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृपः।।४
एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तम ! ।
पारलौकिककार्ये तु कः प्रतोक्षितुमुत्सहेत् ।।५
न च मे सौहृदं ब्रह्मन् ! कृतान्तेन बलीयसा ।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ।।६
धर्मपथ्यौदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते ।
श्वः कार्य्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णेचापराह्निकम् ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महर्षि वसिष्ठ महान् तेजस्वी थे और निमि के पूर्व पुरोहित थे। हे पार्थिव श्रेष्ठ उसके चारों ओर यज्ञ थे उस समय में श्रान्त आत्मा गुरु में विश्राम किया था। उसके समीप में जाकर निमि ने यह वचन कहा था। हे भगवन् ! मैं देखना चाहता हूँ—मुझे शीघ्र यजन कराइये। महान् तेज वाले वसिष्ठ जी ने उस श्रेष्ठ राजा से कहा था—कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। आपके परम श्रेष्ठ यज्ञों से हे राजन् ! मैं थक-सा गया हूँ मैं कुछ समय तक विश्राम करके ही याजन कराऊंगा ।।१-४।। इस प्रकार से जब कहा गया था उसने हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठ जी से कहा था कि पारलौकिक कार्य्य में कौन ममुष्य होगा जो प्रतीक्षा करने का उत्साह करेगा। हे ब्रह्मन् ! उस महान् बली यमराज से मेरी कोई मित्रता नहीं है। धर्म्म के कार्य्य में तो शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि यह मानव का जीवन तो चल और अस्थिर हुआ करता है ।।५, ६।। धर्म्म रूपी पथ्य ओदन वाला यह जन्तु मृत होकर भी सुख का आनन्दोपभोग किया करता है। जो कार्य्य अर्थात् धर्म्म सम्बन्धी कर्म्म कल करने का विचार हो उसे आज ही करना चाहिए और जो दोपहर के बाद करने का हो उसको दोपहर के पूर्व ही कर डाले—इसी प्रकार धार्म्मिक कृत्य को ही जितनी

शीघ्रता हो सके उतनी शीघ्रता से सम्पादित करने का सर्वदा विचार रखना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है ॥७॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतञ्चास्य न वा कृतम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्र गतमानसम् ॥८
वृकश्चोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
नैकान्तेन प्रियः कश्चित्द्वेष्यश्चास्यन विद्यते ॥९
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम् ।
प्राणवायोश्चलत्वञ्च त्वया विदितमेव च ॥१०
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् ! क्षणमात्रन्तदद्भुतम् ।
शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने ॥११
अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि सङ्कटे ।
सोऽह संभृत सस्भारोभवन्मूलमुपागतः ॥१२
नचेद्याजयसे मा त्वं अन्यं यास्यामि याजकम् ।
एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः ॥१३
शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ॥१४

मृत्यु इसने कुछ किया है या अभी तक धर्म्म का कार्य नहीं किया है—इसकी बिल्कुल भी प्रतीक्षा नहीं किया करती है। वह तो एक वृक के ही समान चुप चाप समय पर आकर क्षेत्र–गृह–आपण आदि में समासक्त और दूसरे-दूसरे विषयों में मन लगाने वाले मनुष्य को लेकर चल दिया करता है। इसका न तो कोई प्यारा है और न किसी से इसका द्वेष ही है। यह तो कर्म में समासक्त जनको आपृण्य के क्षीण हो जाने पर बलात् पकड़ कर हरण कर लिया करता है। यह प्राण वायु चल है और इसकी चलता को आप भली भाँति से जानते ही हैं। हे ब्रह्मन् ! जो यहां पर जीवित रहा करता है उसका एक क्षणमात्र जीवित रहना भी एक अद्भुत आश्चर्य ही है। मैं तो विद्याभ्यास और धन के अर्जन में

ही इस शरीर को शाश्वत मानता हूँ। धर्म कार्य में मैं इसको अशाश्वत मानता हूँ। इस सङ्कट में ऋणवान् हूँ। वह मैं सम्भृत सम्भार वाला मूल को उपागत हुआ हो गया था। यदि आप मुझे याजन नही करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजक के समीप में चला जाऊँगा। इस प्रकार से उस समय में उस निमि के द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जब कहा गया था तो उसने महान् क्रोध से उस निमि को शाप दे दिया था कि तू विदेह हो जायेगा क्योंकि परम श्रान्त मुझ को त्याग करके किसी अन्य द्विजोत्तम के समीप जाना चाहता है ।।८-१४।।

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्वं याजक कर्तुमिच्छसि ।
निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे ।।१५
विघ्नङ्करोषि नान्येन याजनंच तथेच्छसि ।
शापंददासि यस्मात्वं विदेहोऽथभविष्यसि ।।१६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ ।
देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः ।।१७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।
अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम् ।।१८
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव ।
त्वत् सम्बन्धात्तथा तेषां निमेषः सम्भविष्यति ।।१९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः ।
एवमुक्ते मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः ।।२०
जगाम निमिजोवस्तु वरदानात् स्वयम्भुवः ।
वसिष्ठ जीवं भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।।२१

हे नरेन्द्र ! धर्म के ज्ञाता आप हैं और आप याजक करना चाहते हैं। इसके अनन्तर निमि ने उसको इसका उत्तर दिया था कि धर्म्म में रति रखने वाले मेरे कार्य में विघ्न करते हैं और अन्य के द्वारा कराये जाने वाले याजन को नहीं चाहते हैं। इसीलिए आप शाप दे रहे हैं कि

तू विदेह हो जायगा तो तू भी विदेह हो जायगा ! इस प्रकार से कहने पर वे दोनों ही द्विज और पार्थिव विदेह हो गये थे । उन दोनों के देह से हीन जीवात्मा ब्रह्माजी के समीप में पहुँचे थे । उन दोनों को समागत हुए देखकर ब्रह्माजी ने यह वचन कहा—आज से लेकर हे निमि के जीव ! तुझको मैं स्थान देता हूँ हे पार्थिव ! तुम सब के नेत्रों के पक्ष्म में निवास करोगे ।।१५-१६।। मनुष्य उस समय में नेत्रों के पक्ष्मों का चालन करेंगे । इस तरह से कहने पर सब ओर मनुष्यों के नेत्रों के पक्ष्मों पर वह निमि का जीव स्वयम्भू प्रभु के वरदान से चला गया था । फिर ब्रह्माजी ने **वसिष्ठ महर्षि** के जीव से यह वचन कहा था—।।२०, २१।।

मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ ! त्वं भविष्यसि ।
वसिष्ठेतिचते नाम तत्रापिचभविष्यति ।।२२
जन्मद्वयमतीतञ्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि ।
एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ।।२३
वदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम् ।
तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ ।।२४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे द्वयितमारुते।
उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम् ।।२५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथङ्गता ।
तां दृष्ट्वा सुमुखीं सुभ्रूं नीलनीरजलोचनाम् ।।२६
उभौ चुक्षुभतुर्धैर्यात्तद्रूपपरिमोहितौ ।
तपस्यतोस्तयो वीर्यमस्खलच्च मृगासने ।।२७
स्कन्नं रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीतौ परस्परम् ।
चक्रतुः कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे ।।२८

हे वसिष्ठ ! तू मित्रावरुणों का पुत्र होगा । वहां पर भी 'वसिष्ठ'—यह तेरा नाम होगा ।।२२।। वहां पर भी तुझे बीते हुए दो जन्मों का स्मरण होगा । इसी समय में मित्र और वरुण वदर्याश्रम को

प्राप्त करके अव्यय तपस्या का संतपन करने लगे थे । उन दोनों के इस प्रकार से तपश्चर्य्या करने पर किसी समय माधव ऋतु मे परम शुभ और वहन करने वाली वायु से युक्त पुष्पित द्रुमों के संस्थान में फूलों के स्तवको उछालती हुई वरारोहवाती उर्वशी जो कि अत्यन्त बारीक और रक्तवर्ण के वस्त्र धारण कर रही थी तप करने वाले उन दोनों की दृष्टि में आ गई थी अर्थात् दोनों ने उर्वशी को देख लिया था । उस नीले कमलों के सदृश लोचनों वाली सुन्दर मुख से सम्पन्न सुभ्रू को देख कर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुए वे दोनों ही धैर्यहीन होकर क्षोभ वाले हो गये थे । तपस्या करते हुए उन दोनों का वीर्य्य मृगासन पर स्खलित हो गया था । इसके उपरान्त जब उन्होंने अपने स्कन्न हुए वीर्य को देखा तो वे दोनों शाप से भयभीत हो गये थे और उन्होंने वहाँ पर स्थित जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य्य का डाल दिया था ।। २३, २४, २५ २६, २७, २८ ।।

तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसा प्रतिमौ भुवि ।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्चमित्रावरुणयोर्द्वयोः ॥२६
वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भागिनीं नारदस्य तु ।
अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत् ॥३०
शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंश निबोध मे ।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वय विष्णुरजायत ॥३१
प्रकाशो जनितो येन लोके भारत चन्द्रमाः ।
पराशरस्य तस्य त्वं श्रृणु वंशमनुत्तमम् ॥३२
काण्डषपो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः ।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥३३
प्रपोहयावाह्य मयाः ख्याते याः कौतुजातयः ।
हर्यंश्विः पञ्चमो ह्येषां नीलाज्ञेयाः पराशराः ॥३४
कार्ष्णायनाः कपि सुखाः काकेयस्थाजपातयः ।

पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णाज्ञेयाःपराशराः ।।३५

उसी वीर्य से भूमण्डल में तेज से समन्वित उन दोनों मित्रावरणों के दो ऋृषियों में परम श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम वसिष्ठ था और दूसरे का नाम अगस्त्य था ।। २९ ।। वसिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था जिस बरारोहा का नाम अरुन्धती था। उस अरुन्धती में उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था। शक्ति का पुत्र पराशर हुआ था। अब उसका जो भी वश हुआ उसे मुझसे समझ लो। जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन्न हुआ था ।। ३०, ३१ ।। वह ऐसा था जिसने लोक में भारत चन्द्रमा प्रकाश को प्रसूत किया था। उस पराशर मुनि का जो उत्तम वंश था उसे तुम श्रवण करलो ।।३२।। काण्डषप—वाहनप—जैह्मप—भौम तापन और इनमें पाँचवां गोपालि था। ये गौर पाराशर थे ।। ३३ ।। प्रय–हयावाह्य-मय और ख्यात में जो कौतुक जातियाँ हैं तथा पञ्चम हर्यशिव में नीलाज्ञेय पराशर हैं ।। ३४ ।। कार्ष्णायन—कपिसुख—काकेयस्थ—जपाति और इनमें पाँचवां पुष्कर ये सब कृष्णा ज्ञेय पाराशर हैं ।। ३५ ।।

आविष्टायन वालेयास्वायष्टाश्चोपयाश्च ये ।
इषीकहस्ताश्चंते वै पञ्चश्वेताःपराशराः ॥३६
पाटिको वादरिश्चैवस्तम्बा वै क्रोधनायनाः ।
क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ।।३७
खल्यायनाः वार्ष्णायनास्तैलेयः खलु यूथपाः ।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राःपराशराः ॥३८
उक्तास्त्वेते नृप ! वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्रभावाः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।। ३९

आविष्टायन–वालेय–स्वायष्ट–उपय–इषीक हस्त ये पाँच श्वेत पराशर थे ।। ३६ ।। पाटिक—बादरि—स्तम्ब क्रोधानायन और इनका पाँचवां क्षैमि ये श्याम पराशर हुए थे। खल्यायन—वाष्र्यायिन—तैलेय–

यूथप और इनमें पञ्चम तन्ति ये सब धूम्र पराशर हैं। हे नृप! ये सूर्य के समान प्रभाव वाले वंश में प्रमुख पराशर सब आपके समक्ष में वर्णित कर दिये गये हैं जिनके शुभ नामों के ही कीर्तन करने से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम विशुद्ध हो जाया करता है ॥ ३७, ३८। ३६॥

८४—ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्येवंशोद्भवान्द्विजान् ।
अगस्त्यश्चकरम्भश्चकौशल्यःकरटस्तथा ॥१
सुमेधसोमयोभुवस्तथा गान्धारकायणाः ।
पौलस्त्याः पौलहाश्चैवक्रतुवंशभवास्तथा ॥२
आर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः ॥३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
पौर्णमासाः पारणाश्च आर्षेयाः परिकीर्तिताः ॥४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणः ॥५
एवमुक्तो ऋषोणान्तु वश उत्तमपौरुषः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि किम्भवानद्य कथ्यताम् ॥६
पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैवमहात्मनः ।
अगस्त्यस्य तथा चैवकथं वंशस्तदुच्यताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इससे आगे मैं अगस्त्य मुनि के वंश में समुत्पन्न द्विजों का वर्णन करता हूँ—अगस्त्य—करम्भ—कौशल्य—करट—सुमेधस—मयोभुव—गान्धारकायण—पौलस्त्य—पौलह—ऋतुवंश भव—

इन सबके शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत हैं। अगस्त्य–महेन्द्र और भयोभुव ऋषि ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य हैं ऐसा परिकीर्त्तित किया गया है। पौर्णमास और पारण आर्षेय कीर्त्तित किये गये हैं। अगस्त्य–पौर्णमास तथा महान् तपस्वी पारण—ये आपस में विवाह करने के योग्य नहीं थे और पौर्णमास पारणों के साथ विवाह्य नहीं था। इस प्रकार से ऋषियों का उत्तम पौरुष वाला वंश मैंने कह दिया है। इससे आगे आज क्या कहूँ ? आप ही यह मुझे बतलाइये। महर्षि मनु ने कहा—पुलह – पुलस्त्य—क्रतु जो महान् आत्मा वाला था तथा अगस्त्य का वंश कैसे हुआ—यही अब बतलाइये ।। १–७ ।।

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे ।
इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ।।८
अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञं आगस्त्याः क्रतवस्ततः ।
पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते !।।९
तेषान्तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि ।
पुलहस्तु प्रजांदृष्ट्वानातिप्रीतमनाः स्वकाम् ।।१०
अगस्त्यजंदृढास्यन्तुपुत्रत्वेवृतवांस्ततः ।
पौलाहाश्चतथाराजन् ! आगस्त्याःपरिकीर्तिताः ।।११
पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्टवारक्षः समुद्भवान् ।
अगस्त्यस्यसुतन्धीमान् पुत्रत्वेवृतवांस्ततः ।।१२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ।
सगोत्रत्वादिमे सर्वेपरस्परमनन्वयाः ।।१३
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभावानृपवंशकाराः ।
एषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।।१४

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु बिना सन्तान वाला हुआ था। उस श्रेष्ठ ऋषि ने इध्मवाह को पुत्रत्व के रूप में ग्रहण किया था ।। ८ ।। वह धर्म का ज्ञाता अगस्त्य का

पुत्र था। इसके पश्चात् ऋतुगण्य आगस्त्य कहे गये थे। हे पृथिवी पते! पुलह के तीन पुत्र थे। अब मैं उत्तर में यथाविधि उनके जन्म के विषय में वर्णन करूँगा। पुलह ने अपनी प्रजा को देखा था तो वह—अत्यन्त प्रीति युक्त मन वाला नहीं था। इसके उपरान्त उसने दृढास्य अगस्त्य से समुत्पन्न को पुत्रत्व के रूप में वरण कर लिया था। हे राजन्! उसी प्रकार से पौलह आगस्त्य परिकीर्त्तित हुए थे। पुलस्त्य के अन्वय में समुद्गलों को राक्षसों से समुद्भव वाले देख कर धीमान् ने अगस्त्य के सुत को ही पुत्रत्व में वृत कर लिया था। ॥९॥१०॥११॥१२॥ तथा हे राजन्! वे पौलस्त्य आगस्त्य कीर्तित हुये। सगोत्र होने से ये सब परस्पर में अन्वय वाले नहीं थे। ये सब ऋषों के वंशकर महानुभाव द्विजों में प्रवर थे? इनका वर्णन आपको सुना दिया है! इनके नामों के कीर्त्तन से मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है ॥१३।१४।

* * *

८५—मनुमत्स्य संवादे धर्म वंश वर्णन

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते श्रृणु धर्मस्य पार्थिव !।
दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम् ॥१
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप !।
अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
अष्टौ च वसवः पुत्राः सोमपाश्चविभोस्तथा।
धरोध्रुवश्चसामश्चआपश्चैवानिलानलौ ॥३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता।
धरस्य पुत्रो द्रविणः कालःपुत्रोध्रुवस्यतु ॥४
कालस्यावयवानान्तु शरीराणि नराधिप !।
मूतिमन्ति च कालाद्धि संप्रसूतान्यशेषतः ॥५

सोमस्य भगवान् वर्चाः श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते ।
अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्यतु ।।६
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्धकिः ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे पार्थिव ! इस वैवस्वत अन्तर के प्राप्त होने पर दाक्षायणियों से सम्पूर्ण उत्तम अस्मि दैवत वंश का श्रवण कीजिएगा ।। १ ।। हे नराधिप । इस वैवस्वत अन्तर में धर्म्म से अरुन्धती से पर्वत आदि महा दुर्ग शरीर प्रसूत हुए थे ।। २ ।। आठ वसुगण पुत्र–विभु के सोमप–धर–ध्रुव–सोम–आप–अनिल–अनल–प्रत्यूष प्रभास ये सब अष्ट वसुगण कीर्तित किये गये हैं । धर का पुत्र द्रविण हुआ और काल ध्रुव का पुत्र हुआ था । हे नराधिप ! काल के अवयवों के शरीर मूर्तिमान् सम्पूर्ण काल से ही सम्प्रसूत हुए थे ।। ३, ४ ५ ।। सोम का सुत भगवान् वर्चा था और जल का पुत्र श्रीमान् हुआ था—ऐसा कहा जाता है। अनल का पुत्र अनेक जन्म जनन कुमार था । अनिल का आत्मज पुरोजवा तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल प्रसूत हुआ था । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा था तथा त्रिदशों का वह वर्धकि था ।।६, ७ ।।

समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्याद्यो नव ।
लम्बापुत्रःस्मृतोघोषोभानोःपुत्राश्चभानवः ।।८
ग्रहर्क्षाणाञ्च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तःसर्वेपुत्राः प्रकीर्तिताः ।।९
सङ्कल्पायाश्चसङ्कल्पस्तथापुत्रःप्रकीर्तितः ।
मुहूर्ताश्चमुहूर्तायाः साध्याः साध्यासुताः स्मृताः ।।१०
मनोर्मनुश्च प्राणश्च नरोषानौ च वीर्यवान् ।
चित्तहार्योऽयनश्चैवहंसोनारायणस्तथा ।।११
विभुश्चापिप्रभुश्चैवसाध्याद्वादशकीर्तिताः ।
विश्वायाश्चतथापुत्राविश्वेदेवाः प्रकीर्तिता ।।१२

क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः कालकामोमुनिस्तथा ।
कुरजोमनुजोबीजोरोचमानश्च ते दश ।। १३
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ! ।
व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति राजन् विना वर्षशतैरनेकैः।।१४

सभी हितकरों वाले नागवीथी आदि नौ बताये गये हैं। लम्बा का पुत्र घोष कहा गया है और भानु के पुत्र भानुगण हैं ।। ८ ।। अन्य अमित ओज वाले ग्रह और नक्षत्रों के सबके मरुत्वती में मरुत्वन्त सब पुत्र प्रकीर्त्तित हुए हैं ।। ९ ।। सङ्कल्पा का पुत्र सङ्कल्प कहा गया है। मुहूर्त्ता के पुत्र मुहूर्त्त और साध्य साध्या के सुत उत्पन्न हुए थे ऐसा कहा गया है। मनु से मनु और प्राण—नर—उपान—वीर्यवान्—हार्य्य—अयन—हंस—नारायण—विभु और प्रभु ये द्वादश साध्य कहे गये हैं। विश्वा के जो पुत्र थे वे विश्वेदेवा कीर्त्तित हुए थे। क्रतु-दक्ष—वसु—सत्य--काल काम--मुनि--कुरज--मनुज--बीज--रोचमान ये दश थे। हे पार्थिवों के वंश में प्रधान ! हमने यह धर्म्म का वंश संक्षेप से आपके समक्ष में बतला दिया है। हे राजन् ! यह अनेकों सैकड़ों वर्षों के बिना भगवान् व्यासदेव के द्वारा भी बतलाया नहीं जा सकता है ।। १०, ११, १२, १३, १४ ।।

८९—पतिव्रतामाहात्म्य में सावित्री उपाख्यान

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः ।
पतिव्रतानां माहात्म्यं तत्सम्बन्धांकथामपि ।।१
पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कयामृत्युः पराजितः ।
नामसङ्कीर्तनं कस्याः कीर्तनीयंसदा नरः ।।
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे ।।२।।
वैलोम्यं धर्मराजोऽपिनाचरत्यथयाषिताम् ।

पतिव्रतानांधर्मज्ञ ! पूज्यास्तस्यापि ताःसदा ।।३
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
यथा विमोक्षितो भर्त्ता मृत्युपाशाद्यतः स्त्रिया ।।४
मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा ।
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम् ।।५
आराधयति सावित्रींलक्षितोऽसौद्विजोत्तमैः ।
!सिद्धार्थकैर्हूयमानांसावित्रींप्रत्यहंद्विजैः ।।६
शतसंख्यैश्चतुर्थ्यान्तु दशमासागते दिने ।
काले तु दर्शयामास म्वान्तनुं मनुजेश्वरम् ।।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त में अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा ने देवेश से पूछा था कि पतिव्रता नारी का क्या कैसा माहात्म्य है और इससे सम्बन्धित यदि कोई उपाख्यान हो तो उसके लिये भी पूछ लिया था। मनुदेव ने कहा था—हे भगवन् ! पतिव्रता नारियों में कौन सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पातिव्रत बल के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर दिया था। मनुष्यों को किसके परम शुभ नाम का कीर्त्तन सदा करना चाहिए ? हे भगवन् ! यह समस्त पापों के क्षय को करने वाला है। अब इसी को आप बतलाइये ।।१, २।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—धर्मराज भी योषितों के वैलोम्य का आचरण नहीं किया करता है ; हे पतिव्रताओं के धर्म्म के ज्ञाता ! उसकी भी सदा वे पूज्या ही हुई हैं ।। ३ ।। यहाँ पर मैं आपको एक पापों के प्रणाश कर देने वाली कथा का वर्णन करता हूँ कि जिस प्रकार से एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता नारी के द्वारा अपना स्वामी मृत्यु के भी पाश से विमुक्त कर लिया गया था ।। ४ ।। पुरातन काल में मद्र देशों में एक शाकल राजा अश्वपति हुआ था। वह पुत्रहीन था तथा पुत्र के प्राप्ति को अभिलाषा रखने वाले उसने सर्व कामदा देवी को प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्य्या की थी ।। ५ ।। द्विजोत्तमों के द्वारा लक्षित होते हुए उसने

सावित्री देवी की समाराधना की थी । सिद्धार्थक द्विजों के द्वारा प्रतिदिन वह सावित्री देवी हूयमान हुई थी ।। ६ ।। वे द्विज शत संख्या वाले थे और जब दश मास व्यतीत हो गये तो चतुर्थी के दिन में समय आने पर उस मनुजेश्वर को सावित्री ने प्रत्यक्ष होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया था ।। ७ ।।

राजन् ! भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा ।
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम् ॥८
एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव ! ।
जगामादर्शनं देवी यथा वै नृप ! चञ्चला ॥९
मालती नाम तस्यासीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता ।
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः ॥१०
सावित्र्याहूतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा ।
सावित्री च भवत्वेषा जगाद नृपतिर्द्विजान् ॥११
कालेन यौवनं प्राप्ता ददौ सत्यवते पिता ।
नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम् ॥१२
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः ।
सकृत्कन्याःप्रदीयन्तेचिन्तयित्वानराधिपः ॥१३
तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे ।
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे ॥१४

सावित्री ने कहा—राजन् ! आप मेरे नित्य ही परम भक्ति करने वाले हैं । मैं भी अति प्रसन्न होकर तुमको एक सुता दूँगी । मेरे प्रसाद से दी हुई परम शोभन उस पुत्री को आप प्राप्त कर लेंगे ।। ८ ।। हे पार्थिव ! बस केवल इतना ही कहकर वह देवी प्रणाम करते हुए राजा के सामने से अदर्शन को प्राप्त हो गई थी जैसे विद्युत छिप जाया करती है ।। ९ ।। उस राजा की एक मालती नाम वाली पतिव्रता पत्नी थी उसने समय के सम्प्राप्त होने पर रूप लावण्य से साक्षात् सावित्री

देवी के सदृश तनया को प्रसूत किया था ।।१०।। समाहुत हुई सावित्री ने उसके ही रूप के समान उसे प्रदान किया था । राजा ने द्विजों से कहा था कि यह नाम से सावित्री ही होवे ।।११।। समय आने पर वह यौवन को प्राप्त हो गई थी और उसके पिता ने सत्यवान नाम वाले वर को उसका दान कर दिया था । इसके उपरान्त देवर्षि नारदजी ने दीप्त तेज वाले राजा से कहा था कि यह नृप का आत्मज एक ही वष में क्षीण आयु वाला हो जायगा । नराधिप ! भली भाँति विचार करके ही कन्या को एक ही वार प्रदान किया जाया करता है ।। १२ । १३ ।। तो भी उस राजा ने द्युमत्सेन के पुत्र को जो शुभ था अपनी कन्या सावित्री का दान कर दिया था । उस सावित्री ने भी नृप को मन्दिर में अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया था ।। १४ ।।

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा ।
शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशुरयोर्वने ॥१५
राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः ।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम् ।।१६
चतुर्थेऽहनि मर्तव्य तथा सत्यवता द्विजाः ! ।
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा ।।१७
चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने ।
चारुपुष्पफलाहारः सत्यवांसु ययौवनम् ।।१८
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा ।
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ॥१९
चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् ।
वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशांस्तथा ।।२०
आश्वासयामास सराजपुत्रीं क्लान्तांवनेपद्मविशालनेत्राम् ।
सन्दर्शनेनाथ द्रुमद्विजानान्तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ।।२१

श्री नारदजी के वाक्य से दूयमान हृदय से उस सावित्री ने बन

में अपने स्वामी और श्वशुर की अत्यधिक शुश्रूषा करती थी ।। १५ ।। राज्य से भ्रष्ट–चक्षुओं के नष्ट हो जाने वाले भार्या से संयुत नराधिप उस राजपुत्री स्नुषा को प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं हुए थे ।। १६ ।। हे द्विजगण ! सत्यवान को आज से चौथे दिन में मरना है। उस समय में उस राजसुता को श्वशुर ने अभ्यनुज्ञात किया था अर्थात् आज्ञा थी। उस समय में उस दिन के आने पर धर्म की ज्ञाता त्रिरात्र (व्रत) किया था। चारु पुष्प और फलों के आहार करने वाले सत्यवान् वन में चले गये थे। याचना के भङ्ग से भयभीत श्वशुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली वह सावित्री भी अपने स्वामी के साथ हो उस महान् वन को चली गयी थी। बहुत ही दुःखित चित्त से उस महान् भय को अन्दर ही छिपाती हुई उसने वन में भर्त्ता से और अस्पष्ट द्रुमों से पूछा था। वन में उसने परम क्लान्त–पद्म के समान विशाल नेत्रों वाली उस राजपुत्री को नृवीर ने विपिन में मृगों तथा द्रुमों और द्विजों (पक्षियों) के सन्दर्शन के द्वारा समाश्वासन दिया था ।। १७ । १८ । १९ । २० । २१ ।।

८७–सावित्री उपाख्यान (१)

वनेऽस्मिन् शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम् ।
नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्तं रतिवर्धन ॥१
वनेऽप्यशोकं दृष्टवैनं रागवन्तं सुपुष्पितम् ।
वसन्ती हसतीवाग्रं ममेवायतलोचने ! ।।२
दक्षिणे दक्षिणनेतां पश्च रम्यां वनस्थलीम् ।
पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तांज्वलितानलसप्रभैः ।।३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः ।
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोःक्लमनाशनम् ।।४

पश्चिमेन विशालाक्षि ! कणिकारैः सुपुष्पितैः ।
काञ्चनेन विभात्येषा वनराजीमनोरमा ।।५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली ।
रम्या सा चारुसर्वाङ्गी कुसुमोत्करभूषण ।।६
मधुमत्तालिझङ्कारव्याजेन वरवर्णिनी ।
चापाकृष्टिं करोतीव कामः पार्श्वे जिघांसया ।।७

सत्यवान् ने कहा—इस वन में जो शाद्वल से एकदम समाकीर्ण है मनोहर सहकार को तथा नेत्रों एव घ्राण को सुखकर–रति के वर्धन करने वाले वसन्त को देखो ।। १ ।। हे आयत लोचनों वाली ! यह वसन्त इस वन में राग से सुसम्पन्न और सुन्दर पुष्पों से समन्वित अशोक को देखकर मानों मेरा उपहास कर रहा है ।। २ ।। दक्षिण में दाहिनी ओर जलती हुई अग्नि की प्रभा के सदृश प्रभा वाले पुष्पित किंशुकों (ढाक के वृक्षों) से युक्त–परम रम्य इस वनस्थली को देखो ।। ३ ।। वन की पंक्ति से निकला हुआ सुगन्धित कुसुमों के आमोद (गन्ध) से युक्त यह वायु हम दोनों के क्लम के नाश करने वाले दाक्षिण्य को कर रहा है । ।। ४ ।। हे विशालाक्षि ! पश्चिम दिशा में यह परम मनोरम वनों की राजि सुन्दर पुष्पों वाले कणिकारों से काञ्चन के वण के तुल्य शोभित हो रही है ।। ५ ।। अतिमुक्त लताओं के जाल अवरुद्ध मार्गों वाली यह वनस्थली चारु (सुन्दर) सम्पूर्ण अङ्गों वाली तथा कुसुमों के उत्करों के भूषणों वाली वहरम्य ललना के तुल्य शोभा दे रही है ।। ६ ।। यह वरवर्णिनी के समान ही है और पार्श्व में कामदेव मारने की इच्छा से चाप का आकर्षण मानों कर रहा है ।।७।

फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता ।
विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली ।।८
कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः ।
गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव ।।९

पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनु सरिद्वने ।
कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः ॥१०
मञ्जरी सहकारस्य कान्तावच्चाग्रपीडिताम् ।
स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ॥११

काकः प्रसूता वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना ।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ॥१२
शुभाङ्गनिम्नमासाद्य दयितासहितो युवा ।
नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ॥१३

कलविङ्कस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गं समास्थितः ।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि ! उत्कण्ठयति कामिनः ॥१४

फलों के आस्वाद से शोभित मुख वाली कोयलों की ध्वनियों से विशेष नाद वाली—चारु तिलक से संयुत यह वनस्थली तुम्हारी ही तरह शोभित हो रही है ॥ ८ ॥ आम्र वृक्ष की शाखाओं के शिखर पर मज्जरी के पराग से पिञ्जर वर्ण वाली कोकिल अपनी मधुर ध्वनि से ही अपने चेष्टितों से कुलीन की भाँति ही प्रकटता को प्राप्त हुआ करता है ॥ ९ ॥ इस सरिता से समन्वित वन में यह महाकामी भौंरा पुष्पों के पराग से विशेष रूप से लिप्त अङ्गों वाली अपनी प्रिया के पीछे-पीछे गुञ्जार करता हुआ फूल से फूल पर जाया करता है । वन में युवा कोकिल बहुत प्रकार के पुष्पों से समन्वित होने पर भी कान्ता की भाँति अनुपीड़ित सहकार की मञ्जरी का आस्वाद लिया करता है ॥ १०, ११ ॥ यह कौआ वृक्ष के अग्रभाग में प्रसूता और पक्षों से आच्छादित पुत्रिका वाली अपनी प्रिया काकी (कौआ की पत्नी) को एकाग्र चौंच से प्यार करता है । ॥ १२ ॥ काम से समाक्रान्त हुआ—दयिता के साथ रहने वाला युवा कपिञ्जल शुभाङ्ग निम्न को प्राप्त कर आहार भी ग्रहण नहीं कर रहा है ॥ १४ ॥ हे विशालाक्षि ! अपनी प्रिया के उत्सङ्ग में संस्थित हुआ

रमण करने वाला कलविङ्क बारम्बार कामी पुरुष को उत्कण्ठित कर रहा है ॥ १४ ॥

वृक्षशाखां समारूढः शुकोऽयं सह भार्यया ।
करेण लम्बयन् शाखां करोति सफल शिरः ॥१५
वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः ।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ॥१६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्दरसंस्थितम् ।
ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहाभिन्नेव लक्ष्यते ॥१७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः ।
प्रीतिमायातिच तयालिह्यमानः स्वकान्तया ॥१८
उत्सङ्गकृतमूर्धानि निद्रापहृतचेतसम् ।
जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी ॥१९
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम् ।
नखदन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा ॥२०
शशकः शशकी चोभे ससुप्ते पीडिते इमे ।
संलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते ॥२१

वृक्ष की शाखा पर अपनी प्रिय भार्या के साथ समारूढ़ यह शुक अपने कर से शाखा को लम्बित करता हुआ शिर को सफल करता है। ॥ १५ ॥ इस वन में मांस के स्वाद से तृप्त हुआ सिंह निद्रा को उपागत हो गया है और उसकी कान्ता उस अपने भर्त्ता सिंह के चरणों के मध्य में लेटी हुई है ॥ ३६ ॥ पर्वत की कन्दरा में संस्थित दो व्याघ्रों के जोड़े को देखो जिन दोनों के नेत्रों की प्रभा के प्रकाश से गुहा भिन्न-सी हुई लक्षित हुआ करती है ॥ १७ ॥ यह हाथी अपनी जिह्वा के अग्र भाग से पुनः-पुनः अपनी प्रिया को चाट रहा है। और अपनी कान्ता के द्वारा जिस समय में वह स्वयं लिप्तमान होता है तो उसको परम प्रसन्नता हुआ करती है। यह बानरी गोद में मस्तक को रखने वाले तथा निद्रा से

अपहृत चेतना वाले अपने कान्त का जन्तुओं के उद्धरण के द्वारा सुखित ही किया करती है ।। १८ । १९ ।। यह मार्जार भूमि में पड़ी हुई और अपने उदर को दिखाने वाली अपनी रम्या पत्नी को नाखून और दशनों से उसका दंशन करता है किन्तु उसको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाता है ।। २० ।। ये शशक और शशकी दोनों पीड़ित होकर सो गये हैं। इनके गात्र और चरण संप्रक्त थे और कानों के द्वारा ही प्रकटता को प्राप्त होते हैं ।। २१ ।।

स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः ।
सम्भावयति तन्वङ्गींमृणालकवलैःप्रियाम् ।।२२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी ।
करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा ।।२३
दृढाङ्गसन्धिर्महिषः कर्दमाक्ततनुर्वने ।
अनुव्रजजि धावन्ती प्रियबद्धचतुष्करः ।।२४
पश्य चार्वङ्गि ! सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः ।
सभार्यंमांहिपश्यन्तं कौतूहलसमन्विम् ।।२५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम् ।
स्निहार्द्रभावात्कर्षन्त भर्त्तारं शृङ्गकोटिना ।।२६
द्रागिमाञ्चमरीं पश्य सितबालामगच्छतीम् ।
अन्वास्ते चमरः कामी माञ्चपश्यतिगर्वितः ।।२७
अतिपे गवयं पश्य प्रकृष्टं भार्यया सह ।
रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकङ्कुदि वारयन् ।।२८

पद्मों से आढ्य सरोवर में मदन प्रिय नाग अपनी तन्वङ्गी प्रिया को मृणाल क कावलों के द्वारा प्रणय का प्रदर्शन कर रहा है ।। २२ ।। अपने बच्चों के पीछे अनुगमन करने वाली वाराही अपने कान्त के प्रोत्थ समुत्थानों से कान्त के ही मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हुई मुस्तों से कवल किया करती है ।। २३ ।। वन में दृढ़ अङ्गों की सन्धि वाला—

कीच में अक्त शरीर वाला और प्रिय वद्ध चतुष्कर महिष धावन करती हुई महिषी के पीछे दौड़ लगा रहा है ।। २४ ।। हे चारु अङ्गों वाली ! तुम इस सारङ्ग को देखो जो अपने कटाक्षों के विभावनों से भार्या के सहित एवं कौतूहल से युक्त मुझको देख रहा है ।। २५ ।। स्नेह के आर्द्र भाव से अपने सींग की नौंक से स्वामी का कर्षण करती हुई रोही अपने पीछे के पैर से मुख को खुजला रही है—इसे भी देखलो ।। २६ ।। बहुत ही शीघ्र इस सित बालों वाली और गमन न करती हुई चमरी को देखिए । यह कामी चमर इसके पीछे है तथा अत्यन्त गर्वित होता हुआ मुझको देखता है ।। २७ ।। रोमन्थन करता हुआ ककुद पर कौए का निवारण करने वाले अपनी भार्या के साथ आतप में प्रकृष्ट इस गवय को देखलो ।। २८ ।।

पश्येमं भार्यया सार्द्ध न्यस्ताग्रचरणद्वयम् ।
विपुले वदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया ।।२९
हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम् ।
सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्च व श्रियमुद्वहन् ।।३०
सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः ।
करोति पद्मिनी कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरी ।।३१
मया फलोच्चयः सुभ्रु ! त्वया पुष्पोच्चयः कृतः ।
इन्धनं न कृत सुभ्रु ! तत्करिष्यामि सांप्रतम् ।।३२
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता ।
क्षणमात्रंप्रतीक्षस्व विश्रमस्वच भामिनि ।।३३
एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया ।
दूरं कान्त ! न कर्त्तव्योबिभेमि गहने वने ।।३४
ततःस काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं मेने च सा तं मृतमेव राजन् ।।३५

भार्या के साथ में रहने वाले—दोनों चरणों को आगे न्यस्त

करने वाले बेरों के खाने की कामना से विपुल बदरी स्कन्ध में दोनों चरणों को आगे रखकर स्थित इसको देखो ।। २९ ।। सुमुक्त इन्दु के बिम्ब की श्री को उद्वहन करते हुए भार्या के सहित सरोवर में सुनिर्मल विचरण करते हुए हंस को देख लो ।। ३० ।। भार्या के सहित रहने वाला यह चक्रवाक पक्षी जो कि इस कमलाकर (तालाब) के मध्य में गमन कर रहा है । वह अपनी सुन्दरी कान्ता को सुन्दर पुष्पों वाली पद्मिनी के समान कर रहा है ।। ३१ ।। हे सुभ्रु ! मैंने तो फलों का उच्चय किया है और तुमने पुष्पों का उच्चय किया है किन्तु हे सुभ्रु ! हममें से किसी ने भी ईंधन एकत्रित नहीं किया है सो अब मैं उसे करूँगा ।। ३२ ।। हे भामिनि ! तुम इस सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष की छाया में समाश्रित होकर रहो और एक क्षण के लिये मेरे आने की प्रतीक्षा करना ।। ३३ ।। सावित्री ने कहा—मैं जैसा भी आप कहते हैं वही करूँगी । आप मेरी दृष्टि से ही मार्ग में रहेंगे अर्थात् इतनी दूरी पर ही रहिए कि मैं आपको देखती रहूँ । हे कान्त ! आपको अधिक दूर नहीं जाना चाहिए । मैं गहन वन में डरती हूँ ।। ३४ ।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके पश्चात् उसने उस बन में काष्टों को एकत्रित किया था और उस समय में राजसुता के सामने ही किया था । हे राजन् ! उस सर के समीप में ही उस समय में उस सावित्री ने उसे मृत ही मान लिया था ।।३५।।

८८—सावित्री उपाख्यान (२)

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना ।
स वेदनार्तः सङ्गम्य भार्यां वचनमब्रवीत् ।।१
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ।

तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किञ्चन ।।२
त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् ।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिवः ।।३
तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाविललोचनः ।
पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका ।।४
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्वरधरं प्रभुम् ।।५
विद्युल्लतानिवद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलैश्च विराजितम् ।।६
हारभारार्पितोरस्कं तथाङ्गदविभूषितम् ।
तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा— काष्ठ का पाठन करते हुए उस के शिर में बड़ी वेदना समुत्पन्न हो गई थी । वह उस समय में उस वेदना से समुत्पीड़ित होकर अपनी भार्य्या सावित्री के समीप में आकर उससे यह वचन बोला—बिना आयास वाले इस काष्ठ-सञ्चय के कार्य करने से मेरे शिर में वेदना समुत्पन्न हो गई है । मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि किसी अन्धकार में मैं प्रवेश कर रहा हूँ—मैं कुछ भी नहीं जान पा रहा हूं कि क्या कारण है । अब तो मैं तुम्हारी गोद में अपना शिर रखकर सोना चाहता हूँ । वह पार्थिव उस राजपुत्री सावित्री से इस प्रकार से कह कर सो गया था ।।१, २, ३।। उसके उत्सङ्ग में अपना मस्तक रख कर वह निद्रा से आविल (मलिन) लोचनों वाला हो गया था । इसके अनन्तर उस महाभागा राज कन्या पतिव्रता ने स्वयं ही उस स्थल पर समात हुए धर्म्म राज को देखा था जो नील कमल के दल के समान श्याम वर्ण वाला—पीताम्बर धारी—विद्युल्लता से निवद्ध अङ्ग वाले जल से युक्त मेघ के सदृश था तथा सूर्य्य समान वर्ण वाले किरीट और कुण्डलों से शोभित था । वह धर्म्मराज उरःस्थल में हारों के भार से भूष था

तथा भुजाओं में अङ्गद धारण किये हुए था और उसके पीछे काल मृत्यु स्तथ में चला आ रहा था ।।४-७।।

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुष पाशबद्धं वशंगतम् ॥८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा ।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वातं गतजीवितम् ॥९
अनुवव्राज गच्छन्तन्धर्मराजमतन्द्रिता ।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ।।१०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्यातु मध्यमम् ।
गुरुं शुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते ।।११
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैतेत्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैतेसर्वास्तस्याफलाःक्रिया ।।१२
यावत्त्रयस्तेजीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ।।१३
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।।
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते ।। १४।।

वह धर्म्मराज उस स्थल पर आकर सत्यवान् के शरीर से उस समय में अंगुष्ठ मात्र जो लिङ्ग शरीरधारी पुरुष था उसको पाशवद्ध करके अपने वश में कर खींचकर शीघ्रता से दक्षिण दिशा की ओर उसी समय चल दिया था। वह वरारोहा सावित्री भी उस अपने स्वामी को जीवित रहित देखकर अतन्द्रित होती हुई उसी के पीछे अर्थात् गमन करने वाले धर्म्मराज के पीछे २ चल दी थी। इसके उपरान्त वह हाथ जोड़ कर काँपते हुए हृदय से यह बोली—॥८, ९, १०।। यह जीवात्मा माता की भक्ति से इस लोक को—पिता की भक्ति से मध्यम को और गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है। उस पुरुष ने सभी धर्मों

का समादर कर लिया है जिसने इन तीनों ऊपर बताये हुए धर्मों को पूर्ण कर लिया है। जिसने इन तीनों का आदन नहीं किया है उसकी समस्त अन्य क्रियाऐं बिल्कुल ही फलहीन हुआ करती हैं। जब तक ये तीनों ही जीवित हैं तब तक अन्य किसी का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो प्रिय के हित में रत है उसे उनकी नित्य ही शुश्रूषा करनी चाहिए। उनके अनुपरोध से जब भी पारतन्त्र्य का आचरण करे वह—वह सब उनको मन वचन और कर्म के द्वारा निवेदन कर देना चाहिये। पुरुष का इन तीनों में भी पूर्ण कृत्य स्थित रहा करता है ।।११-१४।।

कृतेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मा न तेभ्योऽपि हि उच्यते।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ।।१५
गुरुपूजारतिर्भक्ता त्वञ्च साध्वी पतिव्रता।
विनिवर्त्तस्व धर्मज्ञे ! ग्लानिर्भवति तेऽधुना ।।१६
पतिर्हि दैवत स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः ।।१७
मितन्ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत् ।।१८
नीयते यत्र भर्त्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम ! ।।१९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव ! न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्।।२०
मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याक्षरदूषिता।
मुहूर्त्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता ।।२१

कृत काम से अब तुम अति शीघ्र निवृत हो जाओ उनके लिये भी धर्म्म नहीं है—यह कहा जाता है। मेरा उपरोध और तुम्हारा क्लम (श्रम) होगा। अब इसी कारण से मैं बोलता हूँ ।।१५।। आप तो गुरुवर्ग की पूजा में रति वाली—भक्त—साध्वी और परम पतिव्रता हैं। हे धर्मज्ञे ! यहां

आप वापिस लौट जाइये । अब आपको बहुत ग्लानि हो रही है ।।१६।। सावित्री ने कहा – स्त्रियों का परम देवता पति ही होता है और पति ही परायण होता है । अतएव साध्वी स्त्री के द्वारा प्राण धनेश्वर पति का सर्वदा अनुगमन करना चाहिए ।।१७।। स्त्री को उसका पिता परिमित ही दिया करता है – भाई और सुत भी स्त्री को परिमित ही दिया करते हैं । अपरिमित का दाता अपने स्वामी का पूजन कौन सी स्त्री नहीं करेगी ? ।।१८।। हे सुरोत्तम ! जहां पर मेरे स्वामी को ले जाया जा रहा है अथवा स्वय आप जहां पर जा रहे हैं । मुझको भी यथा शक्ति वहीं पर जाना चाहिए ।।१९।। जब मैं मेरे पति को लेकर गमन करने वाले आपका हे देव ! मैं अनुगमन नहीं कर सकूंगी तो मैं अपने भी जीवन का त्याग कर दूंगी ।।२०।। जो कोई भी मण्डन के योग्य मनस्विनी स्त्री जब वैधव्य के अक्षरों से दूषित होकर अमण्डित हो जाती है तो वह एक मुहूर्त्त भर भी जीवित रहेगी ? ।।२१।।

पतिव्रते ! महाभागे ! परितुष्टोऽस्मि ते शुभे ! ।
विना सत्यव्रतःप्राणैर्वरंवरय माचिरम् ।।२२
विनष्टचक्षुषोराज्यञ्चक्षुषा सह कारय ।
च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ ! श्वशुरस्य महात्मनः ।।२३
दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमःस्यात्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि ।।२४

यमराज ने कहा—हे पतिव्रते ! हे महान् भाग वाली ! हे शुभे ! मैं तुम से बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूं । अब तुम सत्यवान् के प्राणों के बिना अन्य कोई भी वरदान मुझसे माँग लो और अधिक विलम्ब मत करो ।। २२ ।। सावित्री ने कहा—हे धर्म्मज्ञ ! विनष्ट नेत्रों वाले मेरे महान् आत्मा वाले श्वशुर की जिनका कि राज्य च्युत हो गया है अब आप उनको आँखों के सहित पुनः राज्य प्राप्त करा दीजिये ।। २३ ।। यमराज । कहा—हे भद्रे ! दूर मार्ग मे तुम चली जाओ और वापिस

लौट जाओ । जो आपने कहा है वह सभी कुछ हो जायगा । अब मेरी ओर से रोक होगी और तुमको परिश्रम होगा इसीलिए मैं उक्त तुमसे यह कह रहा हूँ ॥ २४ ॥

८९—सावित्री उपाख्यान (३)

कुतः क्लमः कुतो दुखः सद्भिः सह समागमे ।
सतान्तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम ! ॥१
साधूनां वाप्यसाधूनां सन्त एव सदागतिः ।
नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः ॥२
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम् ।
अकारणं जगद्वैरिखलेभ्यो जायतेयथा ॥३
सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा ।
तथाऽसन्तोऽपि सन्त्यज्य परपीड़ासु तत्पराः ॥४
त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद्यस्य कारणात् ।
परोपघातशक्तास्तं परलोकन्तथा सतः ॥५
निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः ।
असतामुपघाताय राजान ज्ञातवान् वयम् ॥६
नरान् परीक्षयेद्राजा साधून् सम्मानयेत्सदा ।
निग्रहश्चासतांकुर्यात्सलोके लोकजित्तमः ॥७

सावित्री ने कहा—सत्पुरुषों के साथ समागम होने पर दुःख कहाँ है और क्लम भी कहाँ है । हे सुरोत्तम ! आपके समीप में जो कि सत्पुरुष हैं मुझे तो बिल्कुल भी ग्लानि नहीं होती है ॥ १ ॥ साधु पुरुष हों अथवा असाधु जन हों इन सबकी सन्त ही सदा गति हुआ करते हैं अर्थात् सबका उद्धार सन्त ही किया करते हैं । जो असन्त हैं वे न तो

सत्पुरुषों का—न असत्पुरुषों का और अपने आपका ही उद्धार किया करते हैं असन्तों में उद्धार करने की कोई भी क्षमता ही नहीं हुआ करती है ॥ २ ॥ विष—अग्नि—सर्प और शस्त्र से उतना भय नहीं होता है जैसा बिना ही कारण के इस जगत् के वैरी खलों से भय उत्पन्न हो जाया करता है। सन्त पुरुष तो अपने प्राणों का भी परित्याग करके सदा दूसरों के अर्थ को किया करते हैं उसी भाँति असन्त पुरुष भी प्राणों तक परित्याग कर दूसरों को पीड़ा देने में परायण रहा करते हैं ॥३, ४॥ यह लोक जिसके कारण से प्राणों को तिनके के समान त्याग देता है। उसी प्रकार से सत्पुरुष जो परायों उपघात में समर्थ होते हैं वे परलोक को भी त्याग दिया करते हैं ॥५॥ उसी प्रकार से इस जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी ने निकाय—निकायों में असत्पुरुषों के उपघात के लिये स्वयं ही राजा को ज्ञात किया है ॥६॥ राजा का कर्त्तव्य है कि वह नरों की परीक्षा करे और सदा साधुपुरुषों का सम्मान करना चाहिए। जो राजा असत्पुरुषों का निग्रह किया करता है और उसको ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उसका यह कर्त्तव्य भी है वही इस लोक में लोकों का परम श्रेष्ठ जेता होता है ॥७॥

निग्रहेणासतां राजा सताञ्च परिपालनम् ।
एतावदेव कर्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना ॥८
राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतोपते !
असतां निग्रहादेव सताञ्च परिपालनात् ॥९
राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् ।
तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिनभासि मे ॥१०
जगत्तु धार्यतेसद्भिःसतामग्र्यस्तथाभवान् ।
तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमादेव ! न विद्यते ॥११
तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसंगतैः ।
विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम् ॥१२

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो ! ।
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ॥१३
तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ! ।
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुःसमाचर ॥१४

असतों का निग्रह और सत्पुरुषों का परिपालन करने से वह वस्तुतः राजा कहलाने के योग्य होता है जो स्वर्ग की प्राप्ति करने का इच्छुक है उस राजा का यही इतना कर्तव्य होता है । हे जगतीपते ! लोकों में राजा का यही कृत्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है असतों का निग्रह और सतों के परिपालन का कर्त्तव्य ही तो राजाओं का कार्य हुआ करता है । राजाओं के द्वारा भी जो शासित नहीं होते हैं उन असतों के सबके शासन करने वाले फिर आप होते हैं । इसी कारण से मुझे तो समस्त देवों से भी अधिक देव आप ही प्रतीत हो रहे हैं । ॥८।९।१०॥ यह जगत् तो सत्पुरुषों के द्वारा ही धारण किया जाता है और उन सत्पुरुषों में आप सब प्रधान हैं । इसी कारण से आपके पीछे अनुगमन करने वाली मुझको हे देव ! कोई भी क्लम नहीं होता है । यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे इन धर्म्मसङ्गत वचनों से मैं तुमसे परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ । सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर अन्य जो भी आप चाहें वह वरदान मुझसे माँगलो । विलम्ब मत करो ॥ ११ । १२ ॥ सावित्री ने कहा—हे विभो ! मैं अपने सौ सहोदरों के प्राप्त करने की कामना रखती हूँ । मेरे पिता सन्तान हीन हैं सो वे पुत्रों के लाभ से प्रसन्न हो जावें । फिर यमराज ने उस सावित्री से कहा—हे अनिन्दिते ! अब तुम जिस मार्ग से आई हो वापिस चली जाओ और अपने स्वामी के और्ध्व देहिक कार्यों के करने में यत्न करो ॥ १३, १४ ॥

नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः ।
पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तंमम यास्यसि ॥१५

गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे ! तथा सत्यवतो महत् ।
पुण्यं समर्जितं येन न याम्येनमहं स्वयम् ॥१६
एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ! ॥१७
तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने ।
पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे ! ॥१८
तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ! ।
पुरुषाः स्वगमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ॥१९
आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्तेनात्यवमन्तव्या ब्राह्मणा न विशेषतः ॥२०
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ॥२१

दूसरे लोक में गये हुए इसका अनुगमन तुम नहीं कर सकती हो। तुम पतिव्रता हो इसी कारण से मुहूर्त्त मात्र मेरे साथ चल सकोगी। हे भद्रे ! गुरुओं की सेवा से इस सत्यवान् ने महान् पुण्य का अर्जन किया है और इसी कारण से मैं स्वयं ही इसको ले जा रहा हूँ ॥१५, १६॥ हे वरवर्णिनि ! विशेष ज्ञान वाले पुरुष का इतना ही कर्त्तव्य हुआ करता है कि वह माता-पिता और गुरु की शुश्रूषा करता रहे ॥१७॥ इस सत्यवान् ने सदा वन में इन तीनों को परम सन्तुष्ट किया है और समर्चित किया है। इसने स्वर्ग को जीत लिया है और तुमने भी ऐसा ही चिरकाल तक हे शुभे ! किया है ॥१८॥ हे शुभे ! तपश्चर्या से—ब्रह्मचर्य से—अग्नि शुश्रूषा से तथा गुरु वर्ग की सेवा से पुरुष स्वर्ग मे आया करते हैं ॥१९॥ आचार्य—पिता—माता—पूर्वज भ्राता और विशेष रूप से ब्राह्मण इनका आर्त्त दशा में भी पुरुष को कभी अपमान नहीं करना चाहिए ॥२०॥ यह आचार्य्य साक्षात् ब्रह्मा की मूर्त्ति है—पिता प्रजापति की मूर्त्ति है—

माता पृथिवी की मूर्त्ति है और भाई तो अपनी आत्मा की ही मूर्त्ति होता है ॥ २१ ॥

जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादार्यस्य तु सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२३
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ।
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्य समाचरेत् ॥२४
तएव हि त्रयो लोकास्तएव त्रय आश्रमाः ।
तएव च त्रयोवेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२५
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ॥२६
त्रिषु प्रमाद्यते नैषु त्रीन् लोकान् जयते गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात् तथाऽधुना तेन तवब्रवीमि ॥८८

मनुष्यों के समुत्पन्न होने में उसके माता-पिता जन्म से ही पूर्ण क्लेश को सहा करते हैं उस क्लेश की निष्कृति मनुष्य सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता है ॥२२॥ अतएव मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य होता है कि उनका नित्य ही उसे प्रिय करना चाहिए तथा जो आचार्य्य हो उसका भी सर्वदा प्रिय करे। इन तीनों के तुष्ट होने पर ही मनुष्य का सभी प्रकार का तप समाप्त हो जाया करता है। वे तीनों ही उसके तीन लोक हैं—ये तीनों उसके तीन आश्रम हैं—वे तीनों ही तीन वेद हैं तथा ये ही तीन मनुष्य की तीन अग्नियां हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि—माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीय अग्नि है। ये ही सबसे बड़ी तीन अग्नियों वाला वह माना जाता है। इन तीनों के विषय में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो इस कर्तव्य का पालन करता है वह गृही तीनों लोकों

को जीत लिया करता है और अपने शरीर की कान्ति से वह दीप्यमान होता हुआ देव के ही समान दिवलोक में आनन्द का अनुभव किया करता है ।।२३-२७।। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! कृत काम से निवृत हो जाओ जो तुमने कहा है वह सम्पूर्ण हो जायगा । मेरी ओर से उपरोध होगा और तुमको क्लम होगा । इसी से तुमसे यह मैं बोलता हूँ ।।२८।।

६०—सावित्री उपाख्यान (४)

धर्माजने सुरश्रेष्ठ ! कुतो ग्लानि: क्लमस्तथा ।
त्वपादमूलसेवा च परम धमकारणम् ।।१
धर्मार्जनन्तथा काय पुरुषेण विजानता ।
तल्लाभ: सवलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते ।।२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मन: फलम् ।
धर्महीनस्य कामार्थौ बन्ध्यासुतसमो प्रभो ! ।।३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा ।
धर्मएकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचन गामिनम् ।।४
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ।
एको हि जायते जन्तुरेकएव विपद्यते ।।५
धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवा: ।
क्रियासौभाग्यलावण्यं सर्व धर्मेण लभ्यते ।।६
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रशर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम् ।
वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोका: सवकामदा: ।।७

हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म्म के अर्जन करने में ग्लानि और क्लम क्यों होगा ? आपके चरणों की मूल सेवा ही परम धर्म का कारण है ।। १ ।। विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष का उसी भाँति से धर्म का अर्जन करना

चाहिए। हे देव ! जबकि उस धर्म्म का लाभ सभी प्रकार के लाभों से विशिष्ट हुआ करता है ।।२।। धर्म्म—अर्थ और काम यही त्रिवर्ग मनुष्य जन्म का परम फल होता है । हे प्रभो ! जो धर्म्म से हीन पुरुष है उसके काम और अर्थ वन्ध्या के सुतों के ही समान हुआ करते हैं ।।३।। धर्म से अर्थ तथा काम और धर्म्म से दोनों लोक होते हैं । जहां पर भी यह गमन करता है उसके पीछे एक धर्म्म ही अनुगमन किया करता है ।।४।। अन्य सभी कुछ शरीर के ही साथ में नाश को प्राप्त हो जाया करता है। यह जन्तु एक ही अकेला समुत्पन्न हुआ करता है और एक ही अकेला मृत्यु को प्राप्त होता है ।।५।। जब यह मृत्युगत होता है तो उस समय में केवल एक मात्र धर्म्म ही उसका अनुगमन किया करता है । उस समय में न तो कोई मित्र साथ में जाया करता है और न बान्धव ही उसके साथ जाते हैं । क्रिया—सौभाग्य और रूप लावण्य ये सभी कुछ धर्म्म के द्वारा ही प्राप्त किये जाया करते हैं ।।६।। ब्रह्मा—इन्द्र—उपेन्द्र—शर्व—इन्दु-यम—अर्क—अग्नि—अनिल—जल—वसु—अश्विनी कुमार और धनद आदि के जो समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले लोक हैं इनकी प्राप्ति मनुष्य धर्म्म के ही द्वारा किया करता है । हे पुरुषों के अन्त करने वाले ! धर्म से ही मनोहर द्वीप और सुन्दर सुख देने धनों को यह पुरुष प्राप्त करता है ।।७।।

धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक ! ।
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च ।।८
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिकाः ।
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानियानि च ।।९
तानि पण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठन्तथा नरैः ।
विमानानि विचित्राणि तथवाप्सरसःशुभाः ।।१०
तजसानि शरीराणिसदा पुण्यवतांफलम् ।
राज्यं नृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेप्सिता ।।११

संस्काराणि च मुख्यानि फलंपुण्यस्य दृश्यते ।
रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानिच ॥१२
चामराणि सुराध्यक्ष ! भवन्ति शुभकर्मणाम् ।
पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना ॥१३
धार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा ।
जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिः स्वनैः ॥१४

मनुष्य धर्म्म के द्वारा ही नरगण्डिका को प्राप्त किया करते हैं और नन्दन आदि मुख्य देवों के जो उद्यान हैं उनमें चले जाया करते हैं । पुण्य के द्वारा ही इन सबकी प्राप्ति होती है तथा मनुष्यों के द्वारा नाक-पृष्ठ को भी प्राप्त किया जाता है । विचित्र विमान तथा परम शुभ अप्सराऐं और तैजस शरीर आदि सब सदा पुण्य वालों का ही फल है । राज्य-नृपतियों के द्वारा पूजा—ईप्सित काम सिद्धि एवं मुख्य संस्कार यह सभी पुण्य का ही फल दिखलाई देता है । हे सुराध्यक्ष ! सावर्ण एवं वैदूर्य के दण्ड जो कि सूर्य के ही समान हैं और चामर इन सबकी प्राप्ति होना शुभ कर्म्मों का ही फल होता है । पूर्ण चन्द्र की आभा वाले और रत्नांशुक विनाशी छत्र के धारण करने का अवसर मनुष्य पुण्य कर्म्म के द्वारा ही प्राप्त किया करता है । जयकार बतलाने वाले शखों के स्वर-समूह से तथा सूत और मागधों की ध्वनियों से समन्वित भी मनुष्य पुण्य कर्म्म से ही होता है ॥ ६– ४ ॥

वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणः ।
वरान्नपानं गीतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ॥१५
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः ।
रूपौदार्यगुणोपेतास्त्रियश्चातिमनोहरा ॥१६
वासः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणः ।
सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः । १७
वहन्ति तुरगा देव नरं पुण्येन कर्मणा ।

तस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दमः क्षमाः ॥१८
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुभरणं शुभम् ।
स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवासः सुरार्चनम् ॥१६
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचयममत्सरम् ॥२०
तस्माद्धर्मः सदा कार्योनित्यमेव विजानता ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य च वा कृतम् ॥२१

भृङ्गार के सहित बरासन भी पुण्य कर्म्म का फल होता है। श्रेष्ठ अन्न—पान—गीत—नृत्य—माल्य और अनुलेपन—रत्न और वस्त्र इस प्रकार की मुख्य वस्तुऐं प्राप्त होना भी परम पुण्य कर्म्म का फल होता है। रूप लावण्य एवं अनेक सद्गुणों से सम्पन्न अतीव मनोहर स्त्रियाँ—बड़े महलों में निवास शुभ कर्म्म वालों को ही होता है। हे देव! सुवर्ण की किंकणी से मिश्रित चामर एवं आपीड़ के धारण करने वाले तुरग मनुष्य को पुण्य कर्म से वहन किया करते हैं। उस पुरुष के द्वार—यजन - तप—दान—क्षमा- -ब्रह्मचर्य्य—सत्य—शुभ तीर्थानुभरण—स्वाध्याय—साधु सेवा—सहवास—सुरों का अर्चन—गुरुवर्ग की सुश्रूषा—ब्राह्मणों का अभ्यर्चन—इन्द्रियों के ऊपर विजय—मत्सरता का अभाव—इन सबकी प्राप्ति पुण्य कर्म्म के द्वारा हुआ करती है ॥ १५, १६, १७, १८, १६, २० ॥ इस कारण से ज्ञानवान पुरुषों को नित्य ही धर्म्म का समाचरण करना चाहिए क्योंकि मृत्यु इसके कृत तथा अकृत की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं किया करती है ॥२१॥

बालएवचरेद्धर्ममनित्यं देव ! जीवितम् ।
कोहि जानाति कस्याद्यमृत्युरेवापतिष्यति ॥२२
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम् ।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ! ॥२३
युवत्वापेक्षया बालोवृद्धत्वापेक्षया युवा ।

मृत्योरुत्सङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते ।।२४
तत्रापि विण्ड(न्द)तस्त्राणं मृत्युनातस्यका गतिः ।
न भयंमरणञ्चैवप्राणिनामभय क्वचित् ॥
तत्रापि निर्भयाः सन्तः सदा सुकृतकारिणः ।।२५
तुष्ठोऽस्मितेविशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसङ्गतैः ।
विना सत्यवतः प्राणान् वरंवरयमाचिरम् ।।२६
वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम् ।
अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते ।।२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि ।।२८

हे देव ! बालक को ही नित्य धर्म्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि यह जीवित अनित्य है । कौन जानता है कि किसकी मृत्यु आज ही आ जायगी । इस लोक के देखते ही हुए मौत सामने स्थित रहा करती है । हे सुरोत्तम ! देव के समान इसका चरित होता है—यही महान् आश्चर्य की बात है । युवावस्था में स्थित की अपेक्षा बालक और वृद्धता की अपेक्षा युवा इस मृत्यु की गोद में समारूढ़ हो रहा है । जो एकदम स्थविर है वह फिर किस अवस्था की अपेक्षा किया करता है । ।। २ , २३, २० ।। उस दशा में भी मृत्यु के द्वारा त्राण की प्राप्ति करने वाले उसकी क्या गति होगी । मरण भय नहीं है । प्राणियों को अभय कहा है । जो सुकृत के करने वाले हैं वे वहाँ पर भी सदा सन्त पुरुष निर्भय होते हैं ।। २५ ॥ यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि ! तुम्हारे धर्म्म से सङ्गत वचनों से अत्यन्त ही परितुष्ट हो गया हूँ किन्तु सत्यवान के प्राणों को छोड़कर शीघ्र ही मुझसे कोई सा वरदान माँगले । सावित्री ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा दिये हुए सौ औरस पुत्रों का वरदान मैं चाहती हूँ क्योंकि जो सन्तान से हीन है उसकी लोकों में कोई भी गति नहीं है । यमराज ने कहा—हे भद्रे ! अब तेरा काम पूर्ण हो गया है

तुम वापिस लौट जाओ । जो भी तुमने कहा है वह सभी हो जायगा । साथ चलने में मेरा उपरोध (रुकावट) है और तुमको व्यर्थ श्रम होता है । इसी से मैं तुमसे यह बोल रहा हूँ ।। २६, २ , २८ ।।

६१–सावित्री उपाख्यान (५)

धर्मामर्मविधानाज्ञ ! सर्वधर्मप्रर्त्तक ! ।
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनोयमः ।।१
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः ।
तस्माद्वै प्रोच्यसे देव ! यम इत्येव नामतः ।।२
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो ! ।
तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते ।।३
सुकृतं दुष्कृतंचोभे पुरोधाय यदाजनाः ।
त्वत्सकाशमृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे ।।४
कालं कलार्द्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि ।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः ।।५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान् ।
तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते ! ।।६
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः ।
तस्मताद्वैवस्वतोनाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यते ।।७

सावित्री ने कहा—हे सब धर्मों के प्रवत्तक ! आप तो धर्म के मर्म का जो विधान है उसके ज्ञाता हैं और आप ही इन जगतों के नाथ हैं तथा प्रजाओं के संयमन करने वाले यम हैं ।। १ ।। कर्मों के अनुरूप जिस कारण से आप प्रजाओं का यमन किया करते हैं हे देव ! इसी कारण से "यम"—इस नाम से आपको पुकारा जाया करता है । हे

प्रभो ! क्योंकि धर्म्म के द्वारा इन समस्त प्रजाओं का आप रञ्जन किया करते हैं इसी से सत्पुरुषों के द्वारा आप "धर्मराज"—इस नाम से पुकारे जाया करते हैं ।। २, ३ ।। जब मनुष्य सुकृत और दुष्कृत इन दोनों को आगे रखकर मृत्युगत होकर आपके समीप में जाया करते हैं इसी कारण से आपको "मृत्यु"—इस नाम से कहा जाया करता है । काल को कलार्द्ध कलन करते हुए सबके मध्य में आप स्थित रहा करते हैं इसी कारण से तत्त्वदर्शियों के द्वारा "काल"—यह नाम आपका कहा जाता है । क्योंकि सभी प्राणियों के आप महान् अन्त कर देने वाले हैं इसी कारण से हे महाद्युते ! समस्त देवों के द्वारा आपको अन्तक कहा गया है । आप विवस्वान् के पुत्र प्रथम कहे गये हैं इसीलिये समस्त लोकों में 'वैवस्वत''—इस नाम से आपको कहा जाता है ।।४–७।।

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभञ्जनम् ।
तदा त्वं कथ्यसे लोके सवप्राणिहरेतिवै ।।८
तव प्रसादाद्देवेश ! सङ्करो न प्रजायते ।
सतां सदा गतिर्देव ! त्वमेव परिकीर्तितः ।।९
जगतोऽस्यजगन्नाथ ! मर्यादापरिपालकः ।
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ ! दुःखतांशरणागताम् ॥
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ।।१०
स्तवेन भक्त्याधर्मज्ञ ! मया तुष्टेन सत्यवान् ।
तव भर्ता विमुक्तोऽयंलब्धकामाव्रजाबले ! ।।११
राज्यं कृत्वा त्वया सार्द्धं वत्सराशीतिपञ्चकम् ।
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सहरंयते ।।१२
त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्यवान् जनयिष्यति ।
ते चापिसर्वे राजानःक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः । १३
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्राख्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ।।१४

आयुष्य में कर्म के क्षीण होने पर आप मनुष्य को बलपूर्वक ग्रहण किया करते हैं उस समय में लोक में आप "सर्व प्राणिहर" इस नाम से कहे जाते हैं। हे देवेश ! आपके प्रसाद से सङ्कर नहीं होता है। हे देव ! सत्पुरुषों की सदा आप ही गति कीर्त्तित किये गये हैं। हे जगन्नाथ ! आप इस जगत् के मर्यादा के परिपालक हैं। हे देवों में परमश्रेष्ठ ! शरणागति में समागत दुःखिता मेरी रक्षा करो। इस राजपुत्र के माता पिता इसी भाँति परम दुःखित हो रहे हैं ।। ८, ९, १० ।। यमराज ने कहा—हे धर्मज्ञे ! तेरे इस स्तव से और भक्तिभाव से तुष्ट हुए मेरे द्वारा तेरा स्वामी सत्यवान् छोड़ दिया गया है। हे अबले ! अवलब्ध काम वाली तुम यहाँ से चली जाओ। यह अब तेरे साथ राज्य का सुख भोग कर पिचासी वर्ष तक जीवित रह कर फिर अन्त में स्वर्ग पर समारोहण कर देवों के साथ रमण करेगा। यह सत्यवान् तुझमें सौ पुत्र समुत्पन्न करेगा। वे भी सब देवताओं के समान क्षत्रिय राजा लोग होंगे। तुम्हारे नाम से पुत्रों की आख्या वाले प्रमुख एवं शाश्वत होंगे और तुम्हारी माता में तुम्हारे पिता से भी एक सौ पुत्र उत्पन्न होंगे ।। ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ ।।

मालव्यां मालवानामशाश्वताःपुत्रपौत्रिणः ।
भ्रातरस्ते भविष्यन्तिक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ॥१५
स्तोत्रेणानेनधर्मज्ञे ! कल्पमुत्थाय यस्तु माम् ।
कीर्तयिष्यति तस्यापिदीर्घमायुर्भविष्यति ।।१६
एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा ।
अदर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्द्धं सह मृत्युना च ।।१७

मालवों के नाम वाले मालवी में शाश्वत पुत्र एवं पौत्र होंगे। वे वेदों के समान उपमा वाले क्षत्रिय तेरे भाई होंगे। हे धर्मज्ञे ! जो पुरुष प्रातःकाल में उठकर इस स्तोत्र के द्वारा मेरा कीर्त्तन करेगा उसकी भी दीर्घ आयु हो जायगी ।। १५ । १६ ।। मत्स्य भगवान् ने कहा—इतना

कहकर महात्मा भगवान् यमराज ने उस राजपुत्र को छोड़कर वही पर वह यमराज काल और मृत्यु के साथ ही अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ।। १७ ।।

६२–सावित्री उपाख्यान (६)

सावित्री तु ततः साध्वीजगामवरवर्णिनी ।
यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान् मृतः ॥१
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः ।
कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे ॥२
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः ।
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ! ॥३
ततः प्रत्यागप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् ।
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ॥४
न जानामिवरारोहे ! कश्चासौपुरुषःशुभे ।
वनेऽस्मिन्चारुसर्वाङ्गि ! सुप्तस्यचदिनंगतम् ॥५
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया ।
अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ।।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु ! गगने त्वरिता भव ॥६

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर वर वर्णिनी साध्वी सावित्री जैसे २ मार्ग से गयी थी और जहाँ पर मृत सत्यवान् था वैसे ही वह चली गयी थी। उसने अपने स्वामी को प्राप्त करके जिसका शिर उसके गोद में था इस तरह से उसके शिर को रखकर दिवाकर के लम्बमान होने पर उस तन्वङ्गी ने उस स्थल पर प्रवेश किया था ।। १ ।। ।। २ ।। सत्यवान् का जीवात्मा धर्मराज से धीरे धीरे निर्मुक्त होकर हे नराधिप ! उसने नेत्रों का उन्मीलन किया था और वह प्रस्फुरित हुआ।

इसके पश्चात् प्रत्यागत प्राण वाला वह होकर अपनी प्रिया से यह वचन बोला—वह पुरुष कहाँ चला गया जो मुझको भी अपकर्षित कर रहा है। हे वरारोहे ! हे शुभे ! मैं नहीं जानता हूं यह कौन पुरुष था। हे चारु-सर्वाङ्गि ! आज इस वन में सोते हुए मुझको पूरा दिन व्यतीत हो गया है। मैंने उपवास से परिश्रान्त आपको भी दुःखित किया है। हमारे बुरे हृदय से आज हमारे माता–पिता भी बहुत दुःखित हुए हैं। हे सुभ्रु ! मैं माता-पिता के दर्शन करना चाहता हूँ अब गमन करने में शीघ्रता वाली हो जाओ। ३–६ ॥

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो ! ।
आश्रमन्तु प्रयास्यावः श्वशुरौहीनचक्षुषौ ॥७
यथा वृत्तञ्च तत्रैव शृणु वक्ष्ये यथाश्रमे ।
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ ॥८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा ।
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः ॥९
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव ! ।
प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषाञ्चैवाथ कर्शिताम् ॥१०
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः ।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह कानने ॥११
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा ।
ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुङ्गवम् ॥१२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दनः ।
अभिवाद्य ततः सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान् ॥१३
उवास तत्र मां रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित् ।
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता ॥१४

सावित्री देवी ने कहा—हे प्रभो ! भगवान् सूर्य के अस्तता को प्राप्त होने पर यदि आपको पसन्द हो तो आश्रम में चलेंगे सास श्वशुर

तो दोनों हीन नेत्रों वाले हैं। जिस प्रकार से जो कुछ हुआ है वह सब आश्रम में ही बतलाऊंगी उसका श्रवण करना ! इस तरह से अपने भर्त्ता से इतना मात्र कहकर स्वामी के साथ ही उसी समय में वह सावित्री चली गयी थी ॥ ७। ८ ॥ वह नृपात्मजा भर्त्ता के आश्रम में प्राप्त हो गई थी। इसी समय में नेत्रों को प्राप्त करने वाला वह महीपति द्युमत्सेन भार्य्या के सहित हे भार्गव ! परितृप्त हुआ था क्योंकि उसने अपने प्रिय पुत्र को और अपनी परम कृश पुत्र वधू को देखा था। वह राजा वहाँ पर तपस्वियों के द्वारा समाश्वस्त होता हुआ स्नुषा के साथ वन में आये हुए पुत्र को देखा था। वह वर आरोह वाली सावित्री ने उस समय में सत्यवान के साथ वहाँ आकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ भार्या के सहित राजा की वन्दना की थी। तब वह राजनन्दन सत्यवान् अपने पिता के द्वारा भली भाँति आलिङ्गन किया गया था। इसके अनन्तर उसने वन में उन समस्त तपोधनों का अभिवादन किया था। वह सब धर्म का वेत्ता उस रात्रि में उन ऋषियों के साथ वहीं पर रहा था और इसके उपरान्त सावित्री ने भी जो परम आनिन्दित थी जो कुछ भी घटित हुआ था वह सारा हाल कहकर सुना दिया था ॥ ६–१४ ॥

व्रतं समापयामास तस्यामेव यथानिशि।
ततस्तुर्यैस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः ॥१५
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे।
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम् ॥१६
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम्।
अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरेनृपः ॥१७
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा वलेनचतुरङ्गिणा।
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान् महात्मनः ॥१८
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना।
एवम्पतिव्रता साध्वीपितृपक्षं नृपात्मजा ॥१९

उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च।
मोक्षयामास भर्तारं मृत्युपाशगतं तदा ॥२०
तस्मात्साध्व्य: स्त्रिय: पूज्या: सततं देववन्नरैः।
तासां राजन् ! प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम् ॥२१
तासान्तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु।
तस्मात्सदा ताः परिपूजनीयाः कामान् समग्रानभिकामयानैः ॥२२

उसी रात्रि में जो महाव्रत ग्रहण किया था उसको समाप्त किया था। इसके अनन्तर सभी जन उस राजा की स्त्रियों के समीप में सेना के सहित तुर्य वाद्यों से समन्वित राज्यार्थ के लिये निमन्त्रण में वहाँ पर समागत हुए और उस समय में उन्होंने प्रकृति शासन को विज्ञापित किया था। हे नृपते ! नेत्रहीन आपका जिसने पहिले राज्य अपहृत किया था उस राजा को आपके ही अमात्यों ने मार डाला है और अब आप ही उस पुर के राजा हैं। यह श्रवण करके वह राजा द्युमत्सेन चतुरङ्गी बल के साथ वहाँ पर चला गया था और महात्मा धर्मराज से अपने सम्पूर्ण राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था। वराङ्गना सावित्री ने भी सौ भाइयों की प्राप्ति करली थी। इस प्रकार से उस परम साध्वी पतिव्रता ने जो नृप की आत्मजा थी अपने पिता के पक्ष का भी उद्धार कर दिया था तथा उस वरारोहा ने भाइयों के पक्ष का भी उद्धार कर दिया। उस समय में पातिव्रत के महान् प्रबलतम बल से अपने भर्त्ता को मृत्यु के परम घोर पाश से मुक्त करा दिया था। इसी कारण से मनुष्यों को पूजा करनी चाहिए। हे राजन् ! उनके ही प्रसाद से ये तीनों भुवन धारण किये जाते हैं ॥ १५; १६, १७, १८, १९, २०, २१ ॥ इन चराचर लोकों में कभी भी उन सतीसाध्वी महिलाओं के वचन मिथ्या नहीं हुआ करते हैं इसी कारण से सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करने वाले मनुष्यों के द्वारा सर्वदा उन नारियों की अभ्यर्चना अवश्य ही करनी चाहिए ॥२२॥

६३—अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किंनुकृत्यतमं भवेत् ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्तियतोभवान् ।।१
अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना ।
सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ।।२
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्यैकेन दुश्चरम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ।।३
तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान्नृपतिः स्वयम् ।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्तान् श्रियान्वितान् ।।४
रूपसत्वगुणापेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् धमज्ञांश्च प्रियवदान् ।।५
हितोपदेशकान्राज्ञः स्वामिभक्तान्यशोऽर्थिनः ।
एवंविधान्साहायांश्चशुभकर्मसु योजयेत् ।।६
गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् ।
कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ।।७

महर्षि मनु ने कहा—जिस राजा का राज्यासन पर अभिषेक कर दिया जावे उस अभिषिक्त नृपति का क्या कर्त्तव्य है क्योंकि केवल उसका अभिषेक भर ही हुआ है। यह सभी कुछ मुझे बतलाइये क्योंकि आप तो सभी कुछ को भली भाँति जानते हैं ।। १ ।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अभिषेक के द्वारा भीगे हुए मस्तक वाले और राज्य के कार्यों के देखने वाले राजा को चाहिए कि वहउस प्रतिष्ठित राज्य में वहाँ पर अपनी सहायता करने वालों का वरण करे ।। २ ।। चाहे वहुत ही छोटा सा भी कोई कार्य हो किन्तु वह भी एक के द्वारा पूर्ण कर लेना महान् कठिन हुआ करता है जिस पुरुष का कोई भी सहायक न हो। यह साधारण से साधारण कार्यों के विषय में भी ऐसा ही देखा जाता है किन्तु राज्य

शासन तो महान् उदय वाला एक परम विशाल कार्य है ॥ ३ ॥ अतएव नृपति को स्वयं ही कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए वे सहायक ऐसे होने चाहिए जो शूरवीर हों—अच्छे कुल और उत्तम जाति में समुत्पन्न होने वाले हों—बल से सम्पन्न एवं श्री से समन्वित होवें ॥४॥ राजा को अपने सहायकों के वरण करने में देखना चाहिए कि वे रूप और सत्त्व गुण से युक्त हों—सज्जन हों—क्षमा से संयुक्त हों—क्लेशों के सहन करने में समर्थ हों—महान उत्साह वाले हों—धर्म्म के ज्ञाता हों—प्रिय वचन बोलने वाले हों। राजा को सदा हित का उपदेश करने वाले—स्वामी के परम भक्त और यश के चाहने वाले हों। इस तरह के भली भाँति खूब देखभाल कर सहायकों का वरण राजा को करना चाहिए और फिर उनको शुभ कर्मों में योजित करना चाहिए। जो गुणों से हीन हों इनको भी राजा स्वय जानकर यथा योग्य कर्मों में भाग करके नियुक्त करना चाहिए ॥ ५, ६, ७ ॥

कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः ।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशल.श्लक्ष्णभाषिता ॥८
निमित्ते शकुने ज्ञाते वेत्ताचैव चिकित्सिते ।
कृतज्ञः कमर्णां शूरस्तथा क्लेशसहोऋजुः ॥९
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित् ।
राज्ञासेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ॥१०
प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः ।
चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते ॥११
यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः ।
शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित् ॥१२
विज्ञातादेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः ।
वक्ता न यस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत् ॥१३
प्रांशवो व्यायताः शूराः दृढभक्ता निराकुलाः ।

राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः ।।१४

सेनापति राजा का एक परम सहायक अङ्ग होता है। वह कैसा होना चाहिए यह बतलाया गया है। राजा का सेनापति—शील स्वभाव से युक्त—धनुर्विद्या का महान् विद्वान्—हाथियों और अश्वों की शिक्षा में परम प्रवीण कोमल और मधुर भाषण करने वाला—शकुन के निमित्तों का जानने वाला—चिकित्सा के विषय का ज्ञाता—कृतज्ञ—कर्मों से शूर—क्लेशों का सहिष्णु—सरल—गूढ़ तत्त्वों के विधान का ज्ञाता—निरर्थक एवं सार के तत्त्वों का जानकार ऐसे अनेक गुणों से विशिष्ट सेना का स्वामी राजा को बनाना चाहिये क्योंकि सेना ही राज्य एवं प्रजा की रक्षा करने वाली होती है और सेनापति उसका प्रधान होता है। वह सेनापति जाति का ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होना चाहिए। वह प्रांशु—सुन्दर रूप वाला—दक्ष और प्रियवादी होना चाहिये उद्धत स्वभाव वाला उसको नहीं रहना चाहिये। राजा का दूत सभी के चित्त को ग्रहण करने वाला और प्रतीहार बनाना चाहिये। दूत को जैसा भी कहा जावे वही कहने वाला तथा देश भाषा का विद्वान् होना चाहिए। जो राजा का दूत हो उसको शक्तिशाली—क्लेशों का सहन करने वाला—वाग्मी—देश और काल के विभाग का ज्ञान रखने वाला तथा देश एवं काल का विज्ञाता होना आवश्यक है। जो जिसके काल में वक्ता नहीं है वही दूत राजा का होता है ।। ८, ९, १०, ११, १२, १३ ।। राजा को अपनी रक्षा करने वाले ऐसे ही व्यक्तियों को करना चाहिए जो प्रांशु-व्यायत-शूर दृढ़ भक्त-निराकुल—सदा क्लेशों के सहन करने के स्वभाव वाले तथा हित हों ।। १४ ।

अनाहार्यो नशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे ।
ताम्बूलधारी भवति नारी वाप्यथ तद्गुणा ।।१५
षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः ।
सन्धिविग्रहकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः ।।१६

कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता ।
आयव्ययज्ञोलोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ॥१७
सुरूपस्तरुणः प्रांशु र्द्दढभक्तिः कुलोचितः ।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ॥१८
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः ।
धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः ॥१९
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः ।
हयायु र्वेदतत्त्वज्ञो भुवोभागविचक्षणः ॥२०
बलावलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियम्वदः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्तितः ॥२१

राजा का ताम्बूलधारी अनाहार्य्य–अनृशंस और राजा में दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिये अथवा उन्हीं गुणों वाली पुरुष न होकर ताम्बूलधारिणी नारी भी हो सकती है ॥ १५ ॥ राजा के द्वारा षाड्गुण्य विधि के तत्त्व का ज्ञाता–देश भाषा का विद्वान् और नीति शास्त्र का पण्डित, सन्धि एवं विग्रह करने वाला नियुक्त होना चाहिये । देश का रक्षिता भृत्यों के कृत और अकृत के जानने योग्य होवे । जो आय और व्यय का ज्ञाता होता है वह लोक का वेत्ता तथा देश की उत्पत्ति का मनीषी मनुष्य होना चाहिये । राजा का खड्गधारी सुन्दर रूप वाला–तरुण–प्रांशु–दृढ़ भक्ति वाला–समुचित कुल में समुत्पन्न–शूरवीर—क्लेशों के सहन करने वाला नियुक्त होना चाहिए । राजा का धनुषधारी ऐसा ही बनाना चाहिए जो शूर–बल से सम्पन्न–गज, अश्व और रथ के के विषय में पूर्ण ज्ञान रखने वाला शुचि और सभी तरह के क्लेशों को सहन करने वाला हो । राजा को अपना सारथि बहुत ही सोचकर निम्न गुणों वाला नियुक्त करना चाहिए जो निमित्त और शकुनों के ज्ञान वाला हो—अश्वों की शिक्षा का विशारद–अश्वों की आयु के वेद के तत्वों का ज्ञाता—भूभाग का पण्डित–बलाबल का जानने वाला जो कि रथी के

विषय में भलीभाँति विज्ञता रखता हो। स्थिर दृष्टि वाला-प्रिय बोलने वाला-शूर-कृतविद्य हो ॥ १७-२१ ॥

अनाहार्यः रुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदाम्वरः।
सूपशास्त्राविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते ॥२२
सूदशस्त्रविधानज्ञाः परभेद्या कुलोद्गताः।
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः ॥२३
समः शत्रौच मित्रेच धर्मशास्त्रविशारदः।
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणी भवेत् ॥२४
कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः।
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२५
लेखकः कथितोराज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान् ॥२६
आन्तरावै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः।
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः ॥२७
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम !।
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञाः प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः ॥२८

नृपति का सूपाध्यक्ष वही प्रशस्त होता है जो आहार्य्य न हो- रुचि-दक्ष-चिकित्सा के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ तथा सूपशास्त्र की विशेष- ताओं का ज्ञाता होता है ॥ २२ ॥ सूद शास्त्र के विधान के ज्ञाता—परों को भेदन के योग्य अच्छे कुल से उद्गत ऐसे ही मनुष्य सब महानस में (रसोई में) रखने चाहिये जिनके केश और नाखून कटे हुए हो ॥२३॥ नृप का धर्माधिकारी पुरुष विप्रों में प्रमुख – कुलीन-धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् और शत्रु तथा मित्र में समान रहने वाला होना चाहिए। वहाँ पर राजा की सभा में ऐसे ही सदस्य होने चाहिये जो सभासद द्विजों में मुख्य हों—समस्त देशों की भाषाओं के अभिज्ञ हों तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के विशारद होवें। राजा के यहाँ जो लेखक परम श्रेष्ठ भी कहा गया है

जो शीर्षकों से समन्वित—सुसम्पूर्ण—सम और समान श्रेणी में गत अन्तरों को लिखा करता है । हे नृपोत्तम ! जो बहुत ही थोड़े में बहुत बड़े अधिक अर्थ का कहने वाला हो—उपाय वाक्यों में कुशल हो और समस्त शास्त्रों का महा पण्डित हो ऐसा ही लेखक होना चाहिये । जो दानदाता हों वे भी राजा के द्वारा ऐसे पुरुषों को नियुक्त किया जाना चाहिये जो दूसरे पुरुषों के अन्तर को पहिचानने वाले हों अर्थात् अन्यों के हृदय के तत्वों के ज्ञाता हों—प्रांशु एवं अलोलुप भी होवें ॥ २३, २४ २५, २६, २७, २८ ॥

धर्माधिकारिणः कार्याः जना दानकरा नराः ।
एवम्विधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जनाः ॥२९
लोहवस्त्राजिनादीनांरत्नानाञ्च विधानवित् ।
विज्ञाताफल्गुसाराणामनाहार्यः शुचि सदा ॥३०
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्षः प्रकीर्तितः ।
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नराः ॥३१
व्यवहारेषु च तथा कर्तव्याः पृथिवीक्षिता ।
परम्परागतो यः स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते ॥३२
अनाहार्यः स वैद्यः स्यात् धर्मात्मा च कुलोद्गतः ।
प्राणाचार्यः स विज्ञेया वरुणात्तस्य भूभुजा ॥३३
राजन् ! राज्ञा सदा कार्यं यथाकार्यं पृथक् जनैः ।
हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारदः ॥३४
क्लेशक्षमस्तथाराज्ञो गजाध्यक्षः प्रशस्यते ।
तैरेव गुणैर्युक्तः स्वासनश्च विशेषतः ॥३५

उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट नर हों दान करने वाले धर्माधिकारी नियुक्त करने चाहिए । राजा के द्वारा इसी प्रकार के दौवारिकों की नियुक्ति करनी चाहिए जो लोहे—वस्त्र—अजिन आदि—रत्नों की विधि को भली भाँति जानते हों—क्या वस्तु फल्गु और क्या सार वाली

है—इसके ज्ञाता अनाहार्य्य—सदा शुचि—निपुण और अप्रमत्त मनुष्य ही राजा के धन (कोष) का अध्यक्ष होना चाहिए। समस्त आयके द्वारों में धनाध्यक्ष के तुल्य ही नर नियुक्त होने चाहिए ॥ २९, ३०, ३१॥ व्यय हारों में भी राजा को उसी प्रकार के मनुष्यों की नियुक्ति करनी चाहिए। जो अष्टाङ्गों में भली भाँति चिकित्सा का ज्ञान रखता हो—परम्परा से समागत हो—धर्म्मात्मा—अच्छे कुल में समुत्पन्न हो और अनाहार्य्य हो वही पुरुष राजघर में वैद्य होने का अधिकारी होता है। राजा के द्वारा वरुण से उसका वह प्राणाचार्य्य जानना चाहिए। हे राजन् ! राजा के द्वारा सदा जनों से पृथक यथा कार्य्य वन जाति का पण्डित और हाथियों को शिक्षा के विधान का ज्ञाता एवं क्लेशों के सहन करने में समर्थ ऐसा राजा का गजाध्यक्ष परम प्रशस्त माना जाता है और इन्हीं गुणों से समन्वित अपने आसन वाला भी विशेष रूप के प्रशस्त होता है ॥ ३२, ३३, ३४, ३५ ॥

गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते।
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः ॥३६
अश्वाध्यक्षो महीभर्त्तुः स्वासनश्च प्रशस्यस्ते।
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः ॥३७
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकमसु।
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः ॥३८
दोर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः।
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते ॥३९
अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्व विशिष्यते।
वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहःशुचिः ॥४०
राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीश्च तथेष्यते
एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे ॥४१
परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु।

स्थापनाजातितत्त्वज्ञः सततं प्रतिजाग्रता ।।४२

राजा का गज पर समारोहण करने वाला सभी प्रकार के कर्म्मों में प्रशंसनीय होता है। अश्वों की शिक्षा के विधान को जानने वाला तथा चिकित्सा के विषय में पण्डित राजा का अश्वों पर रहने वाला अध्यक्ष और स्वासन प्रशस्त माना जाता है। अनाहार्य और शूर तथा प्राज्ञ एव अच्छे कुल में उत्पन्न राजा का दुर्ग का अध्यक्ष कहा गया है जो सभी प्रकार के कर्मों में उद्युक्त रहा करता है। वास्तु कला की विद्या में महा पण्डित—हलके हाथ वाला—श्रम को जीत लेने वाला—दीर्घदर्शी और शूर स्थपति कीर्त्तित किया गया है। यन्त्र मुक्त में—पाणि मुक्त में—विमुक्त में और मुक्त धारित में अस्त्राचार्य उद्वेग से रहित एवं कुशल विशिष्ट हुआ करता है। पिता-पितामह से चले जाने वाला-पवित्र—वृद्ध तथा कुलीन सूक्त एवं विनीत राजाओं का अन्तःपुर का अध्यक्ष अभीष्ट हुआ करता है। इस प्रकार से इन सात अधिकार के पदों पर पुर में सात पुरुष राजा के द्वारा भली भाँति परीक्षा करके अधिकार के योग्य नियुक्त करना चाहिये जो कि सभी कर्म्मों में उपयुक्त होवें और सभी कर्मों में निरन्तर प्रतिजाग्रत और जाति के तत्व के ज्ञाता को इनका स्थापन करना चाहिए।।३६-४२।।

राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः ।
कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह ! ।।४३
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ।
उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ।।४४
नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात् ।
नियोगं पौरुषं भक्ति श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ।।४५
ज्ञात्वा वृत्तिविधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता ।
पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वसारनिबन्धनात् ।।४६
बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रं पृथक् पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ॥४७
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
निश्चयस्तु सदामन्त्रे कार्यएकेनसूरिणा ॥४८
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।
एकस्यैव कार्यभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः ॥४९

नृपति के आयुधों के आगार में ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिये जो दक्ष हो और सभी कर्म्मों में उद्यत रहता हो। हे नृप कुलोदह ! राजा के यहाँ उसके अपरिमेय कर्म्म हुआ करते हैं। पार्थिव का कर्त्तव्य है कि कर्मों की उत्तम-मध्यम और अधम श्रेणियों को समझ कर ही उत्तम-मध्यम-अधम पुरुषों में से तदनुसार ही पुरुषों को नियोजित करे। यदि उत्तम कर्म में मध्यम और मध्यम कर्म में उत्तम पुरुष की विपर्यास से नियुक्ति की जावेगी तो इस विपरीतता से नृप का नाश हो जायगा। राजा को नियोग-पौरुष-भक्ति—श्रुत-शौर्य-कुल और नय इन सबको भली भाँति समझ बूझ कर ही पुरुषों की वृत्तिका विधान करना चाहिये और दूसरे पुरुषों के विज्ञान एवं तत्वसार के विवधन से ही नियुक्ति करने की नितान्त आवश्यकता होती है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ राजा को चाहिए कि वह पृथक-पृथक बहुत से लोगों से स्वेच्छया मन्त्रणा करे और अपने मन्त्रियों से भी अपने मन्त्र का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥ इस संसार में राजाओं का कहीं पर भी किसी का विश्वास नहीं हुआ करता है और सदा किसी भी एक सूरि से अपने विचारणीय मन्त्र में निश्चय कर लेना चाहिए। अथवा राजा को अपने निश्चय की प्राप्ति पर बुद्धि के उपजीवन से किसी भी एक से ही हो जावे तो भी पुनः उसका विशेष निश्चय अवश्य ही अन्यों के द्वारा भी करना चाहिये ॥ ४८, ४९ ॥

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रमुनिश्चितान् ।
नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कण्टकाः ॥५०

वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ।
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः । ५१
समग्रां वशगां कुर्य्यात् पृथिवीं नात्र संशयः ।
बहवोविनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः ॥५२
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रीविद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥५३
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्याम्वार्तारम्भाश्च लोकतः ।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥५४
जितेन्द्रियोहि शक्नोति वशेस्थापयितुं प्रजाः ।
यजेतराजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः ॥५५
धर्मार्थंचैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ।
साम्वत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ॥५६

राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह ऐसे ही ब्राह्मणों की उपासना करे जो वेदत्रयी और समस्त शास्त्रों में सुनिश्चय वाले हों तथा असत् शास्त्रों वाले एवं मूढ़ न हों। मूढ़ लोग तो सर्वदा लोक के लिए कण्टक ही हुआ करते हैं ॥५०॥ विनीत आत्मा वाले नृप को नित्य ही वृद्ध—वेदों के वेत्ता और परम शुचि विप्रों का सेवन करना चाहिए और उनसे ही नित्य विनय की शिक्षा का ग्रहण भी करना चाहिए ॥५१॥ इस तरह से विनय की शिक्षा सर्वदा ग्रहण करने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वशगामिनी कर लिया करता है—इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है। बहुत-से नृपवृन्द सपरिच्छद होते हुए भी केवल अविनय के कारण ही अपने राज्य शासन कर्म से भ्रष्ट हो जाया करते हैं ॥५२॥ वन में स्थित रहने वाले भी केवल विनय होने के कारण से ही राज्यों को प्राप्त कर चुके हैं। जो लोग त्रयी विद्या के महा मनीषी हैं उनसे त्रयी विद्या को—शाश्वती दण्ड नीति को—आन्वीक्षिकी तथा आत्म-विद्या को ग्रहण करे। लोक से वार्तारम्भों को—और इन्द्रियों के विजय में योग को अहर्निश

सीखने में समास्थित होना चाहिए ।।५३, ५४।। जो राजा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर जितेन्द्रिय होता है वह अपनी प्रजा को वश में रख सकता है। राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह दक्षिणा से संयुत बहुत से क्रतुओं के द्वारा यजन किया करे। धर्म और अर्थ के लिये विप्रों को भोग एवं धनों का दान देना चाहिए। प्रति सम्वत्सरों तथा मासों के हिसाब से उसे राष्ट्रों से वलि का आहरण करना चाहिए ।।५५, ५६।।

स्यात्स्वाध्यायपरोलोके वर्तेतापितृवन्धुवत् ।
आवृत्तानांगुरुकुलात्द्विजानांपूजकोभवेत् ।।५७
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्वाह्मोऽभिधीयते ।
ततस्तेनानवा मित्रा हरन्ति न विनश्यति ।।५८
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः ।
समोत्तमाधमं राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः ।।५९
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ।
संग्रामेस्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ।।६०
शुश्रूषा ब्राह्मणनाञ्च राज्ञां निश्रेयसम्परम् ।
कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च पालनम् ।।६१
योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथाकार्यं विशेषतः ।।६२
स्वधर्मप्रच्युतान् राजा स्वधर्मे स्थापयेत्तथा ।
आश्रमेषुतथा कार्यमन्नं तैलञ्च भाजनम् ।।६३

नृप को लोक मे सर्वदा स्वाध्याय परायण होना चाहिए और प्रजाजनों में सबके साथ तदनुकूल पिता एवं बन्धु के तुल्य ही व्यवहार करे। जो द्विज गुरुकुलों से अपनी अवधि पूर्ण कर वापिस आवें उनकी पूजा राजा को करनी चाहिए ।।५७।। राजाओं के लिए यह विधि अक्षय एवं व्राह्म कही जाती है। इससे वह अनव मित्रों का हरण किया करते हैं तथा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है। अतएव राजा को इस ब्राह्म

अक्षय विधि को करना ही चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि वह सम—उत्तम और अधमों के द्वारा समाह्वान कर प्रजाजनों का पालन किया करे ।।५८, ५९।। नृप को कभी भी अपने क्षत्रियों के व्रत एवं धर्म का स्मरण करते हुए संग्राम से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए। संग्रामों में अनिवृत्त होना भी प्रजा का पूर्ण परिपालन ही होता है। ब्राह्मणों की शुश्रूषा राजाओं के कल्याण करने वाली परम श्रेय ही होती है। राजा का कर्त्तव्य है कि जो कृपण–अनाथ–वृद्ध एव विधवा हों उनका भली भाँति पालन करे और उनका योग क्षेम तथा वृत्ति की परिकल्पना कर देवे। विशेष रूप से वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न करना राजा का नितान्त आवश्यक कार्य है। जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग करके कर्त्तव्य से च्युत हो गये हैं उनको पुनः अपने उचित धर्म के मार्ग पर राजा को स्थापित करना चाहिए। जो आश्रम वासी हैं उनके आश्रमों मे अन्न–तैल और भोजन आदि की व्यवस्था नृप को ही कर देनी चाहिए ।।६०-६३।।

स्वयमेवानयेद्राजा सत्कृतान्नावमानयेत् ।
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मात्मनमेवच ।।६४
निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयत् ।
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः ।।६६
गृहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ।
न विश्वसेदविश्वस्तेविश्वस्तेनातिविश्वसेत् ।।६७
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ।
विश्वासयेच्चाप्यपरतन्तत्त्वभूतेन हेतुना ।।६८
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमे ।
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत ।।६९
दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः ।
चित्राकारश्च शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत् ।।७०

आश्रमों में जो आवश्यक वस्तुएँ हों उनकी व्यवस्था राजा को स्वयं ही आनयन कर करनी चाहिए। जो सत्कार करने के योग्य पुरुष हैं उनका कभी भूलकर भी राजा को अपमान नहीं करना चाहिए। राजा को अपने समस्त कार्य्य—राज्य और अपने आपको भी तपस्वियों के लिये समर्पित कर देना चाहिये और प्रयत्न पूर्वक निवेदन करके देवों की भाँति ही चिरकाल पर्यन्त उनकी अभ्यर्चना करे। मनुष्यों के द्वारा दो प्रकार की बुद्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये जो कि ऋज्वी और वक्रा नाम वाली कही जाया करती हैं। जो वक्रा बुद्धि है उसका ज्ञान प्राप्त करके उसे कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए। जब भी वह आकर वक्राबुद्धि उपस्थित हो तो उसका प्रतिबाध कर देना चाहिए। ऐसे ढंग से रहना चाहिए कि कोई भी दूसरा इसके छिद्र को न जान सके और दूसरे के छिद्र को स्वयं समझ ले।।६४, ६५, ६६।। अपने गुप्त अङ्गों की भाँति ही अपने कर्म को गोपनीय रखना चाहिये तथा अपने आपके छिद्र की रक्षा करे। जो पुरुष विश्वास करने के योग्य नहीं है उस पर कभी विश्वास नहीं करे किन्तु जो विश्वास का पात्र हो उस पर भी अत्यधिक पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के घात से जो भय समुत्पन्न होता है वह मूलों का भी छेदन कर दिया करता है। तत्त्वमूल हेतु से दूसरे को भी विश्वास दिला देना चाहिए।।६७, ६८।। बगुला की भाँति अर्थों का चिन्तन करे और सिह के समान पराक्रम से यत्न करे। वृक (भेड़िया) के तुल्य लुप्त होकर छिप जावे तथा शश के सदृश विनिक्षेप करने वाला होवे। नृप को एक शूकर के समान दृढ़ प्रहार करने वाला होना जाहिये। शिखि के तुल्य चित्रकार तथा कुत्ते के तुल्य दृढ़भक्ति वाला होना चाहिए।।६९, ७०।।

तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः।
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत्।।७१
नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं व्रजेत्।

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम ! ।।७२
न गाहेज्जनसम्बाधं नचाज्ञातजलाशयम् ।
अपरीक्षितपूर्वञ्च पुरुषैराप्तकारिभिः ।।७३
नारोहेत्कुञ्जरं व्याल नादान्तं तुरगंतथा ।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत् ।।७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्तोभवेन्नृपः ।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः ।।७५
राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता ।
यथार्हञ्चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत् ।।७६
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु ।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वञ्चैव तथा शुचीन् ।।७७

नृप को कोकिल के समान मधुर आभाषण करने वाला होना चाहिए। जो वसति अज्ञात है उसी में निवास करना चाहिए। राजा को कौए के तुल्य शङ्कायुक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किए हुए कभी भी राजा को भोजन एवं शयन नहीं करना चाहिए। हे मनुजोत्तम ! इसी भाँति से पहिले परीक्षा करके ही वस्त्र–पुष्प–अलङ्कार तथा अन्य वस्तु को उपयोग में लाना चाहिए ।।७१, ७२।। किसी भी जन सम्बाध का गाहन न करे और जो जलाशय अज्ञात है उसमें भी उतर कर अवगाहन राजा को नहीं करना चाहिए। इन सबकी परीक्षा भी आप्तकारी पुरुषों के द्वारा ही पहिले करा लेनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि जिसका पहिले अच्छी तरह से ज्ञान न किया गया हो ऐसे गज—व्याल तथा अदान्त अश्व पर समारोहण नहीं करे। जिस स्त्री के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर लिया जावे उसका गमन नृप को नहीं करना चाहिए और देवोत्सव में कभी भी निवास न करे। हे धर्मज्ञ ! क्योंकि नृप नरेन्द्र लक्ष्मी का ज्ञाता होता है उसको अपने सत् भृत्यों को सर्वदा परिपुष्ट और प्रतिमानित रखना चाहिये। जो राजा इस समर भूमि के ऊपर जय

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावे। राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राणधारियों को ही कर्म्मों में योजित करना चाहिए ।।७३-७६।। जो पुरुष परम धर्म्मिष्ठ हों उनको ही धर्म के कार्यों में और जो अतीव शूरवीर हों उन्हें संग्राम के कार्यों में एवं जो परम निपुण हों उन्हें अर्थ सम्वन्धी कृत्यों में और जो पवित्र हों उनको ही सभी कर्म्मों में योजित करना चाहिए ।।७७।।

स्त्रीषु षण्ढं नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणं दारुणकर्मसु।
धर्मे चार्थेच कामे च नये च रविनन्दन ! ।।७८
राजा यथार्हङ्कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम् ।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान् ।।७९
तत्पादान्वेषणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत् ।
सवमादीनि कर्माणिनृपःकार्याणिपार्थिव ।।८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः ।
कर्माणि पापसाध्यानियानि राज्ञो नराधिप ! ।।८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्तितस्मात्तानित्यजेन्नृपः ।
नेष्यतेपृथिवीशातान्तीक्ष्णोपकरणक्रिया ।।८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम् ।
तस्मिन् कर्मणि तं राज्ञा परीक्ष्य विनिवेशयेत् ।।८३
पितृपैतामहान् भृत्यान् सवंकर्मसु योजयेत् ।
विनादायादकृत्येषुपरीक्षां स्वकृतान्तरान् ।।८४

स्त्रियों से सम्वधिन्त सभी कार्यों में नपुंसक पुरुषों की नियुक्ति करे तथा जो अत्यन्त दारुण कर्म्म हों उनमें तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुषों को रखे। हे रा त्रनन्दन ! धर्म्म—अर्थ—काम और नय मे राजा को उपधाओं के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के करने की क्षमता तारख हो उसी की उसमें नियुक्ति करनी चाहिए। समतीतोपद दरों

को शस्तवक में भृत्य बनावे ।।७८, ७९।। उनके पादान्वेषण करने वाले उनके अध्यक्षों को भी नियोजित करे। इसी प्रकार के सभी कर्मों को नृपों के द्वारा पूर्ण करना चाहिए। हे पार्थिव ! राजा का सर्वथा तीक्ष्ण उपकरण का क्रम अभीष्ट नहीं हुआ करता है। हे नराधिप ! राजा के जो कुछ ऐसे कर्म्म होते हैं जो कि पापों द्वारा साध्य हुआ करते हैं सन्त पुरुष उनको कभी नहीं किया करते हैं अतएव राजा का कर्त्तव्य है कि उनको त्याग देवे। राजाओं को तीक्ष्ण उपकरणों की क्रिया कभी भी अभीष्ट नहीं—हुआ करती है। जिस कर्म्म में जिस पुरुष की विशेष रूप से कुशलता हो उस कर्म्म में राजा को उसकी परीक्षा करके ही उस पुरुष का विनिवेश करना उचित होता है। जो ऐसे भृत्य हैं कि उनके और अपने पिता—पितामह के समय से ही चले आने वाले हैं उनको सभी प्रकार के कर्मों में नियुक्त कर देना चाहिए। स्वकृतान्तरों को दायाद कृत्यों में परीक्षा के बिना भी नियुक्त कर देवे ।।८०-८४।।

नियुञ्जीत महाभाग ! तस्य ते हितकारिणः ।
परराजगृहात्प्राप्तान् जनसंग्रहकाम्यया ।।८५

दुष्टान् वाप्यथवादुष्टान् आश्रयीत प्रयत्नतः ।
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्रभूमिपः ।।८६
वृत्ति तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया ।
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम् ।।८७
मामयं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् ।
कामं भृत्याजन राजा नैव कुर्यान्नराधिप ।।८८

न च वा संविभक्तांस्तान् भृत्यान् कुर्यात्कथञ्चन ।
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति चिन्तयेत् ।।८९
भृत्या मनुजशार्दूल ! रुषिताश्च तथैकतः ।
तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञायनित्यशः ।।९०

हे महाभाग ! जन-संग्रह की कामना से दूसरे राज गृह से प्राप्त हुए उसके उन हितकारियों को नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट हों अथवा अदुष्ट हों प्रयत्न से उनको आश्रय देवे। राजा को दुष्ट को जानकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। जन-संग्रह की कामना से उसकी वृति कर देनी चाहिए। राजा को अन्य देश से प्राप्त हुए पुरष की अत्यधिक पूजा करनी चाहिए ।।८५, ८६, ८७।। यह मेरे देश में प्राप्त हुआ है अतएव उसके विषय में बहुमान चिन्तन करना चाहिए! हे नराधिप ! राजा को इच्छापूर्वक भृत्यार्जन नहीं करना चाहिये ।। ८८ ।। उन भृत्यों को किसी भी प्रकार से सविभक्त नहीं करे। शत्रुओं को अग्नि—विष-सर्प और विस्त्रिश ऐसा ही चिन्तन करना चाहिए ॥ ८९ ।। हे मनुज शार्दूल ! जो भत्य र्षित हो जावें उनके विषय में एक ओर से राजा को चारों के द्वारा नित्य ही चरित्र का विशेष ज्ञान करते रहना चाहिये ॥ ९० ॥

गुणिनां पूजन कुर्यात् निर्गुणानाञ्चशासनम् ।
कथिताःसततंराजन् ! राजानश्चारचक्षुषः ।।९१
स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान् ।
अनाहार्यान् क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथाचरान् ।।९२
जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ।।९३
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्यात् चारस्यापि सुभाषितम् ।।९४
द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नपतिस्तदा ।
परस्परस्याविदितौ यदिस्यातांञ्च तावुभौ ।।९५
तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान्नियोजयेत् ।
रागापरागौभृत्यानां जनस्यचगुणागुणान् ।।९६
सर्वं राज्ञां चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् ।

कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते ॥९७
विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता ।
विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः ॥९८
तथा च रागप्रभवा हि लक्ष्म्यो राज्ञां मताभास्करवंशचन्द्र ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैःकार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ॥९९

राजा का कर्त्तव्य है कि जो गुणीजन हों उनका सत्कार एवं पूजन करे तथा जो गुणहीन हों उन पर शासन करे। हे राजन्! राजा लोग निरन्तर चारों के चक्षुओं वाले ही कहे जाया करते हैं ॥ ९१ ॥ अपने राष्ट्र तथा देश में तथा दूसरे देश में ज्ञान के शील वाले–विचक्षण–अनाहार्य और क्लैश सहचरा की नियुक्ति करनी चाहिए ॥ ९२ ॥ राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे जिनको साधारणतया मनुष्य नहीं जानते हों—सौम्य—परस्पर में ज्ञात—वणिज मन्त्र में कुशल—साम्वत्सर चिकित्सक—प्रव्राजितों (साधु-संन्यासियों) के आकार अर्थात् वेश–भूषा वाले हों। राजा को किसी भी एक गुप्तचर के कथन पर भी श्रद्धा कभी नहीं कर लेनी चाहिए ॥९३, ९४॥ जब दो चार उसी एक विषय का समान रूप से प्रतिपादन करें तभी राजा को विश्वास करना चाहिए किन्तु दोनों के सम्बन्ध को पहिले समझ कर ऐसा करे। यदि वे दोनों भी परस्पर में अविदित हों तो उनके सम्बन्ध का ज्ञान लेना बहुत-ही आवश्यक है। इसी कारण से राजा को अत्यन्त गूढ़ चरों की नियुक्ति करना उचित है। भृत्यों के राग और अपराग तथा जनों के गुण और अवगुण का ज्ञान लेना सब कुछ गुप्तचरों के ही (राजाओं का) अधीन होता है अतएव राजाओं को उन के विषय में यत्न परायण होना ही चाहिए। राजा का परम कर्त्तव्य यही है कि वह यह सर्वदा जानता–समझता रहे कि मेरे किस कर्म्म से लोक में सब लोग में अनुरञ्जित होते हैं और कौन सा मेरा कर्म्म है जिससे लोगों को बुरा मालूम होता है जो लोगों में विराग समुत्पन्न करने वाला कार्य है। उसको पूर्ण रूप से वर्जित

कर देना चाहिए । हे भास्कर वंश के चन्द्र ! राजाओं की लक्ष्मी राग से समुत्पन्न होने वाली हैं—ऐसा ही माना गया है । इस कारण से राजप्रमुखों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक भूमण्डल में मानवों में राजाओं को भली भाँति अनुराग करना चाहिए ।।६५-६६।।

६४—राजकृत्य वर्णन (१)

यथा न वर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविना ।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम ।।१
राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्यं तत्प्रयत्नतः ।
आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः ।।२
अनुकूल प्रिय तस्य वक्तव्यं जनसंसदि ।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत् ।।३
परार्थमस्य वक्तव्यं समे चेतसि पार्थिव ।
स्वार्थः सुहृद्भि र्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन ।।४
कार्य्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः ।
नच हिंस्यं धनं किञ्चित् नियुक्तेनचकर्मणि ।।५
नोपेक्ष्यस्तस्यमानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत् ।
राज्ञश्चनतथाकार्य्यं वेषभाषितचेष्टितम् ।।६
राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विञ्च वर्जयेत् ।
राज्ञःसमोऽधिकोवानकार्य्योवेषोविजानता ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा के अनुजीवो के द्वारा मन जिस प्रकार से नहीं वरतना चाहिए वही मैं आपको बतलाऊंगा । अब आप मुझसे इसको समझ लो । जिसको कि मैं कह रहा हूँ ।।१।। राजा जो कुछ भी वचन कहे उसे प्रयत्न पूर्वक श्रवण कर लेना चाहिए । उसके

बचन पर आक्षेप करके फिर कुछ भी अपना वचन नहीं कहना चाहिए। ॥२॥ जन संसद में उस नृप का प्रिय और अनुकूल ही वचन बोलना चाहिए। यदि कोई उसके हित को बतलाने वाला भी वचन कहना हो तो उसे चाहे वह अप्रिय भी हो उसी समय में उससे कहना चाहिए जब एकान्त में स्थित हो ॥३॥ हे पार्थिव ! इसका परमार्थ चित्त के सम होने पर ही बोलना चाहिए। यदि अपना कोई स्वार्थ हो तो उसे स्वयं कभी भी न कहकर मित्रों के द्वारा ही कहलाना चाहिए ॥४॥ सब में कार्यातिपात प्रयत्न पूर्वक रक्षित रखना चाहिये। कर्म में नियुक्त होने पर कुछ भी धन नहीं मारना चाहिए ॥५॥ उसके मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार से मनुष्य राजा का प्रिय हो जाया करता है। राजा के तुल्य वेष—भाषित और चेष्टित जैसा भी वैसा ही स्वयं नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥ राजा की लीला नहीं करे और उसका जो भी कुछ विद्विष्ट हो वह भी वर्जित कर देना चाहिए। राजा के ही समान अथवा उससे भी अधिक वेष अच्छी तरह से जानते हुए कभी नहीं करना चाहिए । ७॥

द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं तु प्रदर्शयेत् ।
प्रदर्श्यकौशलं चास्यराजानन्तु विशेषयेत् ॥८
अन्त.पुरजनाध्यवं वैंरिदूतैं निराकृतैः ।
संसर्गं न व्रजेद्राजन् विना पार्थिवशासनात् ॥९
निस्नेहताञ्चावमानं प्रयत्नेन तु गोहयेत् ।
यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत् ॥१०
नृपेण श्रावित यत्स्याद्वाच्यावाच्यं नृपोत्तम ! ।
नतत्सश्रावयेल्लोकेतथाराज्ञोऽप्रियोभवेत ॥११
आज्ञाप्यमानेवान्यस्मिन् समुत्थायत्वरान्वितः ।
किमहङ्करवाणीतिच्योराजाविजानता ॥१२
कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत् ।

सततं क्रियमाणेस्मिन् लाघवन्तु व्रजेद् ध्रुवम् ॥१३
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि चात्यर्थं पुनःपुनः ।
महासुशीलस्तुभवेत्नचापि भृकुटीमुखः ॥१४

उसी भाँति द्यूत (खेल) आदि में अन्य कौशल का प्रदर्शन करे और इसका कौशल प्रदर्शित करके राजा की विशेषता का प्रदर्शन करना चाहिए । हे राजन् ! राजा के शासन के विना अन्तः पुर के जनाध्यक्षों के साथ—शत्रु के दूतों के साथ और जो राजा के द्वारा निराकृत हों उनके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए ॥८, ९॥ स्नेह के अभाव को और अवमान को प्रयत्न के साथ गोपन करके रखना चाहिए और जो राजा का कोई भी गोपनीय विषय हो उसका भी कभी प्रकाशन नहीं करे । हे नृपोत्तम ! वाच्य तथा अवाच्य नृप के द्वारा जो भी श्रावित हो उसे लोक में कभी भी श्रावित न करे । ऐसा करने से राजा का वह उसे अप्रिय हो जाया करता है । किसी भी दूसरे को आज्ञा देने पर भी शीघ्रता से स्वयं उठकर राजा से यह कहना चाहिये कि क्या मैं इस कार्य्य का सम्पादन करलूं—यही एक ज्ञाता पुरुष का कर्त्तव्य है ॥१०, ११, १२॥ कार्य की अवस्था को विशेष रूप से जानकर जैसा भी वह कार्य्य होवे उसको निरन्तर करते हुए भी लाघव निश्चय रूप से करे ॥१३। राजा के प्रिय वाक्यों को अत्यधिक और बारम्बार नहीं कहे । राजा के समक्ष में महान् सुशील ही रहना चाहिए तथा कभी भृकुटियों को चढ़ाकर न रक्खे ॥१४॥

नातिवक्ता न निवक्ता न च मात्सरिकस्तथा ।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन ॥१५
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित् ।
वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत् ॥१६
औदार्य्येण न तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता ।
तत्रैवात्मासनं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत् ॥१७
नानिर्दिष्टे तथाद्वारे प्रविशेत्तु कथञ्चन ।

न च पश्येत्तु राजानमयोग्यासु च भूमिषु ।।१८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा ।
पुरस्ताच्च तथापश्चादासनन्तु विगर्हितम् ।।१६
जृम्भां निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्य्यस्तिकाश्रयम् ।
भृकुटिं वान्तमुद्गारन्तत्समीपे विवर्जयेत् ।।२०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः ।
स्वगुणाख्यापने युक्ता परमेव प्रयोजयेत् ।।२१

राजा के मामने न तो अत्यधिक बोलने वाला ही रहे और न बिल्कुल न बोलने वाला मौन होकर ही रहे। मत्सरता से युक्त भी होकर न रहे तथा किसी भी प्रकार से आत्म सम्भावित भी नहीं रहना चाहिए ।।८५।। जो कुछ भी राजा के द्वारा किये हुए दुष्कृत हों उनका कभी भी कहीं पर संकीर्त्तन नहीं करना चाहिए। जो भी कभी दैवात् राजा के द्वारा प्राप्त वस्त्र—अस्त्र और अलङ्कार हों तो उनको धारण करके रहना चाहिए ।।१६।। भूति के चाहने वाले को उदारता से उनको कभी दूसरे को नहीं दे डाले और वहीं पर अपना आसन रखना चाहिए तथा दिन में स्वप्न नहीं करे ।।१७।। जो द्वार अनिर्दिष्ट हो या मार्ग हो उसमें किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए। अयोग्य भूमियों में समवस्थित राजा को कभी नही देखना चाहिए। सर्वदा राजा क दक्षिण तथा वाम भाग में ही उपविष्ट होना चाहिए। राजा के आगे अथवा पीछे अपना आसन रखना गर्हित होता है ।।१८, १६।। राजा के समीप में जब भी कभी उपस्थित होवे तो मनुष्य को चाहिए कि जभाई—थूक का थूकना-खाँसना—पर्यस्तिका (मसन्द) आदिका सहारा लेकर बैठना—भृकुटि चढ़ाना—वान्ति करना—डकार लेना इन सबका वर्जन कर देवे। बुध पुरुष को राजा के समक्ष में स्वय अपने गुणों का ख्यापन अपन मुख से नहीं करना चाहिए प्रत्युत अपने गुणों के प्रख्यापन करने के लिये दूमरों को ही प्रयोजित करना चाहिए ।।२०, २१।।

हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः ।
अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राज्ञामतन्द्रितैः ॥२२
शाठ्यं लौल्यं च पैशून्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ।
चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः ॥२३
श्रुतिविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ।
राजसेवान्ततः कुर्याद् भूतयेभूतिवर्द्धनीम् ॥२४
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।
सचिवैश्चास्यविश्वासोनतुकार्यः कथञ्चन ॥२५
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि ।
हितं तथ्यञ्च वचनंहितैः सहसुनिश्चितम् ॥२६
चित्तञ्चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना ।
भर्त्तुराराधनंकुर्याच्चित्तज्ञोमानवः सुखम् ॥२७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता ।
त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत् ॥२८
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा ।
आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ॥२९
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः ।
वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेद करोति वै ॥३०

जो राजाओं के अनुजीवी गण हों उनको अपना हृदय निर्मल करके पराभक्ति का उपाश्रय करते हुए नित्य ही अतन्द्रित रहना चाहिए। राजा के अनुजीवियों को शठता–लौल्य–पैशून्य–नास्तिकता–क्षुद्रता–चापल्य–इन दोनों का सर्वदा परित्याग कर देना चाहिए ॥२२, २३॥ श्रुति–विद्या और सुशीलता गुणों वाले पुरुषों को आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को संयोजित करके अन्ततः वैभव को प्राप्ति के लिये भूति के वर्धन करने वाली राजा की सेवा करनी चाहिए । राजा के पुत्र–वल्लभ व मन्त्रियोंको सदा नमस्कार करना उचित है । सचिवों के द्वारा इसका किसी प्रकार से

भी विश्वास नहीं करना चाहिए ।।२४, २५।। बिना कुछ पूछे हुए इससे भाषण करे । यदि इच्छा बोले तो हितों के सहित अति सुनिश्चित हित और तथ्य वचन बोलना चाहिये ।। ६।। जो राजा के अनुजीवी हों उनको नित्य ही इसके चित्त की वृत्ति को जानते रहना चाहिये । चित्त की वृत्ति का ज्ञान रखने वाले मानव को सुख पूर्वक स्वामी का समाराधन करना चाहिए । विभूति के प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को इस राजा के राग एवं अपराग को अच्छी तरह से जान लेना अत्यन्त आवश्यक है । इनको जान कर फिर त्याग करे । विरक्त नहीं रहे । नृपति रक्त वृत्ति करावे । विरक्त नाश कराता है और विपक्ष का अभ्युदम कराता है । आशा की वृद्धि करके फल का नाश किया करता है । बिना काम वाला भी क्रोध से युक्त के समान होता है । प्रसन्न होता हुआ भी निष्फल है तथा मद से युक्त वाक्य बोलता है और वृत्ति का छेदन कर देता है । ।।२८-३०।।

प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽन्यथा ।
आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते ।।३१
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च ।
लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसङ्कीर्तनेऽपि च ।।३२
दृष्टिं क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि ।
विरक्तलक्षणं चैतत् शृणु रक्तस्य लक्षणम् ।।३३
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात् ।
कुशलादिपरिप्रश्नं संप्रयच्छति चासनम् ।।३४
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते ।
जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ।।३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते ।
उपायनञ्च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ।।३६

कथान्तरेपु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा ।
इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह ! ॥३७
मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम् ।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ॥३८

उदित हुआ प्रदेश वाक्य को अन्यथा सम्भावित नहीं होता है और सब आराधनाओं में सुप्त की भाँति विचेष्टित किया करता है । कथाओं में दोषों का क्षेप किया करता है और वाक्य का भङ्ग करता है । गुणों के सङ्कीर्त्तन करने पर भी विमुख के समान दिखलाई देता है । कर्मों के करने पर भी अन्यत्र दृष्टि डालता है—ये ही एक विरक्त पुरुष के लक्षण हुआ करते हैं । अब जो अनुरक्त होता है उसके लक्षणों का भी श्रवण करलो । देखकर परम प्रसन्न अनुरक्त हुआ करता है और जो भी वाक्य कहा जाता है उसे बड़े हो आदर से ग्रहण करता है । कुशल-क्षेम के प्रश्न आदि करता है और उपविष्ट होने के लिये आसन दिया करता है विविक्त दर्शन में और इसके एकान्त में इसकी शङ्का नहीं करता है । उसकी उस कथा को श्रवण करके प्रसन्न मुख हो जाया करता है ॥ ३१-३५ ॥ उसके द्वारा कहे हुए अप्रिय वाक्यों को भी अभिनन्दित किया करता है तथा थोड़े से भी उपायन को बड़े आदर से ग्रहण करता है । अन्य कथाओं में प्रहृष्ट मुख वाला होकर स्मरण करता है । हे रविकुलोद्वह ! इस प्रकार के अनुरक्त को सेवा करनी चाहिए । आपत्ति के समयों में मित्र को उस प्रकार से नहीं जिस तरह भृत्यगण हैं वे अप्रमेय और निर्गुण की सेवा करते हैं । वे भृत्य देववृन्दों के द्वारा सेवित सुरेन्द्र के धाम को तथा विशेष रूप से विभु को प्राप्त किया करते हैं ॥ ३६ । ३७ । ३८ ॥

९५—राजकृत्य वर्णन (२)

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम् ।
रम्यमानतसामन्तं मध्यमन्देशमावसेत् ॥१
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथापरैः ।
किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरन्तथा ॥२
अदैवमातृकं रम्यनुरक्तजनान्वितम् ।
करैरापीडितञ्चापि बहुपुष्पफलं तथा ॥३
अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि ।
समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ॥४
सरीसृपविहीनञ्च व्याघ्रतस्करवर्जितम् ।
एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ॥५
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥६
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ! ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा को अपने सहायकों से समन्वित होकर प्रभूत यवस और इन्धन वाले—रम्य एवं आनत सामन्तों वाले मध्यम देश में निवास करना चाहिए ॥ १ ॥ वह स्थल ऐसा होना चाहिए जिसमें राजा का निवास हो वैश्य और शूद्रजन बहुतायत से रहते हों एवं दूसरों के द्वारा जो आहार्य न हो सके । राजा का निवास स्थल कुछ ब्राह्मणों से भी युक्त तथा बहुत कर्मों के करने वाला होवे ॥ २ ॥ अदैव मातृक—रम्य—अनुरञ्जित जनों से युक्त—करों से आपीड़ित तथा बहुत पुष्प एवं फलों वाला – पर (शत्रु) के चक्रों की अगम्य ऐसा आपत्ति काल में वास गृह होना चाहिए । सुख और दुःख में सम—निरन्तर राजा का प्रिय—सरीसृपों से बिहीन—व्याघ्र और तस्करों से

रहित इस प्रकार का यथा लाभ देश में राजा को अपना निवास करना चाहिये ॥ ३ । ४ । ५ ॥ बुध राजा को वहाँ पर छै प्रकार के दुर्गों में से एक तरह के दुर्ग की रचना करनो चाहिए। छै प्रकार के दुर्गों के नाम ये हैं—धनुर्दुर्ग—महीदुर्ग–नर दुर्ग—वार्क्ष दुर्ग–अम्बुदुर्ग–और हे पार्थिव! छटवाँ गिरि दुर्ग है। इन समस्त दुर्गों में गिरि दुर्ग सबसे प्रशस्त माना जाता है ॥ ६ । ७ ॥

दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् ।
शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ॥८
गोपुरं सकपाटञ्च तत्र स्यात्सुमनोहरम् ।
सपताकङ्गजारूढोयेन राजा विशेत्पुरम् ॥९
चतस्रश्च तथात्र कार्यास्त्वायतवीथयः ।
एकस्मिस्तत्र वीथ्यग्रे देववेश्म भवेद्दृढम् ॥१०
वीथ्यग्रे च द्वितोये चर जिवेश्म विधीयते ।
धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके ॥११
चतुर्थेत्वथ वीथ्यग्रे गोपुरञ्च विधीयते ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम् ॥१२
मुक्तिहोनं त्रिकोणञ्चयवमध्य तथैवच ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम् ॥१३
अर्द्धचन्द्र प्रशंसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन् ।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ॥१४

राजा का दुर्ग वप्र और अट्टालक से संयुत तथा परिखा (खाई) से उपेत—शतघ्नी (तोप) यन्त्रों में जो प्रमुख यन्त्र हैं उन सैकड़ों यन्त्रों से समावृत दुर्ग होना चाहिए। वहाँ पर सुमनोहर कपाटों से युक्त गोपुर होवे जिसमें पताकाएें फहरा रही हों। वह ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा गज पर समारूढ़ होकर राजा पुर में प्रवेश करे ॥ ८ । ९ ॥ उसमें चार लम्बी चौड़ी बीथियाँ निर्मित की हुई होवें और वहाँ पर एक वीथी

के अग्रभाग में परम सुदृढ़ देय का आलय होना चाहिए । दूसरे वीथी के अग्रभाग में राजा के रहने का वेश्म गृह निर्मित किया जाना चाहिए । तीसरी वीथी के अग्रभाग में धर्म का अधिकरण करना चाहिये और चतुर्थ वीथी के अग्रभाग में गोपुर विरचित करे । इस प्रकार से उस पुर को चौकोर—आयत और वृत्त कराना चाहिए । मुक्तिहीन — त्रिकोण — यवमध्य अथवा चौकोर और आयत यद्वावृत्त पुर की रचना करावे । नदी के तीर पर निवास करते हुए अर्धं चन्द्र की प्रशसा किया करते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य प्रयत्नपूर्वक विशेष ज्ञाता को नहीं करना चाहिए । ॥८-१४॥

राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः ।
तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ॥१५
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्यावाप्युङ्दमुखी ।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ॥१६
महानसश्च धर्मज्ञ ! कर्मशालास्तथापराः ।
गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः ॥१७
मन्त्रिवेदविदाञ्चैव चिकित्साकर्त्त रेवच ।
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ॥१८
गवां स्थान तथैवात्र तुरगाणां तथैवच ।
उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ॥१९
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः ।
तुरगास्तेतथाधार्याः प्रदीपैःसार्वरात्रिकैः ॥२०
कुक्कुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः ।
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेवच ॥२१

राजा के निवास गृह के दक्षिण भाग में राजा को अपना कोषगृह बनाना चाहिए । उसके भी दक्षिण भाग में गजों के रहने का स्थान निर्मित करावे ॥ १५ ॥ गजशाला का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा की

ओर करवाना चाहिए। आग्नेय भाग में आयुधों का आगार बनाना अभीष्ट होता है। हे धर्म्मज्ञ ! महानस (रसोई घर) दूसरी कर्मशालाऐं और पुरोहित का गृह ये सब राजा के वेश्म के वाम भाग में निर्मित करावे। वहीं पर उसी भाग में मन्त्री—वेदवेत्ता और चिकित्सा करने वाले का गृह तथा कोष्ठागार भी निर्मित कराने चाहिये ।।१६ । १७ । १८ ।। यहाँ पर गौओं का स्थान—तुरङ्गों का स्थान करावे। तुरङ्गों की जो श्रेणी है वह उत्तर की ओर मुख वाली होनी चाहिये। अथवा दक्षिणाभिमुख हो। परिशिष्ट सभी गर्हित कही गयी हैं। वे तुरग सम्पूर्ण रात्रि में जलने वाले प्रदीपों के साथ रखने चाहिए। उन अश्वशालाओं में कुक्कुटों—वानरों—मर्कटों और विशेष रूप से वत्स के सहित धेनु को भी रखना चाहिए ।। १९, २०, २१ ।।

अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः ।।२२
अस्तंगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।
तत्र तत्र यथास्थानं राजाविज्ञाय सारथीन् ।।२३
दायादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः।
योधानां शिल्पिनाञ्चैव सर्वेषामविशेषतः ।।२४
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान्।
गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैवच ।।२५
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः।
कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते ।।२६
न बहूनामतो दुर्गे विनाकार्यं तथा भवेत्।
दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः ।।२७
सहस्रघातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा ।।२८

अश्वों के हित चाहने वाले को यत्नपूर्वक अजाओं को भी वहाँ

पर रखना आवश्यक होता है। गौ–गज और अश्व आदि की शालाओं में उनके पुरीष (मल) का निर्गम (निकालना) देवों के देव भगवान् दिवाकर के अस्त हो जाने पर नहीं करना चाहिए। वहाँ–वहाँ पर स्थानों के अनुसार राजा को विशेष रूप से समझ कर सारथियों की नियुक्ति करे तथा उन सबके आनुपूर्वशः आवसथ (रहने का) स्थान भी देवे। योधाओं को तथा शिल्पियों को सबके साधारण रूप से और काल मन्त्र वेत्ताओं को परम शुभ आवसथ दुर्ग में देवे। राजा को चाहिए कि वह गौओं के वैद्य—अश्वों के वैद्य और गजों की चिकित्सा करने वाले लोगों को अच्छी तरह से अधिक संख्या में लाकर रक्खे क्योंकि दुर्ग में बीमारियाँ भी बहुत प्रबल हुआ करती हैं। कुशीलव विप्रों का दुर्ग में स्थान किया जाता है ॥ २२, २३, २४, २५, २६ ॥ दुर्ग में कार्य के विना फालतू बहुतों को उस प्रकार से स्थान नहीं देवे। हे राजन् ! दुर्ग में अनेक प्रकार के प्रहरणों (शस्त्रों) से समन्वित सहस्र घातियों को नियुक्त करना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा रक्षा की जाया करती है। राजा के द्वारा अपने दुर्ग में गुप्त द्वार भी निर्मित करा कर रखने चाहिए ॥ २७, २८ ॥

सञ्चयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते ।
धनुषां क्षेपणीयानान्तोमराणां च पार्थिवः ॥२९
शराणामथ खङ्गाना कवचानां तथैवच ।
लगुडानां गुडानाश्च हुडानां परिघैः सह ॥३०
अश्मनाञ्च प्रभूतानां मद्गराणां तथैवच ।
त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणाञ्च पार्थिव ॥३१
प्रासानाञ्च सशूलानां शक्तीनाञ्च नरोत्तमः ।
परश्वधानां चाक्राणां वर्मणाञ्चचर्मभिः सह ॥३२
कुद्दालक्षुरवेत्राणां पीठकानान्तथैव च ।
तुषाणांचैव दात्राणामङ्गाराणाञ्च संचयः ॥३३

सर्वेषां शिल्पभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते ।
वादित्राणाञ्च सर्वेषामौषधीनान्तथैवच ।।३४
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः ।
गुड़स्य सर्वतैलानां गोरसानान्तथैव च ॥३५

यहाँ पर दुर्ग में सभी आयुधों का संग्रह रखना परम प्रशस्त होता है। पार्थिव को धनुषों का–क्षेपणीयों का और तोमरों का सञ्चय रखना आवश्यक है। शरों का—कवचों का–खङ्गों का—लगु--गुड़ान–हुड़ और परिघों का भी संग्रह करे। बहुत तादाद में पाषाणों का—मुद्गरों का—त्रिशूलों का—पदिशों का और हे पार्थिव कुठारों का भी सग्रह करना चाहिए ।। २९, ३०, ३१ ।। नरोत्तम को प्रास—सशूल—शक्ति—परश्वध —चक्र—चर्म के सहित वर्मों का भी वहाँ सर्ग में संग्रह होना उचित होता है। कुद्दाल--क्षुर—वेत्र—पीठक—तुष–दात्र और अङ्गारों का भी सञ्जय करे। सभी प्रकार के शिल्पियों के भाण्डों का सञ्चय भी दुर्ग में अभीष्ट होता है। सब तरह के वादित्र और सभी औषधियाँ तथा प्रभूत यवस और ईंधन का संचय वहाँ रक्खे। गुड़, सभी तरह के तैल और गोरसों का संग्रह दुर्ग में करना आवश्यक है॥ ३२।३३ ३४ । ३५ ॥

वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह ।
गोचर्मपटहानांच यवगोधूमयोरपि ।।३६
तथैवाम्रटानाँच यवगोधूमयोरपि ।
रत्नानां सर्ववस्त्राणां लोहानामप्यशेषतः ।.३७
कलापमुद्गमाषाणांचणकानान्तिलैः सह ।
तथा च सर्वशास्यानां पांशुगोमययोरपि ।।३८
शणसर्जरसं भूर्जं जतुलाक्षा च टङ्कणम् ।
राजा संचिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किचन ।।३९
कुम्भाश्चाशोविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा ।

मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ।।४०
स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक् ।
कर्तव्यानि महाभाग ! यत्नेन पृथिवीक्षिता ।।४१
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः ।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया ।।४२

राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह वसा—मन्त्र—अस्थियों के साय स्नागु—गोचर्म—पटह—सभी प्रकार के धान्य—अभ्रपर—यव—गोधूम (गेहूँ)—रत्न—सभी वस्त्र—सम्पूर्ण प्रकार के लोह—कलाप-मुद्ग—माष (उर्द)--तिल—चना—सभी तरह के शस्य–पांसु–गोमय–शण -सर्जरस—भूर्ज-जतु–लाक्षा–टङ्कण (सुहागा) और अन्य भी जो कुछ हो इन सबका सञ्चय दुर्ग में राजा को करना ही चाहिए। आशीविषों के द्वारा कुम्भों के करे तथा व्याल—सिंह आदि मृग और पक्षिगण इन सबकी परस्पर में रक्षा करनी चाहिये ।।३६ । ३७ । ३८ । ३९।४०।। आपस में जो भी जीव विरोध रखने वाले हैं उनका अलग २ स्थान निर्मित करावे और अच्छी तरह उन्हें गुप्त रक्खे। हे महाभाग! राजा को यत्न के साथ यह सभी कुछ करना चाहिए। जो बता दिये गये हैं और जो नहीं भी कहे गये हैं उन सम्पूर्ण राजद्रव्यों को पुर में सुगुप्त जनता के हित की कामना से रखना चाहिए ।। ४१. ४२ ।।

जीवकर्षभकाकोलमामलक्चाटरूषक.न् ।
शालपर्णी पृष्ठिपर्ठी मुद्‌गपर्गी तथैव च ।।४३
माषपर्णी च मदद्वैसारिवेद्वेबलात्रयम् ।
वारा श्वसन्ती वृष्या च वृहती कण्टकारिका ।।४४
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूदभरेणुका ।
मधुपर्णी विदार्यैद्वे महाक्षीरा महातपाः ।।४५
धन्वनः सहदेवाह्त्रा कटुकैरण्डकं विषः ।
पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गु खर्जरयष्टिकाः ।।४६

शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यं छत्रातिच्छत्रवीरणाः ।
इक्षुरिक्षुविकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ।।४७
सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम् ।
मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ।।४८
शतावरीमधूकेच पिप्पलन्तालमेव च ।
आत्मगुप्ता कट्फलाख्यादार्विका राजशीर्षकं ।।४९

एक राजा का परम कर्त्तव्य होता है कि सभी प्रकार की वनस्पतियों का सञ्चय अपने पुर में न करे। उनमें कुछ नामों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है—जीव कर्षभ—काकोल–आमलकी–आटरूषक—शालपर्णी–पृष्ठ पर्णी–मुद्गपर्णी–माषपर्णी–मदद्व—सारिवा दोनों प्रकार की–तीनों वलाऐं–वारा–श्वसन्ती–वृष्या–वहती–कण्ट कारिका–शृङ्गी–शृङ्गारकी–द्रोणी—वर्षाभदर्भरेणुका–मधुपर्णी–दोनों विदारी—महाक्षीरा–महातपा—धन्वन—सहदेवी नाम धारिणी–कटुक–ऐरण्डक–विष–पर्णी–शतानाम वाली–गृद्वीका–फल्गु–सर्जरयाष्टका–शुक्रातिशुक्र का–अश्मरी—छत्राति छत्रका—वीरणा–इक्षु—इक्षु विकार—फाणिता आदि—सिंह—सहदेवी—विश्वेदेवा—अश्वरोधक—मधुक—पुष्पहस नाम वाली—शतपुष्पा—मधूलिका—शतावरी—मधूक—पिप्पल—ताल—आत्म गुप्ता—कटुफला—दार्विका–राजशीर्षको ॥ ४३–४९ ॥

राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा ।
कालशाकं पद्मवीजं गोवल्ली मधुवल्लिका ।।५०
शीतपाकी कुवेराक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका ।
पर्वतपुत्रसौ चोभौ गुञ्जातकपुनर्नवे ।।५१
कसेरु कारुकाश्मीरी बल्या शालक केसरम् ।
तुषधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि ।।५२
क्षीरं क्षौद्रन्तथा तक्र तैलं मज्जा वसा घृतम् ।
नीपश्चारिष्टकाक्षोड़वातामसामबाणकम् ।।५३

एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरोगणः ।
राजा सञ्चिनुयात्सर्वं पुरे निरवशेषतः ॥५४
दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिड़ीकाम्लवेतसम् ।
भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्द्दकरूषकम् ॥५५
बीजपूरककण्डूरे मालतीराजबन्धुकम् ।
कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्नातयोरपि ॥५६

राज सर्षप—धान्याक—मृष्यप्रोक्त—उत्कटा—काल शाक—पद्म बीज—गोवल्ली—मधुवल्लिका—शीतपाकी—कुबेराक्षी—काक जिह्वा—उरु पुष्पिका—पर्वत—त्रयुष—गुञ्जा तक—पुनर्नवा दोनों—कसेरु—कारु काश्मीरी—बल्या—शालूक—केसर—सब तुष धान्य—क्षीर—क्षौद्र—तक्र—तैल—बसा—मज्जा—घृत—नीप—अरिष्टक—क्षोड़ वाताय—सोमवाणक—इस प्रकार के धान्य मधुरोगण—इस सभी का पूर्ण रूप से सञ्चय राजा को करना आवश्यक है ।। ५०, ५१, ५२, ५३, ५४ ।। दाड़िम—आम्रातक—तिन्तिड़ीक—आम्लवेतस—भव्य कर्कन्धु—लकुच—करमर्द्द—करूषक—बीजपूरक—कण्डुर—मालती—राजबन्धुक—दोनों कोलक पर्ण—दोनों आम्नात ।। ५५, ५६ ।।

पारावतं नागरकं प्राचानोलकमेव च ।
कपित्थामलकं चुक्रफलन्दन्तशठस्य च ॥५७
जाम्बवं नवनीतञ्च सौवीरकतुषोदके ।
सुरासवञ्च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ॥५८
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमम्लगणं द्विज ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ॥५९
सैन्धोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम् ।
कुप्यसौवर्चलविड़ं बालकेय यवाह्वकम् ॥६०
और्वं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणोगणः ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ॥६१

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
कुवेरकं मरिचकं शिग्रुभल्लातसर्षपाः ॥६२
कुष्ठाजमोदाकिणिहीहिङ्गुमूलकधान्यकम् ।
कारवीकुञ्जिका याज्या सुमुखा कालमालिका ॥६३

पारावत-नागरक-प्राचीनोलक—कपित्थ—आमलक—चुक्रफल-दन्तशठ—जाम्बव—नवनीत—सौवीरक—रुषोदक-सुरा-आसव—मद्य-मण्ड—तक्र—दधि—सब शुक्ल पदार्थ—हे द्विज! और अम्लगण इस प्रकार के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुर में करना चाहिए। सैन्धोद्भिद—पाठेय—पाक्य—सामुद्र—लोमक—कुप्य—सौवर्चल-विड़-बालकेय—यवाह्वक—और्व—क्षार—कालभस्म लवण गण- इस भाँति के पदार्थों का पूर में संग्रह राजा को करना आवश्यक है। पिप्पली—पिप्पली मूल—चव्य—चित्रक-नागर-कुवेरक-मरिच-शिग्रु-भल्लातक-सर्षप—कुष्ठ—अवमोद—आकिणि—हिङ्गु—मूलक—धान्यक-कारवी-कुञ्जिका—याज्या—सुमुखा—काल मालिका—।।५७-६ ।।

फणिज्जकोथलशुनं भूस्तृणां सुरसन्तथा ।
कायस्था च वयस्था च हरितालं मनःशिला ॥६४
अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमन्तथा ।
जया एरण्डकाण्डीरं सल्लकीहञ्जिका तथा ॥६५
सर्वपित्तानि मूलाणि प्रायोहरितकानि च ।
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपत्रिका ॥६६
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः ।
राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम ! ॥६७
मुस्तञ्चन्दनह्रीवेरकृतमालकदारवः ।
दारिद्रानलदाशारनक्तमालकदम्बकम् ॥ ६८
दूर्वा पटोलकटुका दीर्घत्वक् पत्रकं वचा ।
किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ॥६९

तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः ।
काकोदुम्वरिका दिव्या तथा चैव सुरोद्भवा ॥७०

फणिज्ज, कोथ, लशुन, भूस्तृण, सुरस, कायस्थ, वयस्थ, हरिताल, मैनशिल, अमृता, रुदन्ती, रोहिष, कुंकुम, जया ऐरण्ड, काण्डीर, सल्लकी, हञ्जिका, सभी पित्ता, मूत्र, प्रायोहरितक, फल, सूक्ष्मएला, हिंगुपट्टिका इस प्रकार के सब धान्य और कटुक संज्ञा वाला गण । हे नृपोतम ! राजा को अपने दुर्ग में सबका सञ्चय करना चाहिए । मुस्त, चन्दन, ह्रीवेर, कृतमालक, दारु, दरिद्र, अनलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्बक, दूर्वा, पटोल, कटुका, दीर्घत्वक्, पत्रक, वचा, किरात, तिक्त, भूतुम्बी, विषा, अतिविषा, तातीस पत्र, तगर सप्तपर्ण, विकङ्कता, काकदुम्बरिका, दिव्या, सुरोद्भवा ॥ ६४-७०॥

षड्ग्रन्था रोहिणी मांसी पर्पटश्चाथ दन्तिका ।
रसाञ्जन भृङ्गराजं पतङ्गो परिपेलवम् ॥७१
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली ।
रूपपर्णी व्याघ्रनख मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ॥७२
रम्भा चैवांकुरास्फोता तालास्फोता हरणुका ।
वेत्राग्र वेतसस्तुम्बी विषाणी लोध्रपुष्पणी ॥७३
मालतीकरकृष्णाख्य वृश्चिका जीविता तथा ।
पर्णिका च गुडूची च सगणस्तिक्तसञ्ज्ञक: ॥७४
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतम् ॥७५
प्रियङ्गु धातकी पुष्पं मोचाख्या चार्जुनासनाः ।
अनन्तास्त्रीतुवरिका स्योनाङ्कट्फलन्तथा ॥७६
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम् ।
समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ॥७७

षड्ग्रन्था, रोहिणी, मांसी, पर्पट, दन्तिका, रसाञ्जन, भृङ्गराज,

पतङ्गी, परिपेलव, दु:स्पर्शा, गुरुणी, कामा, श्यामाक, गन्धनाकुली, रूपपर्णी. व्याघ्रनख, मजिष्ठा, चतुरगुला, रम्भा, अंकुगारफोता, तालास्फोता, हरेणुका, वेत्राग्र, वेतेस, तुम्बी, विषाणी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीविता, पर्णिका, गुडूची, सगण, तिक्त संज्ञावाला,इसतरह के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुरमें करना चाहिए। अभया, आमलक, विभीतक, प्रियगु, धातकी, पुष्प मोच, अर्जुनासन, अनन्ता स्त्री, तुवरिका स्योना, कटुफल, भूर्जपत्र, शिलापत्र, पाटला पत्र, लोमक, समङ्गा, त्रिवृतामूल; कार्पास, गैरिक, अञ्जन ॥ ७१-७७ ॥

विद्रुमं स मधूच्छिष्टंकुम्भिकाकुमुदोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुकाः शिंशुपा शमी ॥७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकस्तथा ।
विल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षञ्च श्यामाकश्च वको घनम् ॥७९
राजादनं करीरञ्च धान्यकं प्रियकस्तथा ।
कङ्कोलाशोकबदराः कदम्बखदिरद्वयम् ॥८०
एषां पत्राणि साराणिमूलानि कुसुमानिच ।
एवमादीनिचान्या निकषायाख्योमतोरसः ॥८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ ! राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गतायां तथैवच ॥८२
वातधूमाश्च मार्गाणां दूषणानि तथैव च ।
धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव ॥८३
विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चाङ्गदा धार्या विषस्य शमनास्तथा । ८४

विद्रुम---मधूच्छिष्ट—कुम्भिका—कुमुदोत्पल-न्यग्रोध-उदुम्बर-अश्वत्थ—किंशुक—शिंशुप—शमी-प्रियाल – पीलुक—सारि—शिरीष—पद्मक—बिल्व—अग्निमन्थ—प्लक्ष—श्यामाक—वक—घन--राजादन-

करीर–धान्यक–प्रियक–कंकोल—अशोक—वदर–कदम्ब--खदिर—इनके पत्र–सार–मूल और कुसुम इस प्रकार के तथा अन्य आदि कषाय नाम वाला रस माना गया है। हे नृपों में परमश्रेष्ठ ! राजा को चाहिए इन सबका प्रयत्नपूर्वक अपने पुर में सञ्चय करे। व्यङ्गता में मारण में योग्य कीट— मार्गों के वातधूम तथा दूषण राजाओं को दुर्ग में रखने चाहिए हे पार्थिव ! उनको मैं बतलाऊँगा। महीभुज को प्रयत्न पूर्वक विषों को धारण करना चाहिए। त्रिचित्र अङ्गद तथा विष के शमन करने वाले भी रखने चाहिए ॥७८–८४॥

रक्षोभूततपिशाचघ्नाः पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः।
कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः ॥८५
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान्।
कुभृत्यान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे ॥८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं समग्रधान्योषधिसम्प्रयुक्तम्।
वणिग्जनैश्च वृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपतिः सदैव ॥८७

राजा के द्वारा अपने पुर में राक्षस, भूत और पिशाचों के हनन करने वाले–पापों का विनाश करने वाले—पुष्टि के बढ़ाने वाले कलाओं के वेत्ता पुरुष प्रयत्न पूर्वक रखने चाहिए। ॥८५॥ जो पुरुष भीत-- प्रमत्त—कुपित--विमानित—पापशील और कुभृत्यों को अपने पुर में कभी नहीं बसाना चाहिए ॥८६॥ अनेक आयुध—अट्टालिकाओं के समूह से उपपन्न तथा सम्पूर्ण धन्य एव औषधियों से संयुत–वणिग्जनों के द्वारा समाकीर्ण और भलीभाँति रक्षित दुर्ग में ही राजा को सदैव निवास करना चाहिए ॥८७॥

९६—राजधर्म वर्णन (१)

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृताम्वर ! ॥१
विल्वाटकी यवक्षारं पाटलावाह्लिकोषणाः ।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तोनिक्वाथः प्रोक्षणंपरम् ॥२
सविषं प्रोक्षित तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
यवसन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ॥३
कवचाभरणं छत्रं बालव्यजनवेश्मनाम् ।
शेलु: पाटलातिविषा शिग्रुमूर्वा पुनर्नवा ॥४
समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् ।
महादन्तशठन्तद्वत् प्रोक्षणं विषनाशनम् ॥५
लाक्षाप्रियंगु मञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका
यष्टच्याह्वा मधुरा चैव बभ्रु पित्तेनकल्पिताः ॥६
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले ।
ततः कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत् ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे धर्मधारियों में परमश्रेष्ठ ! राक्षसों के हनन करने और विषों का नाश करने वाले भी राजा को धारण करने अर्थात् रखने चाहिए उन अगदों को आप बतलाइये ॥१॥ श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—विल्वाटकी, यवक्षार, पाटला, वाह्लिल कोषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी इनका क्वाथ सर्वश्रेष्ठ प्रोक्षण होता है। यदि कोई भी विषयुक्त हो तो उससे प्रोक्षित होकर वह तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। यव, सैन्धव, पानी, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, कवचाभरण, वाल व्यंजन, वेश्म, इनके विष का नाश शेलु, पाटल, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समङ्गा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोणित और महादन्तशठ इन सबके उसी भाँति प्रोक्षण करने से हो जाया करता है ॥ २ । ३ । ४

। ५ ।। लाक्षा, प्रियङ्गु, मञ्जिष्ठा, ये सब समान भाग और एला (इलायची), हरेणुका, यष्टि नामवाली, मधुरा बभ्रुपित्त से कल्पित कर रखे । इसके अनन्तर मणि को हेम से बद्ध करके हाथ में धारण करना चाहिये ।। ६, ७ ।।

संसृष्टं सविषन्तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
मनोह्वया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपा: ।।८
कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठा: पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिता: ।
शुनो गो: कपिलांश्च सौम्याक्षिप्तोऽपरोगद: ।।९
विषजित् परमं कार्यं मणिरत्नञ्च पूर्ववत् ।
मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्धा विषापहा ।।१०
हरेणमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुकामधु ।
अक्षत्वक् सुरस लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि ।।११
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतै: प्रलेपिता: ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्योभवति निर्विष: ।।१२
त्र्युषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम् ।
सूक्ष्मेलात्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी ।।१३
मधुकं वेतसं क्षौद्र विषाणे च निधापयेत् ।
तस्मादुष्णाम्बुना मावं प्रागुक्तं योजयेत्तत: । १४
शुक्लं सर्जरसोपेतसर्षपा एलवालुकै: ।।१५
सुवोगा तस्करसुरौ कुसुमैरर्जुनस्य तु ।
धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ।।१६

इससे ससृष्ट सविष तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। मनोह्वया, शमीपत्र, तुम्बिका, श्वेत सर्षप, कापित्थ, कुष्ठ, मञ्जिष्ठा, पित्त के द्वारा श्लक्ष्ण कल्पित किये हुए हे सौम्य ! कुत्ता, गौ और कपिला के लिये आक्षिप्त यह दूसरा अगद होता है ।। ८ । ९ ।। पूर्व की भाँति मणिरत्न परम विषजित् करना चाहिए । मूषिका और जतुका भी

हाथ में बाँधने पर विष के अपहरण करने वाली होती हैं ॥ १० ॥ हरेणु मांसी, मन्जिष्ठा, रजनी हल्दी ', मधुका, मधु, अक्षत्वक्, सुरस, लाक्षा (लाख)—इनको पूर्व की ही भाँति श्वान को पित्त लेकर पेषण करे करे और इनसे वादित्रों और पताकाओं पर प्रलेप करे तो श्रवण करके--देख करके और सूंघ करके तुरन्त ही विष से रहित हो जाया करता है। ॥ ११ । १२ ॥ व्युषण–पाँचों लवण–मजीठ—दोनों प्रकार की हल्दी—छोटी इलायची––त्रिवृतापत्र––बिड़ङ्ग—इन्द्र वारुणी–मधुक––त्रैलस और क्षौद्र—इन सबको विषाण में निधापित करो केवल उष्ण जल से पहिले बताये हुए को योजित करना चाहिए। शुक्लसर्ज रस से युक्त–सर्षप–और एलवालुकों से समन्वित–सुवोगा–तस्कर–सुर तथा अर्जुन वृक्ष के पुष्प इनके द्वारा निर्मित धूप निवास गृह में देवे तो स्थावर और जङ्गम दोनों के विष का हनन हो जाया करता है ॥१३-१६॥

न तत्र कीटा न विषन्दर्दुरा न सरीसृपाः ।
न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते ॥१७
कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः ।
मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डलीयकैः ॥१८
क्वाथः सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुता हितः ।
रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन् ॥१९
विषैर्न बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः ।
चूर्णैं र्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः ॥२०
दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम् ।
शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पंत्वङ्मूलमेव च ॥२१
गोमूत्रघृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः ।
एकवीर ! महौषध्यः श्रृणु चातः परं नृपः ! ॥२२

जिस स्थान में इस धूप को जलाया जाता है वहाँ पर कोई भी कीट नहीं रहते हैं। न कोई विष का प्रभाव ही रहता है और दद्दुर

तथा सरीसृप भी नहीं रहा करते हैं। वहाँ पर कृत्या के भी कर्म्मों की स्थिति नहीं होती है ॥ १७ ॥ चन्दन, क्षीर, पलाश, द्रुम वल्कल, मूर्वा, एला, वालु, सरसा, नाकुली और तण्डुलीय इससे कल्पित क्वाथ जो कि काकमोची से युक्त हो तो वह सब उद कार्यों में हितप्रद होता है। रोचना पत्र, नेपाली और कुंकुम से युक्त तिलों को वहन करने वाला नर-नारी, नृप प्रिय कभी भी विषों से बाधित नहीं हुआ करता है। हरिद्रा, मजीठ, किण ही कण और निम्बज इनसे दिग्ध गात्र जो सब विषों से अर्दित हो शीघ्र ही निर्विषता को प्राप्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष के फल पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल इन पाँचों अङ्गों को गोमूत्र के साथ पीस डाले तो यह सब काम करने वाला अगद हो जाता है—ऐसा कहा गया है। हे एक वीर! हे नृप! इससे भी परम महौषधियों के विषय में मुझसे आप श्रवण कीजिए ॥१८-२२॥

बन्ध्या कर्कोटकी राजन् ! विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा ।
शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका ॥२३
सोमापिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या ।
स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका ॥२४
चण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका ।
रक्ता चैव महारक्ता तथा वर्हिशिखा च या ॥२५
कोशातकी नक्तमालं प्रियालञ्च सुलोचनी ।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली ॥२६
ईश्वरी शिवगन्धाच श्यामला वंशनालिका ।
जातुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका ॥२७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः ।
जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका ॥२८

हे राजन् ! बन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उक्तटा, शतमूली, सितानन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमापिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थल

कमलिनी, विशाली, शंख मूलिका, चण्डाली,[1] हस्ति मगधा, गोऽजापर्ण, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, वर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिन्धुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नत नागर कण्टका ।। २३, २४, २५ २६, २७, २८ ।।

नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका ।
कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुहं सपादिका ।।२९
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपासुखाकरा ।।३०
रुजापहो वृद्धिकरी तथाचैव तु शल्यदा ।
पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महोषधी ।।३१
तथामलकवन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ।।३२
केशिनी वृश्चिकालीच महानागा शतावरी ।
गरुडीच तथा वेगा जले कुमुदिनीतथा ।।३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या ।
उन्मादिनीसोमराजीसर्वरत्नानिपार्थिव ।।३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः ।
जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः ।।३५

नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, कार्त्त स्वर, महानीला, कुन्दुरुई, समादिका, मण्डूक पर्णी, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाला, महोषधी, आमलक, मन्दाक, श्याम चित्रफला, काकोली, क्षीर काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, वाराही दोनों—तण्डुलीपक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, सुरजापद, महानाभा, शतावरी, गरुड़ी, वेगा, जल में कुमुदिनी, स्थल में उत्पत्तिनी, महाभूमि-

लता, उन्मादिनी, सोमराजी, हे पार्थिव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मरकत आदि–विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक धारण करने चाहिए ।। २६–३५ ।।

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावैतालनाशना: ।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः ।।३६
सर्पतित्तिरगोमायुवस्त्र(क)मण्ठकजाश्च ये ।
सिहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवाः ।।
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ।।३७।।
इत्येवमेतैः सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वैः स्वपुरं सुरक्षितम् ।
राजा वसेत्तत्र गृहं सुशुभ्रं गुणान्वित लक्षणसंप्रयुक्तम् ।।३८

राक्षसों के हनन वाले—विष के नाशक, कृत्या और वैताल के नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्रों समुद्भव वाले—सर्प, तित्तिर, गोमायु, वस्त्र और मण्डकज—सिह, व्याघ्र, ऋक्ष, मार्जार, द्वीपी और वानरों से समुत्पन्न–कपिञ्जल, गज, बाजि, महिष और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यों के द्वारा सुरक्षित अपने पुर में राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा का गृह सुशुभ्र–गुणों से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणों से सम्प्रयुक्त होना चाहिए ।। ३६, ३७, ३८ ।।

६७–राजधर्म वर्णन (२)

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ।।१
शिरीषोदुम्बरशमीवीजपूरं घृतप्लतम् ।
क्षुद्योगः कथितो राजन् ! मासार्द्धं तु पुरातनैः ।।२

कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा बिसम् ।
दूर्वाक्षीरघृतमण्ड: सिद्धोऽयं मासिकः परः ।।३
नर शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् ।
कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ।।४
गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव ! ।
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्याविचारणा ।।५
कार्पासस्था भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् ।
सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सतत गृहे ।।६
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका ।
तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ! ।।७

महर्षि मनु ने कहा—मही के भरण करने वाला अपने दुर्ग में जिन राज्य की रक्षा के रहस्यों को निधापित करे अथवा करावे आप कृपा करके उन तत्त्वों को बतलाइये ।। १ ।। श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! शिरीष, उदुम्बर, शमो, बीजपूर को घृत से प्लुत करे इसको पुरातन लोगों के द्वारा क्ष्युद्योग कहा गया है जो मास के अर्द्ध तक होता है ।। २ ।। कशेरु के फल और मूल, ईख का मूल, विस, दूर्वा, क्षीर घृत, से मण्ड मिद्ध होता है जो पर एवं मासिक होता है ।। ३ ।। शस्त्र से हत हुए नर को प्राप्त हो जावे तो उसका मरण नहीं होता है । जहाँ पर कल्माष वेणु से विभावसु का जनम करना चाहिए । हे पार्थिव ! जहाँ पर गृह में तीन बार अपसव्य किया जाता है । वहाँ पर अन्य कोई भी अग्नि नहीं जलती है--इस विषय में कोई विचारण करने की आवश्यकता नहीं है । कार्पास में स्थित हो तो उससे भुजङ्ग का निर्मोचन हो जाता है । यह धूप निरन्तर सर्पों के निर्वासन करने के कर्म्म में परम प्रशस्त होता है ।। ३, ४, ५, ६ ।। सामुद्र सैन्धव, यव, विद्युत से दग्ध मृत्तिका, इससे जो गृह अनुलिप्त किया जावे तो हे नृप ! वह वेश्म अग्नि से कभी भी दग्ध नहीं किया जाता है ।।७।।

दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः ।
विषाच्च रक्ष्योनृपतिस्तत्रयुक्तिनिबोधमे ।।८
क्रीड़ानिमित्तं नृपति र्धारयेन्मृगपक्षिणः ।
अन्न वै प्राक् परीक्षेत वह्नो चान्यतरेषु च ।।९
वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा ।
नापरीक्षितपूर्वन्तु स्पृशेदपि महामतिः ॥१०
स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्तः सोद्वेगञ्च निरीक्षते ।
विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते ।।११
स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरते तथा ।।१२
भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप ! ।
कण्डूयति च मूर्द्धानं परिलोड्याननन्तथा ।।१३
क्रियासु त्वरितो राजन् ! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।
एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ।।१४

दिन के समय में दुर्ग में अग्नि की रक्षा करनी चाहिए । विशेष रूप से उस समय में रक्षा करनी आवश्यक है जब वायु वहन किया करता है । खास तौर से नृपति की सुरक्षा अवश्य ही करनी चाहिए । इसमें जो युक्ति अमल में लाई जावे उसको भी तुम मुझसे समझ लो । ।। ८ ।। क्रीड़ा के निमित्त राजा को मृगों और पक्षियों को धारण करना चाहिये । सर्व प्रथम अग्नि में अन्न की परीक्षा कर लेनी अत्यावश्यक है । अन्य तर पदार्थों में भी वस्त्र, पुष्प, अलङ्कार, भोजन तथा आच्छादन इन सबका महान् मति वाले राजा को पहिले भली भाँति परीक्षा किये बिना कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए ।। ९, १० ।। यह वक्त सन्तप्त होने और उद्वेग के सहित विपत्तियों को देखता है । वहाँ पर दिये हुये विष की जो परीक्षा करता है अपने उत्तरीय वस्त्र को छोड़ देने वाला— उदास स्तम्भ कुड्य आदि से अपने आपको ढक लिया करता है अर्थात्

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है ।। ११, १२।। हे नृप ! भूमि पर लिखता है-गरदन को घुमाया करता है-मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परिलोड़न किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होता है । इसी तरह के जो चिह्न होते हैं उन विपद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए।। १३, १४ ।।

समीपैर्विक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितैः ।
इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम् ।।१५
एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते ।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते ।।१६
सविषेऽऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः ।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा ।।१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम ! ।
विकृतिञ्च स्वरो याति कोकिलस्यतथानृप ! ।।१८
गतिस्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति ।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च ।।१९
विक्रोशतिशुकोराजन् ! सारिकावमतेततः ।
चामोकरोऽन्यतोयातिमृत्युं कारण्डवस्तथा ।।२०
मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः ।
हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति ।।२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरा से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए । इन्द्रायुध के वर्ण के समान-रूक्ष, स्फोट से संयुत, एकावर्त्त, दुगन्ध से युक्त होकर अत्यन्त चर-चर ध्वनि किया करती है । उसके धूम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है ।। १५, १६ ।। हे पार्थिव ! विष से युक्त अन्न में मक्खियाँ विलीन नहीं हुआ करती हैं तथा सविष अन्न

के संस्पर्श होने पर वे मक्षिकाऐं उसी में विलीन हो जाया करती हैं। ।। १७ ।। हे पार्थिव श्रेष्ठ ! चकोर पक्षी की दृष्टि विगत अर्थात् हीनता को प्राप्त हो जाया करती है। हंस की गति जो कि अति प्रशंसनीय होती है स्खलित हो जाया करती है--भृङ्गराज कूजन करता है। क्रौञ्च मद को प्राप्त हो जाता है और कृकवाकु विरुत करने लगता है। हे राजन् ! शुक विक्रोशन करता है--सारिका वमन करती है। चामीकर अन्य ओर जाता है--कारण्डव मृत्यु को प्राप्त होता है--हे राजन् ! वानर मेहन करता है--जीव जीवक ग्लानि करता है--वभ्रु हृष्ट रोमों वाला होता है और पृषत रुदन करता है ।। १८-२१ ।।

हर्षमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप ! ।
अन्नञ्च सविषं राजश्चिरेण च विपद्यते ।।२२
तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्पुषितोपमम् ।
व्यापन्नरसगन्धञ्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम् ।।२३
व्यञ्जनानान्तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः ।
ससैन्धवानां द्रव्याणांजायतेफेनमालिता ।।२४
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा ।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नपोत्तम ! ।। २५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च ।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च ।।२६
घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सत्तनुः ।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्यच तथारुणा ।।२७
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते ।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा ।।२८

हे नृप! विष के संदर्शन से शिखी हर्षको प्राप्त होता है। हे राजन्! विष के सहित अन्न चिरकाल में विपन्न करता है। उस समय में निःश्राव्य — व्यापन्न रस और गन्ध से युक्त — चन्द्रिकाओं से समन्वित और

पक्ष पर्युषितोपम हो जाता है ।।२२, २३।। व्यञ्जनों में शुष्कता—द्रव पदार्थों में बुद्बुदों की उत्पत्ति और जो सैन्धव से युक्त पदार्थ हैं उनमें फेन मालिता उत्पन्न हो जाया करती है । जो सस्यों राजि है ताम्र वर्ण वाली और पय की आभा नीली हो जाती है । मद्य एवं तोय की आभा कोकिला के तुल्य हो जाया करती है । हे नृपोत्तम ! धान्याम्ल की कृष्ण और कोद्रव की कपिल—तक्रकी मधुश्याम, नील, पीत, हो जाया करती है। घृत की उदक के समान तथा कपोत जैसी आभा हो जाती है । माक्षिक (शहद) की हरी एवं तैल की अरुण आभा होती है । जो फल अपवच होते हैं उन पर प्रकोप होता है तथा माल्यों की म्लानता हो जाया करती है ।।२४-२८।।

मृदुता कठिनानां स्यात् मृदूनाञ्च विपर्ययः ।
सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता ॥२९
श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैवच ।
लोहानाञ्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता ।।३०
अनुलेपनगन्धानां माल्यानाञ्च नृपोत्तम ।
विगन्धता च विज्ञेयातथा राजन् ! जलस्य तु ।।३१
दन्तकाष्ठत्वचः श्यामास्तनुसत्वास्तथैव च ।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम ! ।।३२
तस्माद्राजा सदा तिष्ठेत् मणिमन्त्रौषधागणैः ।
उक्तैः सरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ॥३३
प्रजावरोर्मूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ।।
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र !।३४

जो कठिन एवं कठोर द्रव्य हैं उनमें कोमलता और जो स्वभाव से ही मृदु पदार्थ हैं उनमें विपर्यय हो जाया करता है । सूक्ष्म पदार्थों के रूप का दलन होता है तथा अतिरङ्गिता आ जाया करती है । वस्त्रों में श्याम मण्डलता होती है । सर्व प्रकार के लोह और मणियों में मल के

पङ्क की उपदिग्धता हो जाती है । हे नृपोत्तम ! जो अनुलेपन करने के द्रव्य हैं जिनमें सुन्दर गन्ध होती है उनमें और माल्यों में तथा जल में विगन्धता उत्पन्न हो जाया करती है । दन्तकाष्ठ की त्वचा श्याम और तनु सत्त्व हो जाती है । हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से इन चिन्हों को जान लेना चाहिए । इसी कारण से राजा को सर्वदा मणि–मन्त्र और औषधों के गणों से संयुत होकर ही निवास करना चाहिए अथवा स्थित रहना चाहिए इन उक्त पदार्थों से अच्छी तरह से संरक्षित एवं प्रमाद से परिवर्जित राजा को होना चाहिए ।।२६-३३।। यहां पर अवनीश प्रजा के तरु का मूल होता है । उसका संरक्षण रहने से ही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है । हे रविवंश चन्द्र ! इसी कारण से सब प्रकार के प्रयत्न से नृप की रक्षा करनी चाहिए ।।३४।।

६८—राजधर्म वर्णन (३)

राजन् ! पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता ।
आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः ।।१
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत् ।
रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामङ्कारयेत्सदा ।।२
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाप्तो मिथ्या प्रियं वदेत् ।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत् ।।३
नचास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः ।
तथा च विनयेदेनं यथा च यौवनगोचरे ।।४
इन्द्रियैर्नापकृष्येत सतां मार्गात्सुदुर्गमात् ।
गुणाधानमशक्यन्तु यस्य कर्तुं स्वभावतः ।।५
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम् ।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते ।।६

अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये और रक्षा करने वालों के सहित नित्य युक्त यहाँ पर आचार्य को नियुक्त करना चाहिए ।।१।। उस पुत्र को धर्म—काम और अर्थ शास्त्रों को तथा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवानी चाहिए। रथ में तथा कुञ्जर में भी दीक्षित करावे और सदा इस अपने पुत्र से व्यायाम करवाना चाहिए ।।२।। इस पुत्र को अनेक शिल्पों की शिक्षा दिलवावे । ऐसा प्रयत्न करे कि वहां आप्त अर्थात् सत्य वक्ता होवे और कभी उसे मिथ्या बोलने का अवसर ही न होवे । राजा के पुत्र के शरीर की रक्षा के मिष से रक्षियों को नियोजित करना चाहिए ।।३।। क्रुद्ध—लुब्ध और अपमानित हुए व्यक्तियों के साथ इस पुत्र का सङ्ग कभी भी न होने देवे । जैसे ही यह यौवन में पदार्पण करे इसको विनीत बनाना चाहिए ।।४।। सज्जनों के सुदुर्गम मार्ग से इन्द्रियों के द्वारा अपकृष्ट नहीं होने देवे । स्वभाव से ही अशक्य गुणों का आधान करना चाहिये। किसी गुप्त देश में सुख से समन्वित उसका बन्धन करना चाहिए। जो राज कुमार अविनीत होता है उसका कुल शीघ्र ही विशीर्ण हुआ करता है । सभी अधिकार के कार्यों में विनीत का नियोजन करना चाहिए। आदि में छोटे पद पर इसके पश्चात् क्रम से बड़े पदों पर भी नियुक्तियाँ करे ।।५, ६, ।।

मृगया पानसक्तांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः ।
एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षतः ।।८
बहवो नरशार्दूल ! तेषां सङ्ख्या न विद्यते ।
दिवा स्वापं क्षितीशस्तु विशेषेणविवर्जयेत् ।।९
वाक्पारुष्यं न कर्तव्य दण्डपारुष्यमेव च ।
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता ।।१०
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत् ।

अर्थानां दूषणञ्चैकं तथार्थेषु च दूषणम् ॥११
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ॥१२
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ॥१३
कामः क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च ।
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ॥१४

जो पृथिवी का स्वामी हो उसको मृगया (शिकार)—मदिरा पान और अक्षक्रीड़ा (द्यूत) का परिवर्जन कर देना चाहिए। इन का जो सेवन किया करते हैं वे भूपतिगण विनष्ट हो जाया करते है। हे नरशार्दूल ! ऐसे बहुत-से राजा लोग हैं उनकी कोई भी सख्या नहीं हैं। राजा को दिन में निद्रा लेना विशेष रूप से वर्जित कर देनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि वह कभी भी वाणी की कठोरता न करे तथा दण्ड देने में भी अत्यन्त कठोर उसे नहीं होना चाहिए। नृपति को परोक्ष में किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। अर्थ के दो प्रकार के दूषण का वर्जन राजा को करना आवश्यक है—एव अर्थों का दूषण तथा अर्थों में दूषण। प्रकारों का समुच्छेद और दुर्गादि की असत्क्रिया यही अर्थों का दूषण कहा गया है तथा विप्रकीर्णता भी अर्थों का दूषण होता है। अनुचित देश तथा अनुपयुक्त काल में जो दान दिया जाता है और दान का जो पात्र ही नहीं है उसको दान देना एव असत्कर्म्म में प्रवर्त्तन करना अर्थों में दूषण बताया गया है। पृथिवी के स्वामी को प्रयत्न पूर्वक आदर के सहित काम—क्रोध—मद—मान—लोभ और हर्ष इनका वर्जन अवश्य ही कर देना चाहिए ॥८-१४॥

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः ।
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ॥१५
कृत्वा च विजयन्तेषां शत्रून् बाह्यांस्ततो जयेत् ।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः ।।१६
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत् ।
पितृपैतामहं मित्रममित्रञ्च तथा रिपोः । १७
कृत्रिमञ्च महाभाग ! मित्रं त्रिविधमुच्यते ।
तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत्तत्रापि चादृतः ।।१८
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च ।
कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ।।१९
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलस्वामी प्रकीर्तितः ।
तन्मूलत्वात्तथाङ्गानां सतुरक्ष्यः ।।२०
षडङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः ।
अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधीः ।।२१

इन सब पर अपना पूर्ण विजय करके ही राजा को फिर अपने भृत्यों पर भी जय प्राप्त करना चाहिए। जब भृत्यों पर विजय करली जावे तो फिर इसके उपरान्त पौरों एव जानपदों पर विजय करना आवश्यक होता है ।।१५।। इन सब पर विजय को स्थापित करके इसके अनन्तर ही राजा को वाहिर रहने वाले शत्रुओं पर जय का लाभ लेना चाहिए। जो वाह्य शत्रु होते हैं वे अनेक प्रकार के हुआ करते है। वे तुल्य—आभ्यन्तर और कृत्रिम होते हैं ।।१६। वे यथा पूर्व बहुत बड़े हुआ करते हैं इसलिए उनमें यत्न परायण राजा को होना आवश्यक है। पिता पितामह के समय से चले आने वाला मित्र तथा रिपु का अमित्र (शत्रु हे महाभाग ! कृत्रिम मित्र तीन प्रकार का कहा जाता है। तो भी पूर्व गुरु होता है। उसमे भी आदृत होना चाहिए। हे धर्मज्ञ ! स्वामी—अमात्य—जनपद—दुर्ग—दण्ड—कोश और मित्र इन सात अङ्गों वाला राज्य कहा जाया करता है। यद्यपि राज्य के ये उपर्युक्त सात अङ्ग होते है तो भी इन सातों में भी मूल स्वामी ही कीर्त्तित किया गया है। सभी अङ्गों का उसको मूल होने से उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा

करनी चाहिए। अन्य छै अङ्गों की भी उसके द्वारा प्रयत्न के साथ सुरक्षा करनी चाहिए। इन अङ्गों में जो कोई एक द्रोह किसी भी अङ्ग से करता है वह अल्प बुद्धि वाला ही होता है ॥१७-२१॥

बन्धस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता।
न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते ॥२२
न भाव्यं दारुणेनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः ॥२३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत्।
भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत् ॥२४
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशङ्गतम्।
व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत् ॥२५
लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्य सनो भवेत्।
शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः ॥२६
जना विरागमायान्ति सदादुःसेव्यभावतः।
स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्सवस्यैवमहीपतिः ॥२७
बध्येष्वपि महाभाग ! भ्रुकुटिं न समाचरेत्।
भाव्यंधर्मभृतांश्रेष्ठ ! स्थूललक्ष्येणभूभुजा ॥२८

राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे द्रोह करने वाले व्यक्ति का बन्ध कर देवे और शीघ्र ही उसको बाँध कर बन्द कर देना चाहिए। राजा को मृदु नहीं होना चाहिए जो राजा मृदु होता है वह परिभूत हो जाया करता है ॥२२॥ राजा को अत्यन्त दारुण भी नहीं होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्ण राजा से प्रजाजन उद्विग्न हो जाया करते हैं। जो राजा उचित समय पर मृदु होता है तथा आवश्यकता के अनुसार उचित अवसर पर दारुण होता है वह दोनों लोकों की अपेक्षा वाला हुआ करता है और उसके दोनों ही लोक सफल हुआ करते हैं। राजा को अपने भृत्यों के साथ कभी भी परिहास नहीं करना चाहिए। जो राजा हर्ष के वशङ्गत हो

जाया करता है उसको भृत्य परिभूत कर दिया करते हैं। राजा को सभी प्रकार के व्यसनों को परिवर्जित कर देना चाहिए। लोक के संग्रहण के लिए यदि कोई व्यसन करने वाला भी होवे तो उसे कृतक व्यसनी ही होना चाहिए। जो नरेन्द्र शौण्डीर होता है उससे नित्य ही उद्रिक्त चित्त वाले मनुष्य विराग को प्राप्त हो जाते हैं और उनके हृदय में सदा दुःसेव्य भावना उत्पन्न हो जाया करती है। महीपति का कर्त्तव्य है कि सभी के साथ मुस्कराते हुए भाषण करने वाला होवे। जो लोग अपराधों के कारण वध के भी योग्य हों हे महाभाग ! उन पर भी राजा को अपनी भौंहें तिरछी नहीं करनी चाहिए। हे धर्मधारियों में परम श्रेष्ठ ! राजा को सर्वदा स्थूल लक्ष्य से युक्त ही होना चाहिए ॥२३–२८॥

स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वाभवति मेदिनी।
अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः ॥२६
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवम्भवेत्।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ॥३०
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते।
राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम ! ॥३१
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्।
कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्यभूपतेः ॥३२
नारब्धानि महाभाग ! यस्य स्याद्वसुधावशे।
मन्त्रमूलंसदाराज्यंतस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः ॥३३
कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा।
मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनांसुखावहः ॥३४
मन्त्रच्छलेन वहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥३५

जिस नृपका मूल लक्ष्य होना है उसकी यह सम्पूर्ण भूमि वशगामिनी हुआ करती है। पार्थिव को समस्त कर्मों में दीर्घसूत्री नहीं

रहना चाहिए। जो नृपति दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्मों की हानि निश्चित रूप से हो जाया करती है। राग में—हर्ष में—मान में—द्रोह में—पाप कर्म्म में और अप्रिय कर्त्तव्य में दीर्घसूत्र होना प्रशस्त माना गया है। हे नृपोत्तम ! राजा को अपना मन्त्र संवृत रखने वाला सर्वदा होना चाहिए। जो राजा अपने मन्त्र को असंवृत रखता है उसको सभी आपत्तियाँ निश्चित रूप से आ जाया करती हैं। जिस राजा के कार्य्य किये जाने पर ही लोगों को मालूम हुआ करते हैं और हे महाभाग ! आरम्भ किये हुए या पूर्व में नहीं ज्ञात होते हैं उस राजा के वश में यह समग्र वसुधा हुआ करती है। राज्य का मूलतत्व मन्त्र ही सदा होता है इसलिए मन्त्र को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना चाहिए। मन्त्र के भेद के होने वाले भय से राजाओं को सदा उसे पूर्ण रक्षित रखना आवश्यक है। मन्त्र के ज्ञाता के द्वारा सुसाधित मन्त्र सभी सम्पत्तियों का और सुख का देने वाला हुआ करता है। मन्त्र के छल से बहुत से राजा लोग विनष्ट हो गये हैं। आकार—इङ्गित—गति—चेष्टा—भाषित—नेत्र तथा मुख की विकृति—इनके द्वारा अन्तर्गत मनका ज्ञान हो जाया करता है और जो नीति शास्त्र में कुशल होते हैं वे सभी कुछ मन का भाव जान लिया करते हैं और जो ऐसे कुशल हैं उनके वश में यह सम्पूर्ण वसुन्धरा रहा करती है ॥२६-३५॥

नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।
नयस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा ॥३६
भवतीह महीपाले सदा पार्थिवनन्दन !।
नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह ॥३७
नारोहेद्विषमां नावमपरीक्षितनाविकम्।
ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः ॥३८
तानानयेद्वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।
यथा न स्यात् कृशाभावः प्रजानामनवेक्षया ॥३९

तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षाता ।
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।।४०
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।।४१
तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहम्भवेत् ।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षाति ।।४२

हे पार्थिव नन्दन ! ऐसे परम-कुशल राजा के वश में यहाँ पर यह पृथ्वी वशीभूत रहा करती है। राजा को कभी एक अकेला ही मन्त्रणा नहीं करनो चाहिए और बहुतों के साथ भी अपने गुप्त मन्त्रों के विषय में मन्त्रणा नहीं करे। राजा को कभी भी विषम नौका पर समारोहण नहीं करना चाहिए जिसके नाविक के विषय में पहिले परीक्षण नहीं कर लिया हो। जो इसकी भूमि पर विजय प्राप्त करने वाले परिपन्थी हों उन सबको साम आदि उपक्रमों के द्वारा अपने वश में ले आना राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए। जिससे प्रजाओं के अनवेक्षण से कृशीभाव न होने पावे। अपने राष्ट्र का पाररक्षण करने वाले नृप को उसी भाँति करना चाहिए कि मोह से जो अनवेक्षण करके अपने राष्ट्र का अपनो ओर आकर्षण कर लेवे। जो ऐसा नहीं करता है वह नृप बान्धवों के सहित शीघ्र ही अपने राज्य से और जीवन से भी भ्रष्ट हो जाया करता है। अतएव ऐसा ही होवे जो भृत-वत्स-जातबल और कर्म के योग्य होवे। हे महाभाग ! राष्ट्र को उसी भाँति करे जो भृत और कर्म सह हो जावे। जो राष्ट्र पर अनुग्रह किया करता है वह राज्य का परिरक्षण करता है ।।३७-४२।।

सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत्फलम् ।
गृह्याद्धिरण्य धान्यञ्च महीं राजासु रक्षिताम् ।।४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता ।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ।।४४

गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च ।
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलन्तेभ्यस्तथैव च ॥४५
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवामानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ॥४६
एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मोवयश्चापि पराचलक्ष्मी॥४७

जो सञ्जात है उसको उपजीवित करे तो महान् फल वह प्राप्त किया करता है । वह राजा हिरण्य—धान्य—और सुरक्षित मही का ग्रहण करता है । बड़े भारी प्रयत्न से अपने राष्ट्र की जो रक्षा करने वाला है वह नित्य ही अपने लोगों से और दूसरों से माता तथा पिता की भाँति ही समादर प्राप्त करता है । राजा का कर्त्तव्य है कि वह सदा इन्द्रियों को संयत एवं गोपित करे और निरन्तर उनसे उपयुक्त फल प्राप्त करना चाहिए ॥४३, ४४, ४५॥ दैवमानुष विधान में सम्पूर्ण यह कर्म अधीन है उन दोनों में जो दैवी विधान है वह विशेष चिन्तन के योग्य नहीं है और पौरुष में ही क्रिया विद्यमान रहा करती है ॥४६॥ इस प्रकार से इस मही के पालन करने वाले इस नृप का परम लोकानुराग हुआ करता है । जब लोक का अनुराग राज में होता है तो उसी से समुत्पन्न होने वाली लक्ष्मी हुआ करती है और लक्ष्मीवान् की ही परा-लक्ष्मी होती है ॥४७॥

९९—दैव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा है ?

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे !
अत्र मे संशयो देव ! चछेतुमर्हस्यशेषतः ॥१
स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥२

प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ।।३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्विकं मनुजोत्तम ! ।
पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ।।४
कमणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ।।५
पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्रार्थितव्यं फलं नरैः ।
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुदर्षजिताः ।।६
तस्मात्त्रिकालं संयुक्तं दैवन्तु सफलंभवेत् ।
पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलतिपार्थिव ! ।।७

महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! दैव और पुरुषकार में कौन बड़ा है ? यह मुझे बतलाइये । इसमें मुझे संशय हो रहा है सो इसका छेदन आप पूर्णतया कर दीजिये ।। १ ।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दैव नाम वाला जो कर्म है वह भी अपना ही कर्म्म समझना चाहिये क्योंकि वह वही अपना किया हुआ कर्म है जो दूसरे (प्रथम) देह के द्वारा अर्जित किया गया है। इसीलिये मनीषी लोग इस संसार में पौरुष को ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ।। २ ।। यदि दैव प्रतिकूल भी होता है तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाया करता है । ऐसा देखा जाता है कि जो मङ्गल आचार से युक्त और नित्य ही उत्थानशाली लोग होते हैं वे पौरुष से प्रतिकूल दैव को विनष्ट कर देते हैं ।। ३ ।। हे मनुजोत्तम ! जिन पुरुषों का पूर्व जन्मों में किया हुआ सात्त्विक कर्म होता है ऐसे कुछ पुरुषों का अच्छा फल बिना ही पौरुष के किये देखने में आता है ।। ४ ।। लोक में राजस कर्म का फल कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । तामस कर्म का फल कठिन कर्म्म के द्वारा समझ लो ।। ५ ।। हे राजन् ! पौरुष के द्वारा मनुष्यों को प्रार्थित फल की प्राप्ति की जाया करती है । जो मनुष्य पौरुष से वर्जित हुआ करते हैं वे तो केवल एक दैव को ही जाना

करते हैं ॥ ६ ॥ इसलिये त्रिकाल से संयुक्त दैव सफल हुआ करता है। हे पार्थिव! पौरुष जो है वह दैव की सम्पत्ति से समय पर फल दिया करता है ॥ ७ ॥

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम!।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितंस्यात् फलावहम् ॥८
कृष्टिवृष्टिसमायोग दृश्यन्ते फलसिद्धयः।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ॥६
तस्मात्सदैव कर्तव्यं सधर्मं पौरुषं नरैः।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ॥१०
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणाः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ॥११
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या-
नुत्थानयुक्तान्पुरुषान् हि लक्ष्मीः।
अन्विष्य यत्नाद् वृणुयान्नृपेन्द्र!
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ॥१२

हे पुरुषोत्तम! दैव–पुरुषकार और काल–ये तीनों का तिगड्डा पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता ॥ ८ ॥ कृष्टि और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं। वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते हैं और असमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नहीं देते हैं। इससे मनुष्यों को सदैव धर्म के सहित पौरुष करना ही चाहिये। चाहे विपत्ति भी क्यों न हो पुरुषकार करे क्योंकि जिसका इस लोक में और परलोक में निश्चित फल होता है। जो आलसी नर होते हैं वे और केवल दैव को ही मानने में परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से उत्तम धर्म का समाचरण करना चाहिए। हे नृपेन्द्र! यह लक्ष्मी अलस–दैव परायण मनुष्यों को त्याग

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए ॥ ६-१२ ॥

१००–राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णन

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते !।
लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम ! ॥१
सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर !।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव ! ॥२
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु ।
द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च ॥३
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते ।
तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम ! ॥४
महाकुलीना ऋजवोधर्मनित्याजितेन्द्रियाः ।
सामसाध्या न चातथ्यन्तेषुसामप्रयोजयेत् ॥५
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादि वणनम् ।
तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम् ॥६

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युत वाले ! हे सुरोत्तम ! अब आप साम पूर्वक जो उपाय हों उनका वर्णन कीजिए। उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं। मैं अब उनको कहता हूँ सो आप मुझसे उनका श्रवण कर लो। यह साम दो प्रकार का कहा गया है। एक तथ्य साम होता है ओर दूसरा अतथ्य

साम हुआ करता है ॥ २ । ३ ॥ इन दोनों में जो अतथ्य साम साधु पुरुषों के आक्रोश के लिये ही हुआ करता है। हे नरोत्तम ! उसमें प्रयत्नपूर्वक साधु साम ही साध्य होना चाहिये ॥ ४ ॥ महान कुलीन, सरल, नित्य धर्म करने वाले और जितेन्द्रिय पुरुष साम के द्वारा साध्य हुआ करते हैं। उनमें कभी भी अतथ्य साम का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथ्य साम का ही प्रयोग करना चाहिये जिसमें कुल और शील आदि का वर्णन होता है तथा किये हुए उसके उपचारों का वर्णन किया जाता है ॥ ५, ६ ॥

अनयेव तथा यक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम् ।
एवं साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः ॥७
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः ।
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम् ॥८
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम् ।
असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत् ॥९
ये शुद्धवंशाः ऋजवःप्रणीता धर्मेस्थिताः सत्यपराविनीताः ।
ते सामसाध्याः पुरुषाःप्रदिष्टा मानोन्नता ये सततञ्च राजन् ॥१०

इसी युक्ति से अपने कृतज्ञता का ख्यापन इस प्रकार से साम के द्वारा धर्म में परायण मनुष्य अपने वशवर्त्ती करने चाहिए ॥ ७ ॥ यद्यपि साम के द्वारा राक्षस भी ग्रहण किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है तो भी असाधु पुरुषों में प्रयोग किया हुआ यह कभी उपकार करने वाला नहीं होता है ॥८॥ जो असाधु पुरुष होते हैं वे सामवादी पुरुष को अतिशङ्कित है—ऐसा ही हमेशा जाना करते हैं। इसीलिए इस साम का प्रयोग उनमें वर्जित ही कर देना चाहिए। जो शुद्ध वंश वाले—सरल सीधे—प्रणीत—धर्म में स्थित—सत्य परायण और विनीत पुरुष हैं उन्हीं पुरुषों को साम के द्वारा साध्य कहा गया है। हे राजन् ! जो निरन्तर ही मानोन्मत होते हैं वे ही साम से साध्य हुआ करते हैं ॥ ९, १० ॥

१०१–राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन

परस्परन्तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ॥१
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति ।
ते तु तद्दोषपातेन भेदणीया भृशन्ततः ॥२
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद्दर्शयेद्भयम् ।
एवं हि भेदयेद्भिन्नान् यथावद्वशमानयेत् ॥३
संहितान्नि विना भेदं शक्रेणापि सुदुः सहाः ।
भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदाः ॥४
स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च ।
परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम् ॥५
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुललैर्येहि भेदिताः ।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राज्ञार्थवादिभिः ॥६
अन्तःकोपो बहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् ।
अन्तः कोपो महांस्त्रत नाशकः पृथिवीक्षिताम् ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो दुष्ट पुरुष परस्पर में क्रुद्ध–भीत और अवमायित हैं। उनका भेद प्रयुक्त करना चाहिये क्योंकि वे लोग भेद के द्वारा ही साध्य होते हैं–ऐसा माना गया है ॥ १ ॥ जो लोग जिस ही दोष से दूसरे से भी नहीं डरते हैं वे उस दोष के पात से अत्यन्त ही भेदन करने के योग्य होते हैं ॥ २ ॥ अपनी आशा को दिखलावे और दूसरे से भय का प्रदर्शन करना चाहिए। इसी प्रकार से भिन्नों का भेदन करे और यथावत् उनको अपने वश में लाना चाहिये ॥ ३ ॥ जो संहित हैं वे बिना भेद के इन्द्र के द्वारा भी सुदुःसह हुआ करते हैं। इसलिये ऐसे अवसर पर नय शास्त्र के पण्डित लोग भेद की ही प्रशंसा किया करते हैं। अपने मुख से भेद का आश्रय करे और पराये मुख से

भेद ग्रहण करे। अतएव भली भाँति भेद की जांच करके ही पराये मुख से सुने हुए भेद को मानना चाहिए ॥ ४ । ५ ॥ तुरन्त ही अपने कार्य का उद्देश्य करके कुशल पुरुषों के द्वारा जो भेदित होते हैं वे ही भेदित विनिर्दिष्ट होते हैं और राजा के द्वारा अर्थवादियों से भेदित नहीं हुआ करते हैं ॥ ६ ॥ जहाँ पर राजाओं का अन्त:कोप और वहि:कोप हुआ करता है। इनमें जो अन्तःकोप होता है वह महान् है और नाश करने वाला होता है जो नृपों का विनाशक है ॥ ७ ॥

साम्ना न कोपोवाह्यस्तु कोप: प्रोक्तो महीभृतः।
महिषीयुवराजभ्यां तथासेनापतेर्नृप ॥८
अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रेतथैवच।
अन्त: कोपो विनिर्दिष्टो दारुण पृथिवीक्षिताम् ॥९
वाह्यकोपे समुत्पन्न सुमहत्यपि पार्थिवः।
शुद्धान्तस्तु महाभाग ! शीघ्रमेव जयी भवेत् ॥१०
अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति।
सोऽन्त: कोप:प्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्योमहीभृता ॥११
परत: कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा।
ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ॥१२
रक्ष्यञ्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः।
ज्ञातय: परितप्यन्ते सततं परितापिता: ॥१३
तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा।
ग्रहण दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्करः ॥१४
न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं वै श्वसन्ति च।
ज्ञातिभर्भेदनायास्तु रिपवस्ते न पार्थिवैः ॥१५
भिन्ना हि शक्या रिपव: प्रभूता: स्वल्पेन सैन्येन निहन्तमानौ।
सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्भि ॥१६

राजा का कहा हुआ कोप जो कोप वाह्य होता है वह साम के

द्वारा नहीं शान्त नहीं होता है। हे नृप ! राजाओं का अन्तःकोप महिषी–युवराज-सेनापति–अमात्य–मन्त्री और राजपुत्र का महान् दारुण विनिर्दिष्ट किया गया है ॥८, ६॥ सुमहान् वाह्य कोप के समुत्पन्न होने पर भी हे महाभाग ! अन्तः करण में शुद्ध राजा बहुत ही शीघ्र जयशील हुआ करता है ॥१०॥ भले ही कोई राजा इन्द्र के समान ही क्यों न होवे वह भी अन्तः कोप से विनष्ट हो जाया करता है। इस कारण से राजा के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अन्तः कोप की रक्षा करनी चाहिए ॥११॥ विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले के द्वारा भेद से दूसरे से कोप का उत्पादन करावे दूसरों के 'विजिगीषु को ज्ञातियों का भेदन करना चाहिए ॥१२॥ तथा अपना ज्ञाति भेद अत्यधिक प्रयत्न से रक्षित रखना चाहिए। परितापित की हुई ज्ञातियाँ निरन्तर परितप्त हुआ करती हैं ॥१३॥ तो भी सुगम्भीर चित्त के रखने वाले को उनका दान तथा मान से ग्रहण करना चाहिए। उनके साथ भेद करना तो महान् भयङ्कर हुआ करता है ॥१४॥ राजाओं के द्वारा शत्रुगण ज्ञातियों से भेदन करने के योग्य होते हैं अर्थात् शत्रुओं की ज्ञातियों में भेद कर देना चाहिए और ऐसा कर देवे कि वे अपनी ज्ञातियों पर अनुग्रह तथा विश्वास बिल्कुल ही नहीं करें ॥१५॥ भेद के द्वारा भिन्न किये हुए बहुत से शत्रु भी युद्ध में बहुत ही थोड़ी सेना के द्वारा मारे जा सकते हैं नये शास्त्र के ज्ञाताओं को जो सुसंहत हों उनका भेद कर देवे और रिपुओं का भेद अवश्य ही कर देना चाहिए ॥१६॥

१०२–राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम् ।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित् ॥१
न सोऽस्ति राजन् ! दानेनवशगो यो न जायते ।
दानेन वशगा देवाभवन्तीहसदानृणाम् ॥२

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम ! ।
प्रियो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते ।।३
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् ।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान् ।।४
यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः ।
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः ।।५
अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान्यथा वशे ।
उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः ।।६
दानं श्रेष्ठतमं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् ।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ।।७
न केवलं दानपरा जयन्ति भूलोकमेकं पुरुषप्रवीराः ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोक सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः ।।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ये जितने भी उपाय बतलाये गये हैं उन सब में दान का उपाय सबसे परम श्रेष्ठ उपाय माना गया है । यहाँ संसार में अच्छी तरह से दिए हुए दान से मनुष्य उभय लोकों का विजेता हो जाया करता है ।।१।। हे राजन् ! इस लोक में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्त्ती न हो जावे यह दान तो एक ऐसा उत्तम साधन है कि इस दान से सदा मनुष्यों के वश में देवगण भी आ जाया करते हैं ।।२।। हे नृपोत्तम ! सम्पूर्ण प्रजा दान को ही समाश्रित कर के उपजीवित रहा करती हैं । इस लोक में विप्र तो सबका ही दानवान् उत्पन्न हुआ करता है ।।३।। दान देने वाला राजा बहुत ही शीघ्र शत्रुओं को जीत लिया करता है और जो दान वाला होता है वही संहत परों को भेद युक्त कर सकता है ।।४।। यद्यपि ऐसे भी पुरुष होते हैं जो अलुब्ध और गम्भीर सागर के समान हैं जो ग्रहण नहीं किया करते हैं तो भी पक्षपाती हो जाते हैं ।।५।। अन्यत्र भी किया हुआ दान किस तरह से अन्यों को वश में करा दिया करता है किन्तु मनुष्य उपायों से दिये हुए दान को

परम श्रेष्ठ तप कह कर इसकी प्रशंसा किया करते हैं। यह दान ही पुरुष का परम श्रेष्ठ साधन होता है और दान की परम श्रेष्ठता कही जाती है। जो दानवान् होता है वह ही लोक में सदा पुत्रत्व में धारण किया जाता है ॥६, ७॥ जो दान परायण प्रवर पुरुष होते हैं वे केवल एक इस भूलोक को ही नहीं जीतते हैं वे तो सुदुर्जय राज सुरेन्द्रलोक को भी जीत लिया करते हैं जो देवगणों के निवास का स्थल होता है ॥८॥

१०३–राजधर्म वर्णन में दण्डोपाय वर्णन

न शक्या ये वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु।
दण्डेन तान् वशीकुर्यात् दण्डो हि वशकृन्नृणाम् ॥१
सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता।
धर्मशास्त्रानुसारेण स सहायेन धीमना ॥२
तस्य सम्यक् प्रणयनं यथाकार्यंमहीक्षिता।
वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्ममान्निष्परिग्रहान् ॥३
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान्।
समीक्ष्य प्रणयेद्दण्ड सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥४
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान्।
नादण्ड्या नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति ॥५
अदण्ड्यान् दण्डयेद्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकञ्च प्रपद्यते ॥६
तस्माद्राज्ञा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः।
दण्डप्रणयन कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया ॥७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो मनुष्य साम—दाम और भेद—इन तीनों उपायों से भी वश में नहीं किये जा सकते हैं उनको दण्ड से

ही अपने वश में करना चाहिए क्यों कि यह दण्ड ऐसा साधन है जो मनुष्यों को वश में कर देने वाला होता है ।।१।। राजा के द्वारा इस दण्ड का प्रणयन भली भाँति करना चाहिए और धीमान् किसी सहायक के साथ एवं धर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग करे ।।२।। राजा के द्वारा उस दण्ड का प्रणयन जिस प्रकार से करना उचित है वह बहुत अच्छा होना चाहिए । वानप्रस्थ—धर्म के ज्ञाता—ममता से रहित—निष्परिग्रह—अपने या पराये देश में धर्म शास्त्र के महा पण्डितों को भली भाँति दक्षिण करके दण्ड का प्रणयन करना चाहिए क्योंकि इस दण्ड में सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ।।३, ।। किसी आश्रम में संस्थित हो—वर्णी (ब्रह्मचारी) हो—पूज्य—महान् और गुरु हो तो ऐसा पुरुष राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य नहीं हुआ करता है क्योंकि वह तो अपने धर्म में संस्थित रहता है । निष्कर्ष यह है कि जो भी कोई अपने धम के मार्ग पर भली भाँति चल रहा है वह कभी भी दण्डनीय नहीं होना है ।।५।। जो राजा दण्ड न देने के योग्य पुरुषों को दण्डित करता है और दण्ड देने के योग्य हों उनको दण्ड नहीं देता है वह राजा यहां पर राज्य से परिभ्रष्ट होकर अन्त मे नरक का गामी होता है ।।६।। इस कारण से विनीत भाव वाले राजा के द्वारा लोकों के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से धर्म्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रणयन करना चाहिए ।।७।।

यत्र श्यामो लोहिताक्षोदण्डश्चरति निर्भयः ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधुपश्यति ।।८
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवायतः ।
मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्ड न पातयेत् ।।९
देवदैत्योगगणाः सर्वे भूतपतत्रिणः ।
उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत् ।।१०
एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च ।
सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति ।।११

पूज्यन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः ।
न ब्रह्माणं विधातारं न पूषायमणावपि ॥१२
यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु ।
रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ॥१३
विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डिनः पूजयन्ति च ।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ॥१४

जहां पर श्याम लोहिताक्ष दण्ड निर्भय होकर चरण किया करता है वहां पर प्रजा को कोई भी मोह नहीं होता है यदि नेता अच्छी प्रकार से देखता है ॥८॥ यदि दण्ड का पातन नही किया जाता है तो बालक-वृद्ध-आतुर-यति-द्विज-स्त्री विधवा इनको मत्स्य न्याय से ही दुष्ट लोग खा जाया करते हैं। यदि दण्ड का पातन नहीं किया जाता है तो देव, दैत्य, उरग गण, सब भूत और पतत्री मर्यादा का उत्क्रमण कर देवें। ॥९, १०॥ यह ब्रह्माभिशापों में—समस्त प्रहरणों में—सब विक्रम कोपों में और व्यवसाय में स्थित रहा करता है ॥११॥ दण्डी देवों के द्वारा पूजे जाया करते हैं और जो अदण्डी होते हैं वे नहीं पूजे जाते हैं। विधाता ब्रह्मा और पूषा अर्यमा की भी पूजा नहीं करते हैं। समस्त कर्मों में कुछ प्रशान्त मानव यजन किया करते हैं। रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, विष्णु, देवगण और अन्य दाण्डिगण की पूजा करते हैं। दण्ड ही प्रजा का शासन किया करता है और दण्ड ही सब प्रजा का अभिरक्षण किया करता है ॥१२, १३, १४॥

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ।
राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते ॥१५
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि ।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥१६
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत् ।
यस्माद्दण्डो दमयति अदण्ड्यान्दमयत्यपि ॥

दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधा ॥१७॥
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागोधृतः शूलधरस्य यज्ञे ।
दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वरं शिशूनाञ्च भयाद्बलस्य ॥१८

सुप्त हुओं में दण्ड ही जगता है और बुध लोग दण्ड को ही धर्म्मं जानते हैं। राजा के द्वारा प्राप्त होने वाले दण्ड के भय से ही पापी लोग पाप कर्म नहीं किया करते हैं ॥१५॥ कुछ लोग यमराज के द्वारा मिलने वाले दण्ड के भय से और पारस्परिक दण्ड के भय से भी पाप कर्म नहीं करते हैं। इस प्रकार से इस सांसिद्धिक लोक में सभी कुछ दण्ड में ही प्रतिष्ठित है ॥१६॥ यदि दण्ड का पातन नहीं किया जावे तो सब लोग अन्धतम में मज्जन किया करें। क्योंकि दण्ड दमन किया करता है और जो अदण्डनीय है उनका भी दमन किया करता है। दमन करने से और दण्डन करने से कुछ लोग इसको दण्ड करते हैं दण्ड से भीतहुए समेत देवों ने यज्ञ में भगवान् शूलधर का भाग धृत किया था कुमार में सेनापतित्व का पद दिया था और बल के भय से शिशुओं का वर दिया था ॥१७, १८॥

१०४–राजधर्म वर्णन में देवसाम्यत्व वर्णन

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ॥१
तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् ।
ततो भवति लोकेषु राजाभास्करवत्प्रभुः ॥२
यदास्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति ।
नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः ॥३
यथा यमः प्रियद्वेष्येप्राप्ते कालेप्रयच्छति ।
तथा राज्ञा विधातव्याःप्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥४

वरुणेन यथा पाशैर्बद्धएव प्रदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ।।५
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः ।।६
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यंस्यात्सर्वकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रतेऽस्थितः ।।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—भगवान् स्वयम्भू ने दण्ड के प्रणयन के ही लिये राजा का सृजन किया था और इस की सृष्टि देवों के भागों को ग्रहण करके समस्त भूतों की रक्षा के लिए की गयी थी ।।१।। राजा में वहुत तेज होता है और तेज कोई भी इसको देख नहीं सकता है । इसके अनन्तर ही लोकों में राजा भगवान् भास्कर के ही समान प्रभु हुआ करता है । जिस समय में इस राजा के दर्शन में लोक प्रसाद की प्राप्ति किया करता है उस समय में यह नयनों को आनन्दकारी होने से चन्द्रमा हो जाता है ।।२, ३।। जिस प्रकार से यमराज प्रिय या द्वेष्य कोई कैसा भी हो काल आने पर वह अपने दूत भेजकर बुला ही लेता है उसी भाँति राजा को भी प्रजा के साथ करना चाहिए और चयव्रत धारण कर लेवे । वरुण के द्वारा जिस तरह पाशों से बद्ध होकर ही दिखलाई दिया करता है उसी भाँति पापों से निगृहीत करे—यही वारुण व्रत कहलाता है ।।४, ५।। जिस तरह परिपूर्ण चन्द्रमा का दर्शन प्राप्त करके मानव परम हर्षित हुआ करता है उसी भाँति जिसमें प्रकृतियाँ है और वह नृप चन्द्रमा के समान ही होता है । राजा नित्य ही समस्त कर्मों में प्रताप से युक्त अत्यन्त तेजस्वी होता है । दुष्ट सामन्त और हिंसक जीवों में राजा आग्नेय व्रत में स्थित रहा करता है ।।६, ७।।

यथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ।
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ।।८
चन्द्रस्याग्ने पृथिव्याश्चतेजोव्रतं नृपश्चरेत् ।

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोप्यथवर्षति ॥९
तथाभिवर्षत्स्वंराज्यंकाममिन्द्रव्रतंस्मृतम् ।
अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ॥
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकर्मव्रतं हि तत् ॥१०
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः ।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥११

जिस तरह से सब भूतों का विशेष मरण करने वाले का पार्थिव व्रत होता है । इन्द्र, सूय, वायु, यम, वरुण, चन्द्र अग्नि और पृथिवी का तेजोव्रत नृप को चरण करना चाहिए । वर्षा के चार मासों में जिस तरह से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं उसी भाँति से राजा को अपने राज्य में प्रजा की कामनाओं की पूर्त्ति वर्षा भली भाँति करनी चाहिए —इसी को इन्द्रव्रत कहा जाता है । जिस तरह से आठ मास तक सूर्य्य अपनी किरणों के द्वारा जल का हरण किया करता है उसी तरह से राजा राष्ट्र से कर का आहरण करे —यही नित्य कर्मव्रत कहा गया है ॥८, ९, १०॥ मारुत समस्त भूतों में प्रवेश करके जिस तरह से सचरण किया करता है वैसे ही चारों के द्वारा राजा को प्रवेश करना चाहिए यही मारुत व्रत कहा जाता है ॥११॥

१०५—ग्रह यज्ञादि का विधान वर्णन

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः ।
कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपापप्रणाशनः ॥१
क्रियते विधिना येन यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकैः ।
तत्सर्वं विस्तराद्देव ! कथयस्व जनार्दन ! ॥२
इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप ।

राज्ञा धर्मप्रक्तेन प्रजानाञ्च हितेप्सुना ।।३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः ।
नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ।।४
सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः ।
गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमिं परिक्षयेत् ।।५
खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम् ।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ।।६
युग्मासु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः ।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ।।७

महर्षिवर मनु ने कहा—हे देव ! नृपों के द्वारा ग्रह यज्ञ और लक्ष होम किस प्रकार से करना चाहिए ? अथवा कटि होम भी किस तरह से करे जो कि सभी तरह के प्रवल पापों का विनाश करने वाला होता है । ।।१।। जिस विधि से यह किया जाता है और जो शान्ति चिन्तक लोगों ने देखा है हे जनार्दन देव ! उसका वर्णन आप विस्तार पूर्वक सब कीजिएगा ।।२।। मत्स्य भगवान् ने कहा—हे नृप ! अब मैं प्रसङ्ग से ही तुमको कहूँगा । प्रजाओं के हित के चाहने वाले और धर्म में प्रसक्त नृप के द्वारा एक लाख होम से सयुत ग्रह यज्ञ सदा ही करना चाहिए । यह यज्ञ नदियों के सङ्गम में तथा देवों के आगे ही करना चाहिए ।।३, ४।। दैवज्ञों से अधिष्ठित नृप को समतल भूमि के भाग में गुरुदेव और ऋत्विजों के साथ भूमिका परिक्षय करना चाहिए । वहीं पर सुसम और एक हाथ लम्बा चौड़ा कुण्ड भी खोदना चाहिए । एक लक्ष के होम करने में यह कुण्ड दुगुना बनावे तथा कोटि होम करना हो तो चौगुना बड़ा बनवाना आवश्यक है ।।५, ६।। दोनों में वेदों के पारगामी आठ ऋत्विज बताये गये हैं जो कि कन्द-मूल और फलों के आहार करने वाले अथवा दधि तथा क्षीर के अशन करने वाले होने चाहिए ।।७।।

वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानिच ।

सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धयेत् ॥८
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः ।
त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ॥९
कुष्माण्डजुंहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश ।
होतव्या दशसाहस्रं बादरैर्जातवेदसि ॥१०
श्रियोमन्त्रेण होतव्याःसहस्राणि चतुर्दश ।
शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ॥११
हुत्वा शतसहस्रस्तु पुण्यस्नानं समाचरेत् ।
कुम्भैः षोडशसङ्ख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ॥१२
स्नापयेद्यजमानन्तु ततः शान्तिर्भविष्यति ।
एवं कृते ते यत्किञ्चिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥१३
तत्सर्वं नाशतायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप ! ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ॥१४

जो वेदी निर्मित कराई जावे उसमें अनेक प्रकार के रत्नों को निधापित करे और उस वेदी का सिकता से परिवेष बनवाना चाहिए। इसके अनन्तर उसमें अग्नि को समिन्धित करे ॥८॥ गायत्री से दश सहस्र आहूतियाँ देवे। मानस्तोक से षड्गुण—ग्रह आदि के मन्त्रों से तीस—जिनके विष्णु देवता हैं उन मन्त्रों से चार—कूष्माण्डों से पाँच—कुसुम आदि से षोड़श और बादरों से दश सहस्र अग्नि में हवन करना चाहिए। ॥९, १०॥ श्री के मन्त्र से चोदह सहस्र आहूतियों द्वारा हवन करे। शेश जो पाँच सहस्र आहूतियाँ हैं वे इन्द्र दैवत मन्त्रों से हवन करनी चाहिए। ॥११॥ सौ सहस्र आहूतियों का हवन करके फिर पुण्य स्नान करे जो सुमङ्गल—साहिरण्य सोलह संख्या वाले कुम्भों के द्वारा किया जाना चाहिए ॥१२॥ इस तरह से यजमान का स्नपन करावे। इसके अनन्तर शान्ति होगी। इस तरह से करने पर जो कुछ भी कष्ट ग्रहों की पीड़ा से समुत्पन्न होगा वह सब नाश को प्राप्त हो जाता है। हे नृप ! फिर दक्षिणा

देवे। सब प्रकार के प्रयत्नों से अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि यज्ञ में दक्षिणा परम प्रधान कही गयी है ॥१३, १४॥

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च।
अनडुद्गोशतं दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम् ॥१५
यथा विभवसारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत्।
मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ॥१६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र! विधानं परिकीर्तितम्।
इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम् ॥१७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर!।
नमदा देविकायास्तु तटे होमो विधीयते ॥१८
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन! षोडश।
सर्वहोमेतु राजर्षे! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम् ॥१९
ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षां साम्वत्सरीं स्थितः।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ॥२०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप!।
यजमानः पयोभक्षो फलाशीच तथानघ! ॥२१

ऋत्विजों को दक्षिणा में हाथी — अश्व, रथ, मान भूमि, वस्त्र, युग, अनड्वान्, सौ गौ आदि समर्पित करे ॥१५॥ जैसा भी अपना वैभव हो उसी के सार के अनुसार ऋत्विजों को दक्षिणा देवे और धन अतुल होते हुए भी दक्षिणा में कृपणता करने का वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिए हे नराधिप! एक मास पूर्ण हो जाने पर यह एक लक्ष आहूतियों का होम समाप्त होजाया करता है। हेराजेन्द्र! यह एक लक्ष के होम का पूर्ण विधान कीर्त्तित कर दिया गया है अब मैं कोटि होम के विधान को कहता हूँ उसका आप श्रवण करिये ॥१५–१७॥ हे नरेश्वर! गङ्गा के तट पर–यमुना सरस्वती के तीर पर–नर्मदा अथवा देविका नदी के तट पर यह होम करे। हेरविनन्दन! उसमें भी सोलह ऋत्विज नियोजित करने चाहिए। हे

राजर्षे ! सब प्रकार के होम में विप्र को धन देवे । ऋत्त्विक् और आचार्य के सहित साम्वत्सरी दीक्षा में स्थित होता हुआ चैत्र मास के प्राप्त होने पर या विशेष रूप से कार्त्तिक मास के आने पर इसका प्रारम्भ करना चाहिए । अथवा वर्ष प्रति वर्ष करे। हे नृप ! हे अनघ ! यजमान को यम का अशन करने वाला तथा फलों का आहार करने वाला होना चाहिए ।। १८–२१ ।।

यवादिब्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः ।
पालाशाः समिधःशस्ता वसोर्धारातथोपरि ॥२२
मासेऽथ प्रथमे दद्यात् ऋत्विग्भ्यः क्षीरभोजनम् ।
द्वितीये कृसरां दद्याद्धर्मकामार्थसाधनीम् ॥२३
तृतीये मासि संयावो देयो वै रविनन्दन ! ।
चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन् ॥२४
पञ्चमे दधिभक्तन्तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम् ।
पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः ॥२५
षष्ठ्योदनञ्च नवमे दशमे यवषष्टिका ।
एकादशे समाषन्तु भोजनं रविनन्दन ! ॥२६
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वहः ।
षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम् ॥२७
देया द्विजानां राजेन्द्र ! मासि मासि च दक्षिणाः ।
अहतवासाः सम्वीतो दिनार्द्धं होमयेच्छुचिः ॥२८

यव आदि ब्रीहि, माष, तिल और सर्षप, पलाश की समिधाऐं प्रशस्त होती हैं तथा ऊपर में वसोर्धारा हो । प्रथम मास में ऋत्विजों के लिये क्षीर का भोजन देना चाहिए । दूसरे मास में कृशारा देवे जो धर्म-काम और अर्थ की साधन करने वाली होती है ।। २२ । २३ ।। तीसरे मास में संयाव देवे । हे रविनन्दन ! चतुर्थ मास में विप्रों की प्रीति का आवहन करते हुए मोदक देना चाहिए । पाँचवें मास में दधि और भात

देवे और छठवें मास में सत्तू का भोजन देना चाहिए। सातवें मास में पूषा देनी चाहिए तथा आठवें महीना में घृत पूपक का भोजन देवे। ॥ २४ । २५ ॥ नवम मास में षष्ठयोदन देवे और दशम मास में यव षष्टिका का भोजन देना चाहिए। हे रविनन्दन! एकादश मास में माष के सहित भोजन देवे। हे रवि कुलोद्वह ! द्वादश मास के सम्प्राप्त होने पर–षट्रसों के सहित भक्ष्यों से मुक्त सर्व काम करनं वाला भोजन द्विजों को देना चाहिए। हे राजेन्द्र! मास-मास में दक्षिणा भी द्विजों को अवश्य ही देनी चाहिए। अहतवासा और सम्वीत होकर परम शुचि होवे और दिनार्द्ध में होम करना चाहिए॥ २६–२८॥

तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः।
इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम् ॥२९
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र! पशुघातसमन्वितम्।
सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत् ॥३०
एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते।
सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ॥३१
पुराडाशस्ततः साध्यो देवतार्थं च ऋत्विजैः।
युक्तो वसन् मानवंश्च पुनः प्राप्तार्चनान् द्विजान्। ३२
प्रीणायित्वा सुरान् सर्वान् पितॄनेव ततः क्रमात्।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम् ॥३३
समाप्तौतस्य होमस्यविप्राणामथ दक्षिणाम्।
समाञ्चौवतुलां कृत्वाबद्ध्वा शिक्यद्वयंपुनः ॥३४
आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम्।
सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ॥३५

इसलिये द्विजों के ही साथ में यजमानों को सदा उठना चाहिए। इन्द्रादि देवों का प्रीणन सब कामनाऐं पूर्ण करने वाला होता ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र! इस प्रकार से सुरों का पशुघात से समन्वित प्रीणन का

सम्पादन करके समस्त प्रकार के दान देवे तथा देवों का अग्निष्टोम करावे इस रीति से सब सम्पादन करके एक-एक शत पर पूर्णाहुति करनी चाहिए। जब सहस्र आहुतियाँ हो जावें तो यावच्छत सहस्रक द्विगुणा आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर देवता के लिये ऋत्विजों के द्वारा पुरोडाश साध्य करे तथा युक्त होता हुआ वास करे। पुनः मानवों के द्वारा द्विजों का अर्चन करना चाहिये ॥ २९, ३०, ३१, ३२ ॥ सब सुरों का प्रीणन (प्रसन्नता) करके पितृगण के लिये क्रम से शास्त्र में वर्णित विधान के द्वारा पिण्डों का समर्पण करना चाहिये ॥ ३३ ॥ उस होम की समाप्ति होने पर विप्रों को दक्षिणा के देने की व्यवस्था करनी चाहिये। तुला को समान करके दोनों पलड़ों को भली भाँति बाँध करके उसमें अपने आपको और दूसरी अपनी पत्नी का तोलन करे। सुवर्ण से अपने आपको तोले और चाँदी से अपनी प्रिया का तोलन करे ॥ ३४ । ३५ ॥

तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
ददेच्छतसहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च ।।३६
सर्वस्वं वा ददेत्तत्र राजसूयफलं लभेत् ।
एतङ्कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत् ।।३७
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः ।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणितं भवेत् ।।३८
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते ।
एवं शान्तिस्तवाख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत् ।।३९
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे ।
सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ।।४०
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप ! ।।४१

राजा को इस भाँति तोलन करके वित्त की शठता का परित्याग करते हुए दान देना चाहिए ।। ३६ ।। अथवा अपना सर्वस्व दान कर देवे

तो वहाँ पर राजसूय यज्ञ के पुण्य–फल की प्राप्ति का लाभ करे। इस रीति से विधान के साथ सब कुछ करके फिर उन सब विप्रों को विसर्जित कर देना चाहिए। उस समय में यह प्रार्थना करनी चाहिए—भगवान् समस्त यज्ञों के ईश्वर श्री हरि पुण्डरीकाक्ष प्रसन्न होवें। उन प्रभु के पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाने पर यह सम्पूर्ण जगत् तुष्ट हो जाया करता है और उनके प्रीणित होने पर सब प्रीणित हो जाते हैं। इस प्रकार से देवमानुषों के द्वारा कारित सर्वोपघात होने पर इस रीति से आपकी शान्ति बताई गई है जिसको करके तुम सुकृति हो जाओगे। जन्म और मरण के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करे तथा कृत एवं अकृत के विषय में भी शोच न करे। हे नृप! समस्त तीर्थों में स्नान करने का जो पुण्य–फल होता है और सब यज्ञों में जो फल होता है वह सम्पूर्ण फल ये तीन यज्ञ करके ही मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ॥ ३७ । ३८ ॥ ३९ । ४० । ४१ ॥

१०६–यात्राकाल विधान वर्णन

इदानी सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ।
यात्राकालविधानंमे कथयस्व महीक्षिताम् ॥१
यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा ।
पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽयं तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥२
दुष्टायोधा भृता भृत्याः साम्प्रतञ्चबलंमम ।
मूलरक्षासमर्थोस्मि तदायात्रां प्रयोजयेत् ॥३
अशुद्धपार्ष्णिनृपतिर्नतु यात्रां प्रयोजयेत् ।
पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यंमूले निक्षिप्यचव्रजेत् ॥४
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः ।
चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टञ्च शारदीम् ॥५

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः ।
शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालएव सुदुर्लभः ॥६
दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडित परम् ।
षडङ्गपीड़ासन्तप्तं पीड़ितञ्च तथा ग्रहैः ॥७

महर्षि मनु ने कहा—हे सर्व धर्मज्ञ ! आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी हैं, इस समय में राजाओं की यात्रा–काल का जो कुछ विधान हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाइये ।। १ ।। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस समय में नृपति वलीयान् आक्रन्द से युक्त मान लेवे उस समय में पार्ष्णिग्राह से अभिभूत इसको तीर्थ यात्रा की प्रयोजना करनी चाहिए। दुष्ट योधा—भृत भृत्य है इस प्रकार से इस समय में मेरा बल विद्यमान है। मैं इस समय में मूल रक्षा में समर्थ हूँ। उसी समय में यात्रा को प्रयोजित करना चाहिए ।। २ । ३ ।। जो नृपति अशुद्ध पार्ष्णि वाला हो उसे यात्रा प्रयोजित नहीं करनी चाहिए। पार्ष्णिग्राह से अधिक सैन्य को मूल में निक्षिप्त करके गमन करे ।। ४ ।। नराधिप को चैत्री अथवा मार्गशीर्षो पूर्णिमा मे यात्रा के लिये गमन करना चाहिए। चैत्री में निदाघ के दृश्य को देखे और शारदी पुष्टि वा हनन करता है ।५। यह ही मार्गशीर्षी में विपर्यस्त होता है । नराधिप शत्रु के व्यसन में गमन करे क्योंकि यह काल ही सुदुर्लभ होता है ।।६।।

ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिश याञ्च प्रपद्यते ।
भूकम्पोल्का दिशं याति याञ्चकेतुःप्रसूयते ।।८
निर्घातश्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिपः ।
स वलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीड़ितम् ।।९
सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्र प्रायादरिं नृपः ।
यूकामाक्षीकबहुलं बहुपङ्कन्तथा बिलम् ।।१०
नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथा मङ्गलवादिनम् ।
अपेतप्रकृतिञ्चैव निःसारञ्च तथा जयेत् ।।११

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्न परस्परम् ।
व्यसनाशक्तनृपतिं वलं राजाभियोजयेत् ।।१२
सैनिकानां न शास्त्राणिस्फुरन्त्यङ्गानियत्रच ।
दुःस्वप्नानिचपश्यन्तिवलन्तदभियोजयेत् ।।१३
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा ।
तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ।।१४

दिव्यान्तरिक्ष और क्षिति से समुत्पन्न उत्पातों से परम पीड़ित–षडक्ष पीड़ा से सन्तप्त तथा ग्रहों से पीड़ित—जलती हुई उल्का जिस दिशा को जाती है—भूकम्पोल्का जिस दिशा को जाती है और केतु को प्रसूत किया करती है । जहाँ पर निर्घात गिरता है उसी दिशा को राजा को गमन करना चाहिये । उस नृप को वल--व्यसन मे युक्त—दुर्भिक्ष से पीड़ित और जिसके अन्दर कोप ममुत्पन्न हो गया हो ऐसे शत्रु पर शीघ्र ही चढ़ाई नृप को कर देनी चाहिए । जिसमें यूका और यक्षिकाऐं बहुत हों–अधिक पङ्कयुक्त–बिल -नास्तिक —भिन्न मर्यादा वाला–मङ्गलवादी–अपेत प्रकृति वाला और निस्सार को जीत लेना चाहिए ।। ७, ८, ९, १०, ११ ।। जिस राजा की सेना ऐसी हो कि उसके नायक से विद्वेष हो और जो परस्पर में भिन्न हो—जिस राजा की आसक्ति वश्सनों में हो ऐसे बलहीन नृप के साथ अभियोग करना चाहिए अर्थात् युद्ध करे । जिसके सैनिकों के पास शस्त्र न हों और जिसमें अङ्ग स्फुरित होते हों–जो बुरे स्वप्न देखते हों ऐसों पर बल का आभयोजन करना चाहिए । उत्साह और बल से युक्त—जिसको सेना पूर्ण अनुराग वाली हों—तुष्ट एवं पुष्ट वल वाला राजा ही अपने शत्रुओं से युद्ध करने को अभिमुख होवे ।। १२,१३, १४ ।।

शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुस्वप्ननाशने ।
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत् ।।१५
ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च ।

प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः ।।१६
एवन्तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः ।
देशकालोपपन्नान्तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः ।।१७
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे ।
उलूकस्यनिशि ध्वाङ्क्षः सचतस्यदिवावशे ।।१८
एवं देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् ।।१९
पदातिसागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् ।।
खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः ।।२०।।
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ ।
सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवापतेः ।।२१
अभियोज्यो भवेत्तेन वा शत्रुर्विषममाश्रितः ।
गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुन्तथैव च ।।२२

परम धन्य अर्थात् अनुकूल शरीर के स्फुरण होने पर, दुःस्वप्नों के नाश होने पर और अच्छे निमित्त एवं शकुनों के होने पर ही राजा को अपने शत्रु के नगर में प्रवेश करना चाहिए छै नक्षत्रों के शुद्ध होने पर तथा ग्रहों के बिल्कुल अपने अनुकूल हो जाने पर ही जब, प्रश्न काल परम शुभ होवे तभी राजा को शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए। इस प्रकार से दैव (भाग्य) से सुसम्पन्न होकर पौरुष से भी पूर्ण समन्वित राजा को देश तथा काल से उपपन्न यात्रा करनी चाहिए। स्थल में नाग और सजल देश में नक्र के वश में होने पर तथा रात्रि में उलूक एवं दिन में ध्वाङ्क्ष (कौआ) के वशगत होने पर ही इस प्रकार से देश तथा काल का ज्ञान प्राप्त करके राजा को अपनी यात्रा करनी चाहिए ।। १५। १६ । १७ । १८ । १९ ।। वर्षा ऋतु में ऐसी सेना को तैयार करे जिसमें पदाति सैनिक अधिक हों। हेमन्त और शिशिर ऋतु में अधिक रथों एवं अश्वों की समाकुलता होनी चाहिये। नराधिप को ग्रीष्म ऋतु में खर

और उष्ट्रों की अधिकता वाली सेना सज्जित करनी चाहिए ।।२०।। वसन्त एवं शरद् ऋतु में चतुरङ्ग बल से समुपेत सेना बनानी चाहिये । जिसमें पदाति–अश्व–रथ और गज सभी समुचित संख्या में स्थित होवें । जिस राजा की सेना अधिक पदाति (पैदल) वाली हो उस विषम का आश्रय लेने वाला शत्रु राजा के द्वारा अभियोजित होना चाहिए । गमन करने के योग्य—वृक्षों से समावृत देश में स्थित शत्रु का अभियोजन करे ।। २१ । २२ ।।

किञ्चित् पङ्के तथा यायाद् वहुनागो नराधिपः ।
तथाश्ववहुलो यायाच्छत्रुं समं पथिस्थितम् ।।२३
तमाश्रयन्तो वहुलास्तांतु राजा प्रपूजयेत् ।
खरोष्ट्रवहुलो राजा शत्रुबन्धेन संस्थितः ।।२४
बन्धनस्थोऽभियोज्योऽरिस्तथाप्रावृषिभूभुजा ।
हिमपातयुते देशेस्थितंग्रीष्मेऽभियोजयेत् ।।२५
यवसेन्धनसंयुक्तः कालः पार्थिव ! हैमनः ।
शरद्वसन्तौधर्मज्ञ ! कालौधारणणौस्मृतौ ।।२६
विज्ञाय राजा हितदेशकालौ दैवं त्रिकालञ्चतथैव वुद्ध्वा ।
यायात्परंकालविदांमतेन सञ्चिन्त्यसार्द्धं द्विजमन्त्रविद्भिः ।।२७

वहुत अधिक नागों वाले नराधिप को कुछ पङ्क में उसी प्रकार से गमन करना चाहिए जिस तरह से वहुत अश्वों वाला राजा मार्ग में स्थित समान शत्रु का अभियोजन कर लेवे ।। २३ ।। उसके जो वहुत से आश्रय ग्रहण करने वाले हों उनका राजा को पूजन करना चाहिए । खरों और उष्ट्रों की वहुलता वाला शत्रु राजा जब बन्ध से संस्थित हो तो उस बन्धन में संस्थित शत्रु को राजा के द्वारा वर्षा ऋतु में अभियोजन करे । हे पार्थिव ! यवस और ईंधन से संयुक्त काल हेमन्त होता है । हे धर्म्मज्ञ ! शरद् और वसन्त ये दोनों ऋतुऐं साधारण काल कहे गये हैं । राजा का कर्त्तव्य है कि उसे हितकर देश और काल को समझ

कर तथा दैव-त्रिकाल को भी जानकर काल के वेत्ता ज्योतिषियों के मत से पूर्ण रूप से जानकर एवं द्विज और मन्त्र वेत्ताओं के साथ भली भाँति चिन्तन करके ही यात्रा में गमन तथा शत्रु पर अभियोजन करना चाहिए ।। २४-२७ ।।

१०७–अङ्ग स्फुरण विचार

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च ।
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ ! त्वंहिसर्वविदुच्यते ।।१
अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणम्भवेत् ।
अथ शस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ।।२
अङ्गानां स्पन्दञ्चैव शुभाशुभविचेष्टितम् ।
तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यात्तद्विधो भुवि ।।३
पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्द्ध्नि ललाटेरविनन्दन ! ।
स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसङ्गमः ।।४
भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धानगमः ।
उत्कण्ठोपगमो मध्येदृष्टंराजन् ! विचक्षणैः ।।५
दृग्वन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात् ।
योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियाश्रुतिः ।।६
नासिकायां प्रीतिसौख्यंप्रजाप्तिरधरोष्ठजे ।
कण्ठे तु भोगलाभःस्याद्भोगवृद्धिरथांसयो ।।७

महर्षि मनु ने कहा—हे समस्त धर्म धारियों में परम श्रेष्ठ देव ! आपको तो सभी कुछ के ज्ञाता कहा जाता है। अतएव अब आप कृपा करके जो निमित्त शुभ हों उन्हें और जो परम अशुभ हों उनको भी बतलाने का श्रम कीजिए ।।१।। मत्स्य भगवान् ने कहा—मानव के अङ्ग

में जो दक्षिण भाग है उसमें जो प्रस्फुरण होता है उसे परम प्रशस्त कहा गया है। उसी भाँति से वाम भाग में पृष्ठ और हृदय का प्रस्फुरण भी शस्त होता है ॥२॥ महर्षि मनु ने कहा—हे भगवन् ! अङ्गों का स्पन्दन और उसके शुभ एवं अशुभ का विचेष्ठित होता है उसको विस्तार पूर्वक मेरे समक्ष में वर्णित कीजिए जिससे इस भूमण्डल में उसी प्रकार का मनुष्य हो जावे ॥२॥ श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! मूर्धा में स्पन्दन हो तो पृथ्वी का लाभ होता है—ललाट में प्रस्फुरण हो तो स्थान की विशेष वृद्धि होती है—भ्रूओं में हो तो प्रिय का सङ्गम होता है। नेत्र के भाग में स्पन्दन हो तो भृत्य की प्राप्ति होती है और दृग के उपान्त में प्रस्फुरण हो तो धन का आगम हुआ करता है। हे राजन् ! विचक्षण पुरुषों ने देखा है कि मध्य भाग में स्पन्दन हो तो उत्कण्ठा का उपगम हुआ करता है। दृग्बन्धन में और सङ्गर (युद्ध) में बहुत ही शीघ्र जय का लाभ हुआ करता है। अपाङ्ग देश में होने से स्त्री का उपभोग होता है और श्रवण के अन्त में विस्फुरण हो तो प्रिया की श्रुति होती है। नासिका में स्पन्दन होने से प्रीति होती है और सौख्य होता है अधरोष्ठ में स्पन्दन से प्रजा की प्राप्ति होती है। कण्ठ में भोग का लाभ और अंस देशों में स्पन्दन से भोग की वृद्धि हुआ करता है ॥४–७॥

सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः ।
पृष्ठे पराजयः सद्यः जयो वक्षःस्थले भवेत् ॥८
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने ।
स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चैव धनागमः ॥९
जानुसन्धौ परैः सन्धिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप ! ।
दिशैकदेशनाशोऽथ जङ्घायां रविनन्दन ! ॥१०
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप ! ।
सलाभञ्चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप ! ॥११
लाञ्छनं पिटकञ्चैव ज्ञेय स्फुरणवत्तथा ।

विपर्ययेण विहिता सर्वस्त्रीणां फलागमः ॥
दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ॥१२
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य ।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणंस्यात् ॥१३

वाहुओं के प्रस्फुरण से सुहृत का स्नेह और हाथ में होने से धन का समागम हुआ करता है। पृष्ठ में होने से तुरन्त ही पराजय होती है तथा वक्षः स्थल में स्पन्दन से जय हुआ करता है। कुक्षियों में होने से प्रीति उपदिष्ट की गई है और स्तन में स्पन्दन से स्त्री के प्रजनन हुआ करता है। नाभि देश में प्रस्फुरण होने से स्थान का भ्रंश हुआ करता हैं तथा अन्त्र में होने से धन का आगम होता है। जानुओं की सन्धि में प्रस्फुरण होने से परों से सन्धि होती है जो कि बहुत बलवान् हुआ करते हैं। हे नृप ! हे रविनन्दन ! दिशा के एक देश में होने से नाश होता है तथा जङ्घा में स्पन्दन हो तो उत्तम स्थान का लाभ होता है और पैरों में होने से लाभ के सहित मार्ग का गमन होता है। हे नृप ! पादतल में होने से लाञ्छन लगता है और स्फुरण की ही भाँति फिर कभी जान लेना चाहिए। यह पुरुष के विषय में ही कहा गया है स्त्रियों के विषय में विपर्यय से फलागम हुआ करता है। प्रशस्त अङ्ग दक्षिण में भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है इसलिए अन्यथा सिद्धि के प्रजल्पन से प्रशस्त और निन्दित फलका अनिष्ट चिन्हों के उपगम होने पर द्विजों का सुवर्ण के द्वारा तर्पण करना चाहिए ॥८-१३॥

१०८—स्वप्न दर्शन वर्णन

स्वप्नाख्यानं कथं देव ! गमने प्रत्युपस्थिते ।
दृश्यन्तेविविधाकाराःकथन्तेषांफलंभवेत् ॥१

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने ।
नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ॥२
चूर्णनं मूर्द्धिन कांस्यानां मुण्डनं नग्नतातथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ।३
उच्चात् प्रपतनञ्चैव दोलारोहणमेव च ।
अर्जनं पक्कलोहानां हयानामपि मारणम् ॥४
रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च मण्डलस्य तथैव च ।
वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ॥५
भक्षणं पक्वमांसानां तैलस्य कृसरस्य च ।
नर्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव ॥६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम् ।
स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा ॥७

महा महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! कहीं पर गमन के प्रत्युपस्थित होने पर स्वप्न का आख्यान किस प्रकार से हुआ करता है ? ये स्वप्न तो अनेक एवं विभिन्न आकार वाले दिखालाई दिया करते हैं फिर उन सबका फल किस प्रकार से हुआ करता है ।। ।। श्री मत्स्य देवने कहा—इस समय में मैं स्वप्नों के दर्शन में जो निमित्त होता है उसे ही बतलाता हूँ। केवल एक नाभिको छोड़ कर शरीर के अन्य किसी भी अङ्ग में तृण और वृक्षों की समुत्पत्ति—मस्तक का चूर्ण हो जाना—कांस्यों का मुण्डन तथा नग्नता—मलिन वस्त्रों का धारण करना, अभ्यङ्ग, पङ्क से दिग्धता, ऊँचे से पतन होना, दोला पर समारोहण करना, पक्क लोहों का अर्जन, हयों का मारण, रक्त पुष्प वाले द्रुमों के मण्डल का तथा वराह, रीछ, खर और उष्ट्रों के ऊपर आरोहण करना—पके हुए मांस का भक्षण करना तथा तैल और कृसर का खाना, नाचना, हसना, विवाह, गीत, तन्त्री के द्वारा बजने वाले वाद्यों से रहित अन्य वाद्यों का अभिवादन करना, स्रोत का अवगाहन गमन करना, गोमयवारि से स्नान करना आदि ये सब दुःस्वप्न होते हैं ।।२–७।।

पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ ।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ।।८
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पानाञ्च दर्शनम् ।।६
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोधएव च ।
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मंथुनम् ।। ०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया ।
दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा ।।११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च ।
गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनन्तथा ।।१
क्रीड़ा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि ।
परादभिभवश्चैव तस्माञ्च व्यसनोद्भवः ।।१३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीड़नन्तथा ।
स्नेहपानावगाहोच रक्तमाल्यानुलेपनम् ।।१४

पङ्क के मिश्रित जल से स्नान, मही तोय से स्नान माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर समारोहण, शक्र ध्वज का गिरना, चाँद और सूर्य का पतन, दिव्यान्तरिक्ष भौमों का और उत्पानों का दर्शन, देव, द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोध, कुमारियों का आलिङ्गन, पुरुष मैथुन, अपने गात्रों की हानि, विरेचन और वमन, दक्षिण दिशा की ओर गमन करना, व्याधि से अभिभव, फल की अप हानि, पुष्प हानि, गृहों का गिरना, गृह का सम्मार्जन, पिशाच, राक्षस, वानर, ऋक्ष और नरों के साथ क्रीड़ा करना, दूसरे से अभिभव और उससे ही व्यसन की उत्पत्ति, गेरुआ वस्त्रों का धारण करना, स्त्री के साथ क्रीड़न, स्नेह पान और अवगाहन तथा रक्त माल्य और अनुलेपन करना ये सब दुःस्वप्न होते हैं ।।८-१४।।

एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत् ।
ऐषां सङ्कथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनन्तथा ॥१५
कल्कस्नानन्तिलैं र्होमो ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ॥१६
नागेन्द्रमोक्षश्रवण ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम् ।
स्वमास्तु प्रथमे यामे सम्वत्सरात्रपाकिनः ॥१७
षड्भिर्मास द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ।
चतुर्थे मासमात्रेण पश्यतो नात्र सशयः ॥१८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलम्भवेत् ।
एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम् ॥१९
पश्चाद्दृष्ट यस्तत्रतस्यपाकविनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छोभनकेस्वप्नेश्चात्स्वप्नोनपश्यति ॥२०

इसी प्रकार के तथा ऐसे ही अन्य दुःस्वप्न हुआ करते हैं—ऐसा ही विनिर्देश करना चाहिए। ऐसे दुःस्वप्नों का भली भाँति कथन तथा ऐसे स्वप्न देखकर फिर स्वपन करना अच्छा होता है इसका फल फिर बुरा नहीं रहा करता है। कल्क से स्नान, तिलों से होम और ब्राह्मणों का पूजन, भगवान् वासुदेव का स्तवन तथा उनका ही पूजन और गजेन्द्र मोक्ष की कथा का श्रवण करना—इनसे दुःस्वप्नों से होने वाले कुफल का नाश हो जाया करता है। स्वप्न यदि प्रथम ही याम होवे तो उसका फल एक वर्ष तक विपाक की दशा में पहुँचता है। दूसरे प्रहर में स्वप्न हो तो उसका फल छँ मास में होता है। तीसरे रात्रि के प्रहर में स्वप्न देखे तो तीन मासों में फल हुआ करता है और चौथे प्रहर में स्वप्न जो दिखाई देता है उसका फल एक मास में हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि अरुणोदय के समय में स्वप्न हो तो दश दिन में फल होता है। एक ही रात्रि में शुभ और अशुभ स्वप्न हो तो जो पीछे दिखाई देता है उसी का पाकनिर्दिष्ट करना चाहिए। इसी कारण से यदि कोई अच्छा

स्वप्न हो और पीछे स्वप्न नहीं देखता है तो अच्छा है अतएव अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना ही नहीं चाहिए ।।१५-२०।।

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहण हितम् ।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज ।।२१
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता ;
तथैव बहुशीर्षत्व फलितोद्भव एव च ।।२२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बर धारिता ।
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च ।।२३
शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा ।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणाञ्च बधक्रिया ।।२४
जयो विवादे द्युते च संग्रामे च तथा द्विज ! ।
भक्षणञ्चार्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ।।२५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथवा ।।२६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।
मुखेन दोहनं शस्त महिषीणां तथा गवाम् ।।२७
सिंहीनां हस्तिनीनाञ्च वडवानां तथैव च ।
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः ।।२८

अब अच्छे स्वप्नों के विषय में बतलाया जाता है—नागेन्द्र, शैल, अश्व, प्रासाद और वृषभ का समारोहण हितकर हुआ करता है। हे द्विज ! श्वेत पुष्पों वाले द्रुमों का गमन में आरोहण भी शोभन होता है। नाभि में द्रुम और तृणों का उद्भव तथा बहुत सी बाहुओं की उत्पत्ति हो जाना—बहुत सारे मस्तकों का होना और फलितोद्भव, सुन्दर शुक्ल मालाओं का धारण करना शुक्ल वस्त्रों का धारण, चन्द्र, सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन, शक्र की ध्वजा का आलिङ्गन, उसके उच्छ्राय की क्रिया, भूमि तथा अम्बुधियों का ग्रसन, शत्रुओं के वध करने का कर्म,

विवाह, संग्राम और द्यून में जीत, आर्द्र माँस का भक्षण, मत्स्यों का भक्षण, पायस का खाना, रुधिर का दर्शन, रुधिर से स्नान, सुरा, रुधिर मद्य का पान करना अथवा क्षीर का पान, आँतों के द्वारा वेष्टन जो भूमि में हो, निर्मल गगन, मुख के द्वारा भैंसों तथा गौओं का दोहन प्रशस्त होता है। सिहनियों का, हथिनियों का और वड़वाओं का भी दोहन प्रशस्त है। देव तथा विप्रों की प्रसन्नता और गुरु वर्ग का प्रसाद भी शुभ होता है। ।।२१–२८।।

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गाश्रितेन वा !
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन्! ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः ।।२६
राज्याभिषेकश्च तथाच्छेदनं शिरसस्तथा ।
मरण वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु ।।३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम् ।।३१
हस्तिनीवडवानाञ्च गवाञ्च प्रसवो गृहे ।
आरोहणमथाश्वानां रोदनञ्च तथाशुभम् ।।३२
वरस्त्रीणां तथालाभस्तथालिङ्गनमेव च ।
निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम् ।३३
जीवितां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम् ।
दर्शनं देवतानाञ्च विमलानां तथाम्भसाम् ।।३४
शुभान्यथैतानि नरस्तुदृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद्ध्रुवमर्थलाभम् ।
स्वप्नानि वै धमभृतां वरिष्ट ! व्याधेर्विमोक्षञ्च तथाऽऽतुरोऽपि। ।३५

जल के द्वारा अभिषेक का होना अथवा गौओं के शृङ्गों के आश्रित जल के द्वारा अभिषिञ्जन होना, हे राजम् ! चन्द्र से भ्रष्ट के द्वारा अभिषिचन का होना तो राज्य को प्रदान करने वाला ही जानना चाहिए ।।२६।। राज्याभिषेक का होना, शिर का छेदन हो जाना, मरण, अग्निका दाह, गृह आदि ये अग्नि के द्वारा दाह का हो जाना, राज्य के

चिन्हों की प्राप्ति का हो जाना, तन्त्री वाले वाद्यों का अभिवादन होना, जलों में तैरना, विषम स्थान का लङ्घन करना, गृह में हथिनी, वड़वा तथा गौओं का प्रसव होना, अश्वों पर समारोहण करना शुभ होता है। अच्छी स्त्रियों का लाभ करना तथा वरस्त्रियों का समालिङ्गन करना, निगड़ों के द्वारा बन्धन का होना, विष्ठा से अनुलेपन होना यह सब धन्य एवं शुभ होता है। जीवित भूमिपालों का तथा सुहृदों का दर्शन प्राप्त करना, दैव का दर्शन करना, विमल जलों का देखना ये सब परम शुभ स्वप्न हुआ करते हैं। मनुष्य इन ऐसे शुभ स्वप्नों को देख कर विना ही यत्न के किये ध्रुवरूप से अर्थ का लाभ प्राप्त किया करता है। हे धर्म-धारियों में वरिष्ठ ! आतुर हो कर भी व्याधियों का विमोक्ष होना शुभ स्वप्न होता है ॥३०–३५॥

१०६–यात्रा के समय मङ्गल-अमङ्गल सूचक शकुन वर्णन

गमनं प्रति राज्ञान्तु संमुखादर्शने च किम् ।
प्रशस्तांश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्चकीर्तय ॥१
औषधानि त्वयुक्तानिधान्यं कृष्णञ्चयद्भवेत् ।
कार्पासश्चतृणं राजन् ! शुष्कं गोमयमेवच ॥२
इन्धनञ्च तथाङ्गारं गुड़ं तैलं तथा शुभम् ।
अभ्यक्तं मलिनं मुण्डन्तथानग्नञ्च मानवम् ॥३
मुक्तकेशं रुजार्तञ्च काषायाम्बरधारिणम् ।
उन्मत्तकन्तथा सत्वं दीनञ्चाथ नपुंसकम् ॥४
अयः पङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च ।
तथैवाद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ॥५
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः ।

वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैवच ॥६
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च ।
रक्तानि चैव भण्डानि मृतंशार्ङ्गिकमेवच ॥७
एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने ।
अशस्तो वाह्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः ॥८

महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान् ! जिस समय में राजा लोग गमन किया करते हैं तो समुख में दर्शन करने में क्या-क्या प्रशस्त हुआ करते हैं, यह बतलाकर इन सम्पूर्ण शकुनों का वर्णन कृपा करके करिये। ॥१॥ श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! अयुक्त औषध, कृष्ण धान्य, कपास, तृण, शुष्क गोमय, ईंधन, अङ्गार, गुड़, तैल ये सब शकुन शुभ हुआ करते हैं। अभ्यङ्ग किया हुआ, मलिन, मुण्ड, नग्न मानव, केशों को खुले हुए रखने वाला, रोग से आर्त्त, काषाय वस्त्रों के धारण करने वाला, उन्मत्त सत्त्व, दीन नपुन्सक, लोहापंक, चर्म, केशबन्धन, पिण्याक आदि सार वस्तुऐं बन्धन पालक, वधक, पाप कर्म करने वाले, गर्भिणी स्त्री, तुष, भस्म, कपाल, अस्थि, भिन्न भाण्ड, रक्त वर्ण के भाण्ड, मृत, शार्ङ्गिक इस प्रकार से इत्यादि अभिदर्शन में अशस्त होते हैं। वाह्य शब्द और भिन्न भैरव जर्जर शब्द भी अशस्त हुआ करता है ॥२—८॥

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः ।
गच्छेति पश्चात् धर्मज्ञो ! पुरस्तात्तुविगर्हितः ॥९
क्व यासि तिष्ठमा गच्छकिन्तेतत्र गतस्य तु ।
अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्तेविपत्तिकराअपि ॥१०
ध्वजादिषु तथास्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम् ।
स्खलनं वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैवच ॥११
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता ।
छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनञ्च तथा शुभम् ॥१२
दृष्टे निमित्ते प्रथमममङ्गल्यविनाशनम् ।

केशवं पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूनम् ।।१३
द्वितीये तु ततोदृष्ते प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गालग्गानि तथाऽनाघ ! ।।१४

आगे की ओर से आओ—यह शब्द शस्त होता है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है। हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ'—यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गर्हित माना गया है। 'कहां जाते हो'–'रुकजाओ'–'वहा पर जाने से तुझको क्या प्रयोजन है'–ये इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होने हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं ।।६, १०।। क्रव्यादों राक्षसों का ध्वज आदि में स्थान गर्हित हुआ करता है। वाहनों का स्खलन, वस्त्र सङ्ग, द्वार आदि में निर्गमन करने वाले के शिर का अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रों का पतन भी शुभ होता है। प्रथम में ही निमित्त के देखने पर अमङ्गल्य का विनाश होता है। विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे और मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिये ।।६–१३।। हे अनघ ! फिर द्वितीय प्रतीप के देखने पर गृह में प्रवेश कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् इष्ट मङ्गलों के विषय में मैं वर्णन करूंगा ।।१४।।

श्वेताः सुमनासःश्रेष्ठाःपूर्णकुम्भास्तथैव च ।
जलजाः पक्षिणश्चैवमांस मत्स्याश्चपर्थिव ! ।।१५
गावस्तुरङ्गमा नागा बद्ध एकःपशुस्त्वजः ।
त्रिदेशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ।।१६
गणिका च महाभाग ! दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम् ।
रुक्मरूप्यन्तथा ताम्र सर्वरत्नानि चाप्यथ ।।१७
औषधानिव धर्मज्ञ ! यवाः सिद्धार्थकास्तथा ।
नृवाह्यमानं यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ।।१८
खङ्गं चक्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च ।
राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदितवर्जिताः ।।१६

घृतं दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च ।
स्वस्तिकं वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम् ॥२०
वादित्राणां सुखः शब्दः गम्भीरः सुमनोहरः ।
गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा खराः ॥२१

हे पार्थिव ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज—पक्षीगण—मांस—मत्स्य—गौऐं—तुरङ्गम—नाग—वद्ध एक पशु—अज—त्रिदश—सुहृद विप्र—जलती हुई अग्नि—गणिका—ताम्र और हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न—हे धर्म्मज्ञ ! दूर्वा—आर्द्र गोमय—सुवर्ण–रूप्यक–औषध—यव–सिद्धार्थक–मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान यान—भद्रपीठ—खङ्ग—चक्र—पताका—मृत्तिका—आयुध—सम्पूर्ण—राजा के चिह्न जो रुदित से रहित होवे । घृत—दधि—पय—विविध भाँति के फल—स्वस्तिक—वर्द्धमान–नन्द्यावर्त्त—कौस्तुभ—वादित्रों का सुखकर शब्द जो गम्भीर एवं मनोहर हो—गन्धार, षड्ड—ऋषभ जो कि शस्त्र तथा खर हैं ॥ १५, १६, १७ १८, १९, २०, २१ ॥

वायुः सशर्करोरूक्षः सर्वत्र समुपस्थितः ।
प्रातलोमस्तथा नीचो विज्ञेयोभयकृद्विज ! ॥२२
अनुकूलोमृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः ।
रूक्षारूक्षस्वराभद्राः क्राव्यादाः परिगच्छताम् ॥२३
मेघाः शस्ताघनाः स्निग्धागजवृहितसन्निभाः ।
अनुलोमास्तड़िच्छन्नाः शक्रचापन्तथैवच ।२४
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवषणे ।
अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः॥२५
आस्तिक्यं श्रद्धानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम् ।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ ! पञ्च स्यान्मनसः प्रियम् ॥२६
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् ।

एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ।।२७
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन् ! ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि।।२८

धूलि के सहित रूक्ष वायु जो कि सभी जगह समुपस्थित है। हे द्विज ! जो प्रतिलोम और नीच है वह भय करने वाला ही समझना चाहिए। अनुकूल—कोमल—स्निग्ध—सुख देने वाले स्पर्श से युक्त—सुख का आवाहन करने वाला—रूक्ष—अरूक्ष स्वर—अभद्र—परिगमन करने वालों के क्रव्याद—हाथियों के बृंहित के सदृश घने, स्निग्ध मेघ प्रशस्त होते हैं। अनुलोम विद्युत से छन्न-शक्रचाप तथा परिवेष में प्रवर्षण प्रशस्त जानने चाहिए। जो ग्रह अनुलोम होते हैं वे प्रशस्त हुआ करते हैं और वाक्पति विशेष रूप से प्रशस्त माने गये हैं। आस्तिकता—श्रद्धानता—पूज्यगण का अभिपूजन—हे धर्मज्ञे ! ये सब प्रशस्त हुआ करते हैं और वह भी परम प्रशस्त माना गया है जो अपने मन के लिये अतिशय प्रिय होता है। यहाँ पर अपने मन की जो तुष्टि हुआ करती है वह ही परम जय का लक्षण हुआ करता है। एक ओर तो ये सभी चिह्न होते हैं और एक ओर अपने मन की तुष्टि हुआ करती है। मन की उत्सुकता अर्थात् उत्साह और मनमें होने वाला प्रहष यह ही शुभ का लाभ और विजय का प्रवाद होता है। मङ्गल्य की लब्धि और उसका श्रवण हे राजन् ! नित्य ही विजय के आवह करने वाले जानने चाहिए। ।। २२–२८ ।।

११०—वराहवतार के विषय में अर्जुन का प्रश्न

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ।।१
न जाने तस्यचरितं न विधिं नच विस्तरम् ।

न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तंमनीषिणः ।।२
किमात्मको वराहोऽसौ किं मूर्त्तिः कास्य देवता ।
किं प्रमाणः किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम् ।।३
एतन्मे शंस तत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ।
यथार्हञ्च समेतानां द्विजातीनां विशेषतः ।।४
एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ।।५
यथा नारायणो राजन् ! वाराहं वपुरास्थितः ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दनः ।।६
छन्दोगीर्भिरुदाराभिः श्रुतिभिःसमलङ्कृतः ।
मनः प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना ।।७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अपरिमित तेज से युक्त भगवान् विष्णु के पुराणों में प्रादुर्भावों को कहने वाले सत्पुरुषों में हमने एक वाराह का भी प्रादुर्भाव सुना है ।। १ ।। उस वाराह का चरित्र मैं नहीं जानता हूँ और न तो उसकी कोई विधि ही मुझे मालूम है और न कुछ विस्तार का ही ज्ञान है । उनके कर्म और गुणों का संस्थान क्या था—यह भी मैं नहीं जानता हूं । उन अत्यन्त मनीषी प्रभु का तो अद्भुत ही कर्म—गुण संस्थान होगा ।। २ ।। यह वराह किस स्वरूप वाला प्रादुर्भाव था ? इनकी कैसी मूर्त्ति थी और इनका देवता कौन था ? इनका प्रमाण कितना था और क्या प्रभाव था तथा पहिले उन्होंने क्या किया था ? ।। ३ ।। श्रुति विस्तार इस वाराह को आप तात्त्विक रूप से मुझे सब बतलाइये ? विशेष रूप से ये एकत्रित हुए द्विजाति गण हैं इनके अनुसार जो भी योग्य हो श्रवण कराइये ।। ४ ।। श्री शौनक जी ने कहा—अद्भुत कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्ण के इस महा वराह चरित्र को जो ब्रह्म सम्मित पुराण है मैं आपको कहूंगा ।। ५ ।। हे राजन् ! जिस प्रकार से भगवान् शत्रुओं के मर्दन करने वाले नारायण ने वाराह के वपु में समास्थित

होकर अपनी दाढ़ से इस समुद्र में स्थित भूमि को उठाकर इसका उद्धार किया था ।। ६ ।। छन्द, वाणी, उदार श्रुतियों से सम्यक् प्रकार से अलंकृत होकर तथा मन की प्रसन्नता करके अब उस विजय का ज्ञान करलो ।। ७ ।।

इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ।।८
पुराणं वेदमखिलं साङ्ख्यं योगञ्च वेद यः ।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं सौख्यार्थं वै वदिष्यति ।।९
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ।।१०
मनः सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा ।
वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ।।११
दैत्याः पिशाचाः नागाश्च भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः म्लेच्छाश्च ये भुवि।।१२
चतुष्पादानिसर्व्वाणि तिर्य्यग्योनिशतानि च ।
जङ्गमानिचसत्वानियच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ।।१३
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते ।
निर्व्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ।।१४

यह वराह पुराण परम पुण्यमय है और समस्त वेदों के सम्मत है । यह अनेक श्रुतियों से भी समायुक्त है । इसका कीर्त्तन किसी भी नास्तिक के समक्ष में नहीं करना चाहिए यह सम्पूर्ण पुराण वेद ही है । जो सांख्य और योग को जानता है वह पूर्ण विधि से कथित इसको सौख्य सम्पादन करने के लिये कहेगा ।। ८ । ९ ।। विश्वेदेवा, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और प्रजाओं के पतिगण सप्त महर्षि हैं । पूर्वज जो ऋषिगण थे वे सब मन के सङ्कल्प से ही समुत्पन्न हुए है । वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध

भूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो भूमण्डल में म्लेच्छ हैं—समस्त चतुष्पाद, तिर्यग्यो निगत सैकड़ों- जङ्गम सत्त्व और जो अन्य जीव संज्ञा से युक्त सब एक सहस्र युगों के पूर्ण होने पर ब्रह्माजी के दिन के समागत हो जाने पर सर्वोत्पातों के समुद्भव वाले समस्त भूतों का निर्वाण होगया था ॥ १०–१४ ॥

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा बृषाकपिः !
शिखाभिर्विधमंल्लोकानशोषयत वह्निना ॥१५
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः ।
विवर्णवर्णादग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननैः ॥१६
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः ।
सर्वविद्याः क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ॥१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम् ।
सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तु कोटयः ॥१८
तस्मिन्नहनि सप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ।
प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥१६
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह ॥२०
पूर्णे युगसहस्रान्ते सर्वे निःशेष उच्यते ।
यस्मिन् जीवकृतं सर्वे निःशेष समतिष्ठत ॥२१

इसके अनन्तर हिरण्य रेता त्रिशिख वृषा कपि होकर शिखाओं से लोकों को विशेष रूप से धमन करते हुए वह्नि के द्वारा सबका शोषण कर दिया था। इसके अनन्तर समुद्गत उसके तेज की राशियों से दह्यमान होते हुए अर्थिमान आननों के विवर्ण वदन वाले, दग्ध अङ्गों से युक्त होकर हत हो गये थे। साङ्गवेद तथा उपनिषद, इतिहासों को आगे करके सम्पूर्ण विद्या-सर्व धर्म परायण क्रियायें और विश्व तो मुख प्रभव ब्रह्माजी को आगे करके तेतीस करोड़ समस्त देवगण उस दिन के सम्प्राप्त होनेपर महदक्षर, महात्मा, हंस उन प्रभु नारायण हरि के धाम में प्रवेश करते

हैं। प्रवृत्त हुए उनके पुनः निधन से उत्पत्ति कही जाती है जिस तरह से यहाँ पर निरन्तर सूर्य का उदय और अस्तमन हुआ करते हैं। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर सबका निःशेष कहा जाता है जिसमें सब जीवकृत निःशेष समवस्थित हुआ था ॥१५–२१॥

संहृत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान्।
कृत्वासुसस्थां भगवानास्तएकजगद्गुरुः ॥२२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।
अव्ययः शाश्वतो देवो यस्यसर्वमिदंजगत् ॥२३
नष्टार्ककिरणो लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते।
त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ॥२४
अपर्त्तगण सम्पाते सर्वप्राणहरे पथि।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते ॥२५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम्।
प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ॥२६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ॥२७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः।
शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ॥२८
श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम्।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स विष्णुरिव तोयदः ।।२९

समस्त देव, असुर और मानवों के सहित पूर्ण सम्पूर्ण लोकों का संहार करके जगत् में गुरु एक ही भगवान् असुसंस्था करके स्थित हुआ करते हैं। इस तरह वही कल्पों के अन्त से पुनः पुनः समस्त भूतों का स्रष्टा होते हैं। वह अव्यय-शाश्वत देव हैं जिसका यह सम्पूर्ण जगत् है। सूर्य की किरण जिसमें नष्ट हो गई हैं और चन्द्र तथा ग्रहों से जो वर्जित है—धूप, अग्नि और पवन ने भी जिसका त्याग कर दिया है तथा अग्नि

रहित और यज्ञ एवं वषट् क्रिया से क्षीण, पक्षिगण के सम्पात से शून्य, समस्त प्राणियों के हरण करने वाले, अमर्यादा से आकुल, रौद्र, सब ओर से अन्धकार से समावृत मार्ग में सब लोकों के दृश्यमान होने पर, सब कर्मों के अभाव में सब सम्पात के प्रशान्त हो जाने पर इस नारायणमक लोक में स्वभाव संस्थान के गत होने पर परमेष्ठी हृषीकेश ने अपने शयन करने का उपक्रम किया था। पीत वस्त्रधारी, लोहित नेत्रों वाले, मेघ के सदृश, सहस्रों शिखाओं के विकच जटाओं के भार का समुद्वहन करने वाले श्रीकृष्ण विराजमान थे ॥ २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८ ॥ श्रीवत्स के लक्षण को धारण करने वाले और रक्त चन्दन से विभूषित वक्ष:स्थल को रखने वाले—महान् वाहुओं से युक्त वह तोयद के समय ही श्री विष्णु भगवान् थे ॥ २९ ॥

पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा।
पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्यतिष्ठति ।।३०
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोके शुभावहः।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः ।।३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ।।३२
ततश्चिन्तयत भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत्।
नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।।३३
ततः सञ्चिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः।
सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतांगतिः ।।३४
कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वं प्रजापतिः।
नारायण परं सत्यं नारायणः परं पदम् ।।३५

इन विष्णु भगवान् की पत्नी स्वय साक्षात् लक्ष्मी जो देह को आवृत करके स्थित रहती हैं एक सहस्र पुण्डरीकों की माला से वह शुभा शोभित हो रही थीं ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त समस्त लोक में सुख का

आवहन करने वाले प्रशान्त आत्मा से सम्पन्न शयन किया करते हैं। वह अमित योग के स्वरूपधारी किसी योग निद्रा को प्राप्त हो गये थे ।।३१।। इसके अनन्तर एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर वह विभु पुरुषोत्तम जो विवुधों के स्वामी हैं स्वयमेव ही प्रबुद्ध हो जाया करते हैं ।। २२ ।। इसके पश्चात् लोकों के करने वाले ने फिर लोक की सृष्टि के विषय में चिन्तन किया था। नरगण और देवगणों का पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा चिन्तन करते हैं। फिर समिञ्जथ प्रभु देवों के विवय में कार्य्य का चिन्तन करते हुए सत्पुरुषों की गति प्रभु समस्त लोक की उत्पत्ति को किया करते हैं। वह प्रजापति इस जगत् के कर्त्ता-विकर्त्ता और संहार के कर्त्ता हैं। नारायण परसत्य हैं—नारायण परम पद है ।। ३३–३५ ।।

नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः ।
स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टाभुवनाधिपः ।।३६
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः ।
यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ।।३७
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः ।
प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ।।३८
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः ।
यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्ति देवताः ।।३९
प्रादुर्भावे तु यद्रूपन्तदर्चन्ति दिवौकसः ।
दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्ष्यन्ति देवताः ।।४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते ।
ग्राम्याणां सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ।।४१
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ।
चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः ।।४२
चतुः सागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः ।
तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थामात्मनः ।।

मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम् ॥४३॥
सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणैर्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकै ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसङ्कुलं तदा स वै'सृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ।।

नारायण पर यज्ञ हैं—नारायण परागति है—वह स्वयम्भू—यह जानने के योग्य हैं—वह भुवन का स्वामी सृजन करने वाले हैं ? वह सब कुछ है—ऐसा ही समझना चाहिए । यही यज्ञ और प्रजापति है । जो देवों के द्वारा जानने के योग्य है और वह ऐसा ही कीर्त्तित किया जाता है । जो कुछ भी भगवान् का वेद्य (जानने केयोग्य हैं) उसे देवगण भी नहीं जानते हैं । न प्रजापति जानते हैं और अमरगणों के साथ ऋषि लोग ही जानते हैं ।। ३६ । ३७ । ३८ ।। विशेष रूप से खोज करते हुए भी इस प्रभु के अन्त का ज्ञान कोई भी प्राप्त नहीं किया करते हैं—ऐसी श्रुति है । जो इसका पद रूप होता है उसे देवगण भी नहीं देख पाते हैं । जब इनके प्रादुर्भाव का कोई स्वरूप होता है उसी का देवगण अभ्यर्चन किया करते हैं । यदि इन्हीं ने उसे दिखला दिया है तो देवता लोग उसे देख पाते हैं । जो कभी भी उन्होंने नहीं दिखलाया है उसकी खोज करने की कौन इच्छा करता है । अथात् उसका अन्वेषण कोई भी नहीं कर पाता है । ग्राम्य समस्त प्राणियों की गति अग्नि और मारुत की होती है । तेज तप और अमृत का निधान—चारों आश्रमों के धर्म का ईश—चातु देत्रिका फलाशन—चार सागरों की सीमा तक रहने वाला—चारों युगों का निवर्त्तक वह इसका संहार करके फिर अपने गर्भ में स्थित जगत् की रचना करता हुआ महायोगी एक सहस्र वर्ष तक धारण किये अण्ड को छोड़ देता था । सुर—असुर—द्विज—भुजग और अप्सराओं के गणों से युक्त—औषधि—क्षितिधा—यक्ष और गुह्यकों से समन्वित—श्रुतियों से असंकुल इस जगत् को उस समय में वह प्रजापति प्रभु आत्मा से ही सृजन किया करता है ।। ३९—४४ ।।

१११–वराहवतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम् ।
प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैतकी श्रुतिः ॥१
तत्तु वर्षसहस्रान्ते विभेदूर्ध्वमुखं विभुः ।
लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं नृप ! ॥२
भूयोऽष्टधा बिभेदाण्ड विष्णुर्वै लोकजन्मकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभागंसविभागकृत् ॥३
यच्छिद्रमूर्द्धमाकाशं विवराकृतितां गतम् ।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ॥४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवोलोकचिकीर्षया ।
तत्र यत्सलिलंस्नसोऽभवत्काञ्चनोगिरिः ॥५
शैलैः सहस्रैं मंहती मेदिनी विषमाभवत् ।
तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ॥६
पीड़िता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
महामते भूरिबल दिव्यं नारायणात्मकम् ॥७

महर्षि शौनक जी ने कहा यह जगत् का अण्ड पहिले परम दिव्य हिरण्य था। यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्त्ति ही था—ऐसा श्रुति का वचन कहता है ॥१॥ वह एक सहस्र वर्ष के अन्त में विभुने ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था। हे नृप ! लोक के सर्जन के हेतु से अधोमुख का भेदन किया था। लोकों के जन्म के करने वाले भगवान् विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागों में भेदन किया था। विभाग के करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग किया था। ऊर्ध्व आकाश में जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था। विश्व के योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था। देवने जो पहिले जो अण्ड किया था वह लोक को रचना करने की इच्छा से ही किया था।

वहां पर जो सलिल स्कन्न हुआ था वह सुवर्ण गिरि हो गया था। सहस्रों शैलों के होने से यह महती मेदिनी विषम हो गई थी जो कि बहुत से योजनों के विस्तार से युक्त पवंतों के जालों के ओघों से युक्त थी। उस समय में इन बड़े भारी पर्वतों से यह पीड़ित एव व्यथित मेदिनी देवी हो गयी थी हे महामते ! यह अण्ड परम दिव्य—बहुत अधिक बल वाला नारायण के स्वरूप से सम्पन्न था ।।६—७।।

हिरण्यं समुत्सृज्य तेजो व जातरूपिणम् ।
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा । ८
पोठ्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः ।
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधोमधुसूदनः ।।९
उद्धारार्थं मतश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ।।१०
मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी ।
रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला ।।११
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर ! प्रसीद
तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम् ।
ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वतविदुः ।।१३
तव प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः ।
तव क्रोधाद्धि बलवान् जनादनजितोबलिः ।।१४

जातरूपी हिरण्मय तेज का समुत्सृजन करके उसे धारण करने के लिए अशक्त होकर उस समय में नीचे की ओर प्रवेश कर गया था। उस समय में भगवान् के तेज से वह क्षिति पीड्य माना हो गई थी। भगवान् मधुसूदन ने अधोभाग में प्रवेश करती हुई उस पृथ्वी को देखा था और फिर उस पृथ्वी के हित की कामना से उसके उद्धार करने के लिये मनमें विचार किया था ।।८, ९, १०।। श्री भगवान् ने कहा—इस तपस्विनी वसुधा ने मेरे तेज को प्राप्त करके वह दुवंल गौ पङ्क में जिस तरह

विषण्ण होती है उसी भाँति यह मेदिनी रसातल में प्रवेश करती है। ।११।। पृथिवी ने कहा—हे देव वर ! त्रिविक्रम से आयामित विक्रम वाले सुरों में उत्तम—श्री शार्ङ्ग, चक्र, असि और गदा के धारण करने वाले महावराह के लिये नमस्कार है । आप प्रसन्न होइये ॥१२।। आपके ही देह से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है और पुष्कर द्वीप उत्थित हुआ है। यहां पर ब्रह्मा को लोकों के और भूतों का शाश्वत जानना चाहिए । हे देव! यह आपका ही प्रसाद है कि इन्द्र देव दिवलोक का उपभोग किया करते हैं । आपके ही क्रोध से भगवान् जनार्दन के द्वारा यह महा बलवान् बलि जीतमलिया गया है ।।१३, १४.।

धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मनुःकृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनोघनः ।।१५
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवो जलम् ।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञायज्ञस्य च क्रियाः ।।१६
विद्यावेद्यञ्च सत्वञ्च ह्रीः श्रीः कीर्तिर्धृति क्षमा ।
पुराणं वेदवेदाङ्गं सांख्ययोगो भवाभवौ ।।१७
जङ्गमं स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवञ्च यत् ।
सर्वन्तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितन्तव ।।१८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः ।
सर्वलोकमनः कान्तः सर्वसत्वमनोहरः ।।१९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः ।
दिव्यलोकमहास्कन्धसत्यलोकप्रशाखवान् ॥२०
सागराकरनिर्यासो रसातलजलाश्रयः ।
नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ।।२१

हे भगवन् ! आपके अन्दर धाता-विधाता और संहार करने वाला, इन तीनों कर्म्मों के करने की शक्ति विद्यमान है । मनु, अधिपति कृतान्त, अग्नि, पवन, घन, चारों वर्णः चरों ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों के धर्म्म, सागर,

तरु, जल, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञायज्ञ की क्रियाऐं—विद्या, वेद्य, सत्त्व, ह्री श्री, कीर्त्ति, धृति, क्षमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग शास्त्र, साङ्ख्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जङ्गम, भविष्य, भवत्, यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ।।१५-१८।। देवों के उदार फल के दाता—स्वर्गीय स्त्रियों के चारु पल्लव-सब लोकों के मन के कान्त-सब सत्त्वों के मनोहर—विमानों के अनेक विटप—मेघों के जल का मधु-स्ताव—दिव्य लोक के महा स्कन्ध—सत्यलोक के प्रशाखा वाले—सागर के आकार का निर्यास—रसातल के जल का आश्रय—नागेन्द्र पादयों से समुपेत-जन्तु और पक्षिगण से निषेवित आप ही हैं !।१९-२१।।

शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयोद्रुमः ।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ।।२२
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः
सिद्धसाध्योर्मिकलिलःसुपर्णानिलसेवितः ।।२३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगरुषाकुलः ।
पितामहमाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ।।२४
धीश्रीह्रीकान्तिभि नित्यं नदीभितः ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ।।२५
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः ।
कालोभूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ।।२६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ।।२७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे ।
महाभारावताराय देव ! त्वं हि युगे युगे ।।२८

आप ही शीलाचार के आर्यगन्ध हैं । सर्व लोक मय आप द्रुम है। द्वादश सूर्यों से परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रों के पत्तन, अष्ट वसुओं के बल से संयुक्त, त्रिभुवनों के जल के महा समुद्र, सिद्ध और साध्यों की ऊर्मियों

से कलिल, मुपर्णानिल से सेवित, दैत्यों के लोकों के महान् ग्राह, राक्षस और उरगों के रोष से समाकुल, पितामह के महान् धैर्य, स्वर्ग की स्त्रियों रूपी रत्नों से भूषित, धी, ह्री, श्री और कान्ति इनसे तथा नित्य ही नदियों से उपशोभित, कालयोग महान् पर्व के प्रयाग की गति और वेग वाले आप अपने योग के महान् वीय तथा नारायण महार्णव हैं। आप काल होकर परम प्रसन्न जलों से पुनः आह्लादित किया करते हैं। आपने ही इन तीनों लोकों का सृजन किया है और आपने ही इनका प्रति संहार भी किया है। सब योगीजन प्रतियोजित होकर आप में ही प्रवेश किया करते हैं। हे देव ! आप ही युग-युग में युगों के अन्त करने वाली अग्नि हैं—युग-युग में आप ही काल मेघ हैं और इस महाभार के अवतारण करने के लिए आप ही युग-युग में हुआ करते हैं ॥२२–२८॥

त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः ।
द्वापरे रक्तसङ्काशः कृष्णः कलियुगे भवान् ॥२९
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसन्धिषु ।
वैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ॥३०
भासि वासिप्रतपसित्वञ्च पासिविचेष्टसे ।
क्रुध्यसिक्षान्तिमायासि त्वं दीपयसिवर्षसि ॥३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निवापयसि जाग्रसि ।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ॥३२
शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः ।
युगान्ताग्नावलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन ॥३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः ।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ॥३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्सङ्कीर्त्यसेऽच्युतः ।
ब्रह्माणमिन्द्रञ्चयमं रुद्रं वरुणमेव च ॥३५

हे देव ! कृतयुग में आप ही शुक्ल वर्ण वाले होते हैं-त्रेता में

सुवर्ण के समान प्रभा वाले भी आप ही हैं। द्वापर में रक्त के सदृश और कलियुग में आप ही कृष्ण होते हैं ॥२८॥ आप जब युगों की सन्धियाँ होती हैं तो उस समय में विवर्णता धारण किया करते हैं। वेदों के वेत्ता आप समस्त धर्मों के वैदर्ण्य को उत्पादन किया करते हैं। आप ही दीप्त होते हैं, निवास करते हैं, प्रताप दिया करते हैं, पालन करते हैं, विशेष चेष्टा किया करते हैं, कोप भी आप ही करते हैं, शान्ति को प्राप्त होते हैं, आप ही दीपित होते हैं और वर्षा किया करते हैं। आप ही स्वयं ह्रास करते हैं, निर्वासित होते हैं, निर्वाय करते हैं, जाग्रत होते हैं, निःशेषित होते हैं अर्थात् समस्त भूतों को निःशेष किया करते हैं और युगों के क्षय में आप ही काल का स्वरूप धारण किया करते हैं ॥२९-३२॥ आप ही अपने आपको शेष देखकर फिर उसे विशेषित किया करते हैं जब सब भूतों में युगान्त अवलीढ हो जाते हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता है इसी लिए आपको शेष इस नाम से कीर्त्तित किया गया है। च्यवनोत्पत्ति से युक्त ब्रह्मा इन्द्र, वरुण आदि के होने पर क्योंकि स्थान से च्यवन नहीं होता है इसीलिये अच्युत नाम से कीर्त्तित हुए हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और वरुण इनका निग्रह करके हरण करते हैं ॥३३-३५॥

निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे।
सम्मानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया ॥३६
परेण वपुषा देव ! तस्माच्चासि सनातनः।
यस्माद्ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः ॥३७
न तेऽन्तं त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे।
न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि ॥३८
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे।
विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥३९
जगद्विष्टम्भना चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे।
विष्टभ्य तिष्टसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४०

यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् ।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४१
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४२

हे भगवन् ! ब्रह्मादि सबका निग्रह करके आप इनका हरण किया करते हैं इसी कारण से आपको 'हरि''–इस नाम से कहा जाता है । आप समस्त भूतों का वपु से, यश से, श्री से सम्मान किया करते हैं । हे देव ! आप पर वपु से सम्मान किया करते हैं इसी कारण से सनातन हैं । क्यों कि ब्रह्मादि देवगण और उग्र तेज वाले मुनि वृन्द सब आपके अन्त को प्राप्त नहीं हुआ करते हैं इसीलिये आप अनन्त इस नाम से कहे जाते हैं और सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी आप न तो क्षरित होते हैं और न क्षीण ही हुआ करते हैं । इसी अक्षर होने के हेतु से आप अक्षर हैं और विष्णु इसी नाम से कीर्त्तित किये जाते हैं । आपने इस स्थावर, जङ्गम जगत् सबको विष्टब्ध कर दिया है ॥३६–३९॥ इस सम्पूर्ण जगत् के विष्टम्भन होने से आपका नाम 'विष्णु'–यह कीर्त्तित किया जाता है क्योंकि इस त्रिलोकी को विष्टब्ध करके जिसमें सभी चर एवं अचर विद्यमान हैं नित्य स्थित रहा करते हैं ॥४०, ४१॥ इसी लिये स्वयं भगवान् स्वयम्भू ने विष्णु यह नाम कहा है । नारा, इससे जल कहे जाया करते हैं जिसको तत्त्व दर्शी ऋषियों ने कहा है । वेही जल पहिले उनके अयन निवास स्थान हुए थे इसीलिए आपका नारायण यह नाम कहा गया है । हे विष्णो ! आप तो युग-युग में प्रनष्ट अङ्गों को तात्त्विक रूप से प्राप्त किया करते हैं ॥४२, ४३॥

अयनन्तस्यताः पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः ।
युगे युगेप्रनष्टाङ्गां विष्णो ! विन्दसितत्वतः ॥४३
गोविन्देतिततोनाम्नाप्रोच्यसेभिस्तथा ।
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्वज्ञानविशारदाः ॥४४

ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यते ।
वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ।।४५
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे ।
सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ।।४६
ततः सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तत्वज्ञानविशारदैः ।
प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसा. ।।४७
प्रविद्युः सवधर्मांणां प्रद्युम्नस्तेन चांच्यसे ।
निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ।।४८
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः ।
यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत् ।४९

क्योंकि आप प्रनष्ट अङ्गों का लाभ करते हैं इसी लिये आपको "गोविन्द"—इस नाम से पुकारा जाया करता है और ऋषिगण गोविन्द कहा करते हैं। हृषीक विषयेन्द्रियों को कहा जाता है जिनको कि तत्त्वज्ञान के विशारद कहते हैं। आप इनके ईशिता हैं इसी कारण से आपको हृषीकेश नाम से कहा जाया करता है। युग के क्षय में ब्रह्मा आदि समस्त भूत आप ही में निवास किया करते हैं अथवा आप सब भूतों में निवास किया करते हैं इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाया करता है। बारम्बार आप कल्प कल्प में भूतों का संकर्षण किया करते हैं अतएव तत्त्वज्ञान के विशारदों के द्वारा आपको संकर्षण कहा गया है। समस्त देव. असुर और राक्षस प्रतिग्रह से स्थित रहते हैं और सब धर्मों के प्रविद्यु है अतएव आपको प्रद्युम्न. इस शुभ नाम से कहा जाया करता है। आपका भूतों में क्योंकि कोई भी निरोद्धा नहीं है इसीलिए पहिलेही महर्षियों ने आपका नाम अनिरुद्ध कहा गया है। हे भगवन ! आपके द्वारा इस विश्व को धारण किया जाता है और आपके ही द्वारा इस जगत् का संहार किया जाता है ।।४४–४९।।

त्वं धारयसि भूतानि भवनं त्वं बिभर्षि च ।

यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसाचबलेन च ।।५०
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया ।
न हि तद्विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते ।।५१
त्वमेव कुरुषे ! देव ! नारायण युगे युगे ।
महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ।।५२
तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलङ्गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ ! त्वामेव शरणंगताम् ।।५३
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ।।५४
तावन्मेस्ति भयं देव ! यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ।।५५
उपमानं न ते शक्ताः कर्त्तुं सेन्द्रा दिवौकसः ।
तत्वं त्वमेव यद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम् ।।५६

हे भगवन् ! आप समस्त भूतों को धारण किया करते हैं और आप भवन का भरण किया करते हैं और आपके द्वारा तेज और बल के द्वारा जो कुछ भी धारण किया जाता है इसके पीछे मेरे द्वारा धारण किया जाता है और जो आपके द्वारा अधृत है उसे मैं धारण करती हूँ । ऐसा कोई भी भूत विद्यमान नहीं है जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो । हे देव ! हे नारायण ! इस जगत् के हित की कामना से युग-युग में आप ही इस महान् भार का अवतरण किया करते हैं । हे सुरश्रेष्ठ ! आपके ही तेज से आक्रान्त, रसातल में गई हुई और आप की ही शरणागति में गई हुई मेरा परित्राण कीजिए । में दुरात्मा दानवों तथा राक्षसों के द्वारा पीड्यमाना मैं आप ही नित्य एवं सनातन प्रभु की शरण में जाती हूँ । हे देव ! मुझे तब तक ही भय होता है जब तक ककुद्मी आपकी शरण में मन से नहीं जाती हूँ । मैं सैकड़ों का उपलक्षित करती हूँ किन्तु आपकी समानता इन्द्र आदि देवगण करने मे समथ नहीं

होते हैं। इसके तत्त्व को आप ही जानते हैं और इससे पर निरुत्तर है ॥ ५०—५६ ॥

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्ग चक्रधृक् ।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः ॥५७
अब्रवीच्च महादेवि ! माधवीयं स्तवोत्तमम् ।
धारयिष्यति योमर्त्योनास्तितस्यपराभवः ॥५८
लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान्प्रतिपत्स्यते ।
एतदाश्चर्यंसर्वस्वंमाधवीयंस्यवोत्तमम् ॥५६
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत् ॥६०
मा भैर्धरणि ! कल्याणि ! शान्ति व्रज ममाग्रतः ।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम् ॥६१
ततो महात्मा मनसा दिव्य रूपमचिन्तयत् ।
किन्नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम् ॥६२
जलक्रीड़ारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः ।
अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म संस्थितम् ॥६३

महर्षि शौनक जी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् शार्ङ्ग और चक्र के धारण करने वाले उस पृथिवी देवी पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन हरि भगवान् ने इसकी कामना को यथोप्सित रूप से पूरित कर दिया था ॥५७॥ और भगवान् ने उससे कहा था—हे महादेवि ! आपके द्वारा कहा गया जो यह माधवीय स्तव है वह अतीव उत्तम है। जो मनुष्य इस स्तव को धारण करेगा उसका कभी भी पराभव नहीं होता है ॥५८॥ यह आश्चर्यों का सर्वस्व माधवीय उत्तम स्तव है। इसके धारण करने वाला कल्मषों से रहित वैष्णव लोकों की प्राप्ति किया करता है। ॥५६॥ वेदों के अध्ययन करने वाला पुरुष प्रीति से युक्त मन वाला मुनि हो जाता है ॥६०॥ श्री भगवान् ने कहा—हे धरणि ! हे कल्याणि ! उरोमत ! मेरे आगे शान्ति को धारण करो। मैं तुमको मनो-

षित समुचित स्थान पर प्राप्त कर देता हूँ ।।६१।। शौनक जी ने कहा—इस के उपरान्त महान् आतमा वाले प्रभु ने मन से दिव्य रूप का चिन्तन किया था कि मैं क्या करूं ।।६२।। जल में क्रीड़ा करने की रुचि थी इसी कारण से वाराह के वपु में समवस्थित हो गये थे। वह स्वरूप समस्त भूतों का अदृश्य एवं वाङ्मय संस्थित ब्रह्म था ।।६३।।

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं विगुणं ततः ।
नीलजीमूतसङ्काशं मेघस्तनितनिस्वनम् ।।६४
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।।६५
पीनोन्नतकटीदेशे वृषलक्षणपूजितम् ।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहभजितोहरिः ।।६६
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम् ।
वेदपादो यूपदंष्ट्र क्रतुदन्तश्चितीमुखः ।।६७
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।।६८
आज्यनासः स्रुवतुण्डःसामघोषस्वनोमहान् ।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रतसत्क्रमः ।।६९
प्रायश्चित्तनखोघोरः पशुजानुमुखाकृतिः ।
उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ वीजौषधिमहाफलः ।।७०

वह वाराह का स्वरूप सौ योजन के विस्तार युक्त, दुगुना इससे उच्छ्रित, नीलेमेघ के समान तथा मेघों के स्तनित से निस्वन था. गिरि के तुल्य संहनन वाला, भीम, श्वेत एव तीक्ष्ण आगे की दंष्ट्रा वाला, विद्युत् की अग्नि के तुल्य, सूर्य के सदृश तेज से युक्त, कटि देश में पीनोन्नत एवं वृष लक्षण से पूजित विपुल वराह के रूप में समास्थित श्री अजित हरि हो गये थे ।।६४, ६५, ६६।। वेदों के चरणों वाले, यूपों के दंष्ट्राओं से संयुत, क्रतुओं के दाँतों से समन्वित चितीमुख वाराह प्रभु ने इस पृथिवी

के उद्धार करने के लिये रसातल में प्रवेश किया था ॥ ६७ ॥ अग्नि की जिह्वा वाले—दर्भों के लोमों से संयुत—ब्रह्म के शीर्ष वाले—महान् तप से युक्त—अहोरात्र के नेत्रों को धारण करने वाले—वेदाङ्ग एवं श्रुति के भूषण से भूषित—आज्यकी नासिका वाले—स्रुवा के तुण्ड से युक्त—साम वेद के महान् घोष वाले—सत्य और धर्म से परिपूर्ण—कर्म और विक्रम के सन्क्रम वाले—श्रीमान्—प्रायश्चित के घोर नखों से युक्त—पशुजानु तथा मखकी आकृति वाले—उद्गाथा होम के लिङ्ग से संयुत वीज और औषधि के महान् फल वाले वह वाराह भगवान् थे ॥ ६७ । ६८ । ६९ । ७० ॥

वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ॥७१
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ॥७२
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ।
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ॥७३
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्गइवोच्छ्रितः ।
रसातलतले मग्नां रसातलतलङ्गताम् ॥७४
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् ।
ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः ॥७५
मुमोच पूर्वं मनसा धारिताञ्च वसुन्धराम् ।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ॥७६
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे ।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ॥७७
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा ।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवोजगतः स्थापनेच्छया ॥
पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ॥७८

रसाङ्गतामवनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूप धृक्।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ।। ७६

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संयुत—सोम के शोणित से समत्वित—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वंश की काया से युक्त—द्युतिमान्—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिण हृदय—महासत्रमय—महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण—नाना छन्दोगति पथ—गुह्योरनिषदासन—उच्छ्रित मणिशृङ्ग की भाँति छाया पत्नी सहाय प्रभु ने रसातल के तल में मग्न और रसातल के तल में गई हुई उस भूमि का लोकों के हित के लिये दंष्ट्रा के अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथिवी के धारण करने वाले वराह भगवान् ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन से धारित वसुन्धरा को छोड़ दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उन शम्भु देव के नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतों के हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल में गयी हुई पृथिवी देवा को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के प्रविभाग करने के लिये मन में विचार किया था। ।। ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ ।। अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरों में श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान् ने जो वृषा कपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरणी को बलपूर्वक एक दाढ़ से समुद्धृत किया था ।। ७९ ।।

११२—क्षीरोद मथन वर्णन (१)

नारायणस्य माहात्म्य श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ।।१
कथ देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः ।
तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा ।।२
यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् ।
तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ।।३
पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः ।
पुनः सञ्जीविनीं विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ।।४
जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव ।
तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना ।।५
मृतसञ्जीविनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा ।
तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ।।६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुहुः सर्वदानवाः ।
ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृत शुक्रेण धीमता ।।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! भगवान् नारायण के यथाक्रम माहात्म्य का श्रवण करके हमारी तृप्ति नहीं होती है अतएव पुनः आप वर्णन कीजिये ।। १ ।। विचक्षण देव किस प्रकार से पहिले अमरत्व को प्राप्त हुए थे । किसी तप के द्वारा अथवा कर्म से या किसी के प्रसाद से या तेज के द्वारा देवों को कायमता प्राप्त हुई थी ? श्री सूतजी ने कहा—जहाँ पर देव नारायण और शूल को धारण करने वाले महादेव विद्यमान थे वे दोनों उन सबके अमरत्व के प्रतिपादन करने में सहायक कहे गये हैं ।। २ । ३ ।। प्राचीन समय में देवासुर युद्ध में सुरों के द्वारा सैकड़ों दैत्येन्द्र निहत कर दिये गये थे फिर भृगुनन्दन ने अपनी सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग करके सोकर उठे हुओं की भाँति जीवित कर दिया था ।

महात्मा देव शङ्कर ने परम सन्तुष्ट होकर महान् प्रभाव एवं प्रभा वाली सञ्जीवनी विद्या उसको प्रदान कर दी थी। महेश्वर के मुख से समुद्गत उस माहेश्वरी विद्या को भार्गव महर्षि में संस्थित देखकर समस्त दानव मोह को प्राप्त होगये थे। इसके अनन्तर धीमान् शुक्र ने दैत्यों का अमरत्व कर दिया था ॥ ४–७ ॥

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् ।
न नागानामृषीणाञ्चनच ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ॥८
तां लब्ध्वा शङ्कराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः ।
ततो दैवासुरोघोरः समरः सुमहानभूत् ॥९
तत्र देवैर्हतान् दैत्यान् शुक्रोविद्याबलेन च ।
उत्थापयति दैत्येन्द्रान् लीलयैवविचक्षणः ॥१०
एवम्विधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः ।
हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥११
विषण्णवदनाः सर्वे बभूबुर्विकलेन्द्रियाः ।
ततस्तेषु विषण्णेसु भगवान् कमलोद्भवः ॥
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः । १२॥
देवाः शृणत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम् ।
क्षिपतां दानवैः सार्द्धं सख्यमत्रप्रवर्तताम् ।१३
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः ।
सहायं वरुणंकृत्वाचक्रपाणिर्विबोध्यताम् ॥१४

जो विद्या समस्त लोकों के पास नहीं थी तथा देवों और राक्षसों के समीप में भी विद्यमान नहीं थी एवं नाग, ऋषिगण और ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णु के पास भी नहीं रही उस महान् प्रभाव वाली इस विद्या को भगवान् शङ्कर से प्राप्त करके शुक्राचार्य परम निवृत्ति को प्राप्त हुए थे। इसके पश्चात् सुमहश्वर देवासुर घोर समर हुआ था ॥ ८ । ९ ॥ वहाँ पर देवों के द्वारा मरे हुए दैत्यों को शुक्राचार्य ने विद्या के बल के द्वारा

उन दैत्येन्द्रों को लीला ही से विचक्षण ने उठा दिया था। इस प्रकार से इन्द्र और उदार बुद्धि वाले वृहस्पति तथा हव्यभाव सैकड़ों और सहस्रों देवगण सबके सब विषाद युक्त मुखों वाले विकलेन्द्रिय हो गये थे। इसके पश्चात् उनके विषण्ण होने पर भगवान् कमलोद्भव जगत् के स्वामी ने मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर यह सुरेन्द्रों से कहा था॥ १०। ११। १२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगणो ! मेरा यह वाक्य सुनो और उसे वैसे ही करो। दानवों के साथ यहाँ पर सख्य भाव कर डालो। अमृत की प्राप्ति का उद्योग करो तथा क्षीर सागर का मन्थन करो। वरुण को सहायक बनाकर भगवान् चक्रपाणि को प्रबुद्ध करना चाहिए॥ १३, १४॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वाशेषनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रोबलिस्वामीस्तोककालनिवेश्यताम् ॥१५
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः।
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलः मन्थकार्यप्रवर्त्यताम् ॥१६
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम्।
अल विराधेनवयंभृत्यास्तव बले ! ऽधुना ॥१७
क्रियताममृतोद्योगो व्रियतां शेषनेत्रकम्।
त्वया चोत्पादितेदैत्य ! अमृत्तेऽमृतमन्थने ॥१८
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः।
एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः ॥१९
यथा वदत हे देवा ! स्तथाकार्यं मयाऽधुना।
शक्तोऽहमेकएवात्रमथितुं क्षीरवारिधिम् ॥२०
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना।
सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः ॥२१
यो न पूजयते भक्त्या प्रत्य चेह विनश्यति।
पालयिष्यामिवःसर्वानधुनास्नेहमास्थितः ॥२२

मन्दराचल पर्वत को मन्थान बनाकर उसे शेषनाग के नेत्र से

(नेती से) वेष्टित करो । दानवों का इन्द्र स्वामी बलि को थोड़े समय तक निवेशित करो । पाताल में अविनाशी भगवान् विष्णु जो कूर्म रूप वाले हैं उनकी प्रार्थना करो । शैलराज मन्दराचल की भी प्रार्थना करो और फिर मन्थन का कार्य प्रवृत्त कर दो । इस वचन को देवों ने श्रवण किया था और फिर वे सब दानवों के मन्दिर में गये थे । हे बले ! अब आप विरोध मत करो हम सब आपके भृत्य हैं । अब तो सब मिलकर अमृत की उपलब्धि का प्रयोग करो और मन्थन कार्य का नेत्र शेषनाग को बना डालो । हे दैत्य ! आपके द्वारा इस अमृत मन्थन में अमृत के समुत्पादित होने पर सब अमर हो जायेंगे और यह आपके ही प्रसाद से सुसम्पन्न होगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । इस तरह से उन देवों के द्वारा कहे जाने वाला वह दानव बहुत परितुष्ट हो गया था । हे देवगण ! आप लोग जैसा भी कहते हैं हम भी सब वैसा ही मुझे भी इस समय में करना ही है । यहाँ पर मैं अकेला ही इस क्षीर वारिधि को मन्थन करने में समर्थ हूँ और अब मैं आपको दिव्य अमृत अमृतत्व के लिये लाकर दे दूँगा । सुदूर से आश्रय को प्राप्त होने वाले वैरियों का जो भक्तिभाव से पूजन नहीं किया करता है वह यहाँ पर मरकर विनष्ट हो जाया करता है । अब मैं स्नेह में समस्थित होकर आप सब लोगों का पालन करूँगा ।। १५–२२ ।।

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा ।
मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम् ।।२३
सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने ।
सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं जगत् ।।२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारोभवेन्मम ।
यत्र स्थित्वयाभ्रमिष्यामिमथिष्येवरुणालयम् ।।२५
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद्वेष्टने मम ।
ततस्तु निर्गतौ दत्रौ कर्मशेषौ महाबलौ ।२६

विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ ।
ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनंशेषकच्छपौ ।।२७
त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते ।
किमु मन्दारकात्क्षुद्रात्घुटिकासन्निभादिह ।।२८

उसी समय में वह दैत्यराज इस प्रकार से देवगण के साथ चला गया था । धराधर मन्दर की सहायता करने के लिये प्रार्थना की थी । उसने कहा था—हे पर्वत वर ! इस समय में आप हमारे इस अमृत के मन्थन में सखा हो जाइये ! इस जगत् में सब सुर और असुरों का यह एक बहुत बड़ा कार्य्य है । ऐसा ही हो जायगा—यदि मेरा कोई आधार हो जायगा जिस पर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और सागर का मन्थन करूँगा ।। २३, २४, २५ ।। नेत्र बनने के कार्य में जो भी समर्थ हो और मेरा वेष्ठन कर सके उसकी कल्पना करिये । इसके पश्चात् महा बलवान् कूर्म और शेष निर्गत हो गये थे । भगवान् विष्णु के भाग धरणी के चतुर्थ अंश से धारण करने में स्थित हो गये थे । शेष और कच्छप दोनों गर्व से समन्वित वचन कहने लगे थे । इस त्रिलोकी के धारण करने से भी मुझको कोई ग्लानि नहीं होती है फिर एक घुटिका के सदृश यहाँ पर इस क्षुद्र मन्दर स्थल से क्या ग्लानि अर्थात् थकान हो सकती है ।। २६–२८ ।।

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा ।
न मे ग्लानि र्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने ।।२९
तत उत्पाट्यतंशैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे ।
चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा ।।३०
निराधारं यदा शैलं नशेकुर्देवदानवाः ।
मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ।।३१
नारायणनिवासन्ते जग्मुर्बलिसमन्विताः ।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ।।३२

तत्रापश्यन्त तन्देवं सितपद्मप्रभ शुभम् ।
योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम् ।।३३
हारकेयूरनद्धाङ्गम हिपर्यङ्कसंस्थितम् ।
पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम् ।।३४
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानङ्गरुत्मता ।
स्तूयमानं समन्ताच्चसिद्धचारणकिन्नरैः ।।३५

भगवान् शेष ने कहा—इस पूरे ब्रह्माण्ड के वेष्ठन से भी तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड के मथन से भी मुझे कोई ग्लानि नहीं होती है फिर इस मन्दर के वेष्टन से क्या मुझे हानि हो सकती है ।। २९ ।। इसके अनन्तर उसी क्षण में उस मन्दर शैल को उत्पादित करके क्षीर सागर में उस समय में लीला ही से डाल दिया था और कूर्म तथा नाग नीचे स्थित हो गये थे ।। ३० ।। जिस समय में देव और दानव क्षीरोद के मन्थन में निराधार शैल को मन्थन करने में समर्थ न होसके थे तो वे सब बलि के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे, वहाँ पर देवों के भी देवेश्वर भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान थे ।। ३१, ३२ ।। वहाँ पर उन सबने श्वेत पद्म के समान प्रभा वाले—योग निद्रा में निरत—पीताम्बरधारी अच्युत देव का दर्शन किया था । वह प्रभु हार और केयूर से नद्ध अङ्ग वाले और शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले—पद्मा के पाद पद्म से नाभि मण्डल का स्पर्श करते हुए विराजमान थे । गरुड़ उस समय में अपने पक्षों से उनका व्यजन कर रहे थे और सिद्ध-चारण तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तवन किये जा रहे थे ।।३३–३५।।

आम्नायै र्मूत्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः ।
सव्यबाहूपधान तन्तुष्टुवुर्देवदानवाः ।।३६
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।
नमो लोकत्रयाध्यक्ष ! तेजसामितभास्कर ! ।।३७
नमो विष्णो ! नमो जिष्णो ! नमस्ते कैटभार्दन ! ।

नमः सर्गक्रियार्त्रे जगत्पालयते नमः ।।३८
रुद्ररूपाय शर्व्वाय नमः संहारकारिणे ।
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने ।।३९
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ।
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महानल ! ।।४०
नमो नाभिहृदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल ! ।
पद्मभूत ! महाभूत ! कर्त्रेहर्त्रे जगत्प्रिय ! ।।४१
जनिता सर्वलोकेश ! क्रियाकारणकारिणे ।
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने ।।४२

उन नारायण प्रभू के चारों ओर मूर्तिमान् आम्नाय स्थित होकर स्तुति कर रहे थे। सव्यवाहु उपधान वाले उन प्रभु नारायण का समस्त देवों और दानवों ने वहां पर स्तवन किया था ।।३६।। सभी दिशाओं में वे सब अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर तथा प्रणत होते हुए स्थित हो गये थे। देव दानवों ने कहा—हे तीनों लोकों के स्वामिन ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार समर्पित है। आपतो अपने तेज के द्वारा अमित भास्कर के समान हैं : हे विष्णो ! हे जिष्णो ! हे कैरभ दैत्य के मर्दन करने वाले ! आपको हम सबका बारम्बार नमस्कार है। समस्त क्रियाओं के करने वाले और इस जगती तल के परिपालन करने वाले आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ।।३७, ३८।। संहार के करने वाले रुद्र रूप धारी भगवान् शर्व के लिए हमारा नमस्कार है। हे शूल के अपने आयुध से नधर्षण करने के योग्य ! दानवों के धात करने वाले आपको नमस्कार है ।।३९।। हे क्रम के त्रय से आक्रान्त ! हे प्रचण्ड दैत्येन्द्रों के कुल के लिए काल ! हे महानल ! त्रैलोक्य स्वरूप और अभव आपकी सेवा में बारम्बार प्रणाम समर्पित है। आपतो अपनी नाभि रूपी ह्रद से उत्पन्न पद्म के गर्भ से महान् अचल हैं। हे पद्मभूत ! हे महाभूत ! हे जगत् के परम प्रिय ! सबके कर्त्ता और हर्त्ता आपके लिये नमस्कार है ।। ४०. ४१ ।

हे सर्व लोकों के ईश ! आप ही सबके जनन करने वाले हैं। देवों के शत्रुओं के विनाश करने वाले और महा समरशाली तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम उपस्थित है ॥ ४२ ॥

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप ! नमः कीर्तिनिवासिने ।
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् ॥४३
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ।
अनन्तवलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना ॥४४
मथ्यताममृतं देव ! स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्व्वं वचस्तदा ॥
विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ॥४५
स्वागतं विबुधाः ! सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ॥४६
नारायणेनैव मुक्ताः प्राचुस्तत्रदिवौकसः ।
अमरत्वाय देवेश ! मथ्यमाने महोदधौ ॥४७
यथाऽमृतत्वं देवेश ! तथा नः कुरु माधव ! ।
त्वया विना वच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन ! ॥४८
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ! ततोऽग्रे भव नो विभो ! ।
इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ॥४९

हे लक्ष्मी के मुख रूपी कमल के रसास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्त्ति निवासी आपके लिये नमस्कार है। हम सब के अमरत्व प्राप्ति के लिये आप इस समस्त शैलों में अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त वल सम्पन्न बाहुओं से अवष्टब्ध करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और इसे धारण करिए ॥४३, ४४॥ हे देव ! स्वधा, स्वाहा की कामना करने वालों के अमृत का मन्थन कीजिए। इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया था।

उसी समय में मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान् ने कहा— सब देवगणो ! आपका स्वागत है। हमको आप यह बतलाइये कि यहां पर इस समय में आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इस समय में आप लोग यहां प्राप्त हुए हैं उसको अब मेरे सामने बिल्कुल दुःख रहित होकर बतलाये ।।४५, ४६।। भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वहां पर देवगण ने कहा—हे देवेश ! अमरत के लिए मध्यमान महोदधि में जिस प्रकार से हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव ! आप करिए। हेकैटमार्दन ! आपके बिना हम लोगों के द्वारा यह नहीं किया जा सकता है ।।४७, ४८।। हे नाथ ! उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो ! आप हमारे सबके आगे हो जाइए ! इस तरह से कहे गये अरियों के मर्दन करने वाले और अप्रघृष्य विष्णु उनके साथ चल दिये थे ।।४६।।

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः ।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ।।५०
विषभीतास्ततोदेवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः ।
मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ।।५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना ।
दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा ।।५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ।।५३
ततो देवासुरैः सर्वैर्जयशब्दपुरःसरम् ।
दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः ।।५४
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवादैत्यपुरः सराः ।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघोभूत्वाम्बुशीकरान् ।।५५

ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः ।
भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः ।।५६

भगवान् विष्णु उन सब देवों के ही सहित वहां पर चले गये थे जहां पर यह मन्दराचल विद्यमान था । वह मन्दराचल भोगी शेष के भोग के द्वारा वेष्टित था और अमरों तथा दानवों के द्वारा धृत हो रहा था । ।।५०।। क्योंकि देवगण विष से भयभीत होकर शेश नाग की पूँछ की ओर स्थित हो रहे थे तथा सैंहिकेय जिनके आगे था ऐसे दैत्यों के सङ्घ शेष के मुख की ओर समवस्थित थे । सहस्र मुखों वाला इसके शिर को बलि ने सव्य दक्षिण हाथ से आकर्षित किया था ।।५१, ५२।। उन भगवान् नारायण ने अपनी दोनों भुजाओं से सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल को अमृत का मन्थान धारण किया था ।।५३।। इसके अनन्तर समस्त देवों और असुरों ने जय शब्द के उच्चारण पूर्वक दिव्य डेढ़ सौ वर्ष तक उस क्षीर सागर का मन्थन किया था ।।५४।। इसके पश्चात् वे सब दैत्य पुरस्सर देवगण अत्यन्त श्रान्त हो गये थे । उन सबके थकित होने पर देवेन्द्र ने मेघ होकर उन अमृत के समान जल के सीकरों की वर्षा की थी । तथा शीतल वायु बहने लगा । जब देवगण भग्न प्राय होकर शान्त हो गये थे तो उस समय पर कमलासन प्रभु ने उनको प्रोत्साहन दिया था जिससे मन्थन कार्य बराबर चलता रहे ।।५५, ५६।।

मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः ।
अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा ।।५७
ब्रह्मप्रोत्साहितादेवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम ।
भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे ।।५८
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः ।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलाद्रुमाः ।।५९
ततः फलानां वीर्य्येण पुष्पौषधिरसेन च ।
क्षीरसङ्घर्षणाच्चापि दधिरूपमजायत ।।६०

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः
तदम्बुमेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत ॥६१
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः ।
तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन् ॥६२
ततोऽविवेगाज्जगृहु र्नागेन्द्रं सर्वतोऽसुराः ।
मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ॥६३

कमलासन प्रभु ने सिन्धु का मन्थन करो मन्थन करो—यह बार २ कहा था। जो उद्योग में पराण हुआ करते हैं उनको सदा ही अपार श्री हुआ करती है। इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा प्रोत्साहित हुए देवों ने पुनः अम्बुधि का मन्थन किया था। फिर दश हजार योजन के शेखर वाले शैल के भ्राम्यमाण होने पर हस्तियों के यूथ, वराह, शरभ आदि, सहस्रों एवं लाखों श्वापद, पुष्प तथा फलों वाले वृक्ष, फलों के वीर्य से तथा पुष्पों और ओषधियों के रस से एवं क्षीर के संघर्षण से भी वह सागर दधि के रूप वाला हो गया था ॥५७–६०॥ इसके पश्चात् सहस्रों समस्त जीवों के चूर्णित होने पर उस अम्बु मेद के सोत्सर्ग से वारुणी समुत्पन्न हुई थी।६१। उस वारुणी की गन्ध को सूँघ कर सब देव और दानव बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे उसके आस्वाद से देवगण और दैत्य आदिक सब बली हो गये थे ॥६२॥ इसके उपरान्त असुरों ने सभी ओर वेग के साथ उस नागेन्द्र को ग्रहण किया था और वह मन्थान तथा मन्थयष्टि मेरु वहाँ पर अचल हो गया था ॥६३॥

अभवच्चाग्रतोविष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः ।
स वासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत ॥६४
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः ।
ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ॥६५
भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम् ।
ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ॥६६

पुरतो विप्रचत्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ ।
द्विमूर्द्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ।।६७
एतेचान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः ।
ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ।।६८
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः ।
उदधे र्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ।।६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ।।७०

आगे की ओर भुजमन्दर बन्धन वाले विष्णु थे और वह वासुकि के फणों में संलग्न हाथ वाले कृष्ण शोभा दे रहे थे ।।६४।। उस समय में जिस प्रकार से नीलोत्पलों से युक्त अति विस्तार वाला ब्रह्मदण्ड हो । उस समय में सहस्रों मेघों की ध्वनि उस सागर से उठकर सुनाई दे रही थी ।।६५।। द्वितीय भाग में भगवान् और उसके आगे आदित्य थे । इसके पश्चात् रुद्रगण और महान् उत्साह वाले वसुगण तथा गुह्यक आदि थे । आगे की ओर विप्रचित्ति, नमुचि तथा वृत्र और शम्बर थे द्विमूर्धा, वज्र दंष्ट्र, सैंहिकेय तथा बलि था ।।६६, ६७ । ये सब तथा अन्य बहुत-से मुख भाग की ओर उपस्थित थे । उन सबने बल एवं तेज से विभूषित होते हुए दृप्त होकर अम्बुधि का मन्थन किया था ।।६८।। सुरों असुरों के द्वारा मन्दराचल से मथ्यमान सागर का महान् मेघ की ध्वनि के तुल्य महान् घोष हुआ था । उस महाद्रि से वहां पर अनेक जलचर विनिर्धूत हो गये थे और सैकड़ों तथा सहस्रों तो विलय को प्राप्त हो गये थे ।।६९, ७०।।

वारुणानि च भूतानि विविधानि महेश्वरः ।
पातालतलवासानि विलयं समुपानयत् ।।७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् ।
न्यपतन् पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ।।७२

तेषां सङ्घर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः ।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ।।७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् ।
विगतासूनि सर्वाणिसत्वानिविविधानिच ।।७४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ।।७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा वहवश्चौषधीरसाः ।।७६
तेषाममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः ।।७७

महेश्वर भगवान् ने पाताल तल के निवास करने वाले विविध वारुण भूतों को विलय को प्राप्त कर दिया था। उस पर्वत के भ्राम्यमाण होने पर परस्पर में सङ्घर्ष को प्राप्त हुए पर्वत के अग्रभाग से पक्षियों से सयुत महान् द्रुम नीचे गिर गये थे ।। ७१ । ७२ ।। उनके सघर्ष होने से अग्नि अर्चियों के द्वारा बारम्बार जलती हुई ने विद्युतों के द्वारा नील अभ्र की भाँति उस मन्दराचल को समावृत कर लिया था। निकले हुए कुञ्जरों को तथा सिंहों को—विगत प्राणों वाले सब अनेक सत्त्वों को दग्ध कर दिया था। अमरों में श्रेष्ठ ने इधर-उधर जलती हुई उस अग्नि को इन्द्रदेव ने सभी ओर मेघ से समुत्पन्न जल के द्वारा शान्त कर दिया था ।। ७३ । ७४ । ७५ ।। इसके अनन्तर वहाँ पर सागर के जल में नाना प्रकार के रसों का स्राव होने लगा था। उसमें महान् वृक्षों के निर्यास थे और बहुत-सी ओषधियों के रस थे। उन अमृत वीर्य वाले रसों के पय से ही सुरगण काञ्चन छवि के सदृश होते हुए अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे ।। ७६-७७ ।।

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः ।
रसान्तरैर्विमिश्रञ्च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ।।७८

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् ।
श्रान्ताःस्म सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतञ्च ॥७६
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा ।
चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु मन्थनम् ॥८०
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वैषां बलं विष्णो ! भवानेव परायणम् ॥८१
बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिताः ।
क्षुभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम् ॥८२

इसके अनन्तर उस समुद्र का जो जल था वह पय हो गया था और वह रसान्तरों से विमिश्रित हो गया था। इसके पश्चात् क्षीर से वह घृत हो गया था ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त वहाँ पर समासीन ब्रह्माजी से देवगण ने यह वचन कहा था—हे ब्रह्मन् ! हम लोग अत्यधिक श्रान्त हो गये हैं और वह अमृत उत्पन्न नहीं हो रहा है। भगवान् नारायण के बिना समस्त दैत्य और सब देवोत्तम गण ने इस सागर के मन्थन को करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत किया था। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देव नारायण से यह वचन कहा—हे विष्णो ! आप इनको बल का प्रदान करें। आप ही परायण हैं। भगवान् विष्णु ने कहा—जो इस कर्म के करने में समास्थित हैं उन सबको मै बल का प्रदान करता हूँ। सबको क्रम से इसमें क्षोभ कर । चाहिए और मन्दराचल को घुमाना चाहिए ॥ ७६–८२ ॥

११३–क्षीरोद मथन वर्णन (२)

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्तेमहोदधिम् ।
तत्पयः सहिताभूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ॥१

ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् ।
प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः ॥२
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
सुरादेवीसमुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा ॥३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः ।
मरीचिविकचः श्रीमान् नारायण उरोगतः ॥४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तवकाञ्चितः ।
अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम् ॥५
आपूरितदिशाम्भागं दुःसहं सर्वदेहिनाम् ।
तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छितापरिलङ्घिताः ॥६
उपाविशन्नब्धितटे शिरः संगृह्य पाणिना ।
ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करके वे बलवान् सब सहित होकर उस महोदधि के मथ को अत्यन्त ही अधिक उन्होंने आकुल कर दिया था। इसके पश्चात् उस सागर से एक शत सहस्रांशु के ही समान प्रसन्न आभा वाला उज्वल शीतांशु सोम समुत्पन्न हुआ था इसके अनन्तर घृत से पाण्डुर वासिनी श्री समुत्पन्न हुई थी फिर मुरा देवी समुत्पन्न हुई तथा पाण्डु तुरङ्ग उत्पन्न हुआ था ।। १, २, ३ ।। फिर अमृत से सम्भव होने वाली परम दिव्य कौस्तुभ मणि समुत्पन्न हुई थी जो मरीचियों से विकच एवं श्री सम्पन्न थी और नारायण के उर:स्थल में प्राप्त हो गई थी ।। ४ ।। पारिजात की समुत्पत्ति हुई थी जो विकसित कुसुमों के स्तवकों से अञ्चित था । इसके अनन्तर उन सबने अम्बर के सदृश धूम को देखा था ।। ५ ।। सब दिशाओं के भागों को समापूरित—सब देहधारियों को दुःसह ऐसे उस धूम को समाघ्रात करके सभी सुरगण मूच्छित और परिलङ्घित हो गये थे ।। ६ ।। सबके सब उस समय में अपने हाथ से शिर पकड़ कर सागर

के तट पर बैठ गये थे और इसके उपरान्त वह अनल अन्यन्त ही क्रम से दुर्वार होकर दिखाई देने लगा था ।। ७ ।।

ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा ।
तेनाग्निनापरिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ॥८
दग्धाश्चाप्यर्द्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः ।
प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना ॥९
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्मात् डुण्डुभजातयः ।
कृष्णासर्पामहादंष्ट्रारक्ताश्च पवनाशनाः । १०
श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोनसजातयः ।
मशकाभ्रमरादंशा मक्षिकाः शलभास्तथा ॥११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रस्तथा हि विषजातयः ।।१२
शार्ङ्ग हालाहलामुस्तवत्सकं गुरुभस्मगाः ।
नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ।।
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ।।१३

ज्वालाओं की माला से समाकुल आकार वाला और अचि से सभी ओर महान् भीषण वाले उस अग्नि से प्रायः सभी सुर और असुर परिक्षिप्त हो गये थे । वे कुछ दग्ध और कुछ आधे दग्ध होकर सभी दिशाओं में भ्रमण करने लगे थे । प्रधान देव और दैत्य उस वह्नि के द्वारा भीषित-हो गये थे । इसके अनन्तर उससे डुण्डुभ जातियाँ समुद्भूत हो गये थे । कृष्ण सर्प—महान् दाढ़ों वाले—रक्त-पवन का अशन करने वाले-श्वेत-पीत तथा अन्य गोमस जाति वाले—मशक-भ्रमरदंश-मक्षिका-शलभ-कर्णशल्य—कृकलास ऐसे अनेक वहाँ पर भ्रमण कर रहे थे और वे ऐसे सभी प्राणी थे जो दाढ़ों से सम्पन्न-रौद्र और विषयुक्त जातियों वाले थे । शार्ङ्ग हालाहल-मुस्त वत्सक-गुरुभस्मग और अन्य नील पत्र आदि सैकड़ों बहुत से भेद से युक्त थे । जिनकी गन्ध ही

ऐसी प्रवल थी कि जिससे गिरियों के शिखर भी बहुत ही शीघ्र दग्ध हो जाते थे ।। ८–१३ ।।

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम् ।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ।। १४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम् ।
नीलोत्पलाभैः कुसुमैः कृतार्धं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ।। १५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहि भयाश्रयन्तम् ।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे ।।१६
केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः ।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्त्ववाप्ता विषमामवस्थाम् ।।१७
श्वासेन तस्य निर्दग्धा ततो विष्णवन्द्रदानवाः ।
दग्धाङ्गारनिभाजाता ये भूता दिव्यरूपिणः ।।
ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम् ।। १८
को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च ।
किं कृत्वा ते प्रियं जाये देवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ।।१९
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः ।
उवाच कालकूटस्तु भिन्न दुन्दुभिनिस्वनः।।२०

इसके अनन्तर नील रस के ओघ से भिन्न भृङ्ग एव गञ्जन की आभा वाले, विषम श्वास लेता हुआ, लोकान्तर पूरक काया से युक्त, जलती हुई अग्नि के तुल्य केशों से संयुत–सुवर्ण और मुक्ता फलों से विभूषित अङ्गों वाला, किरीट धारी, पीतवर्ण के वस्त्र से वेष्टित, नीलोत्पल के समान आभा वाले पुष्पों से कृत अर्घ वाला, अम्भोधर के तुल्य भीम वेग वाला, गर्जन से समन्वित, विग्रहधारी देही जो भय का समाश्रय था समुद्र के मध्य में सस्थित सबमें देखा था । ऐसे उस भीषण, उग्र नेत्रों से सम्पन्न को देखकर समस्त भूत वित्रस्त हो गये थे । कुछ तो उसे देखने के साथ ही अभाव को प्राप्त हो गये थे और कुछ दूसरे बेहोशी

को प्राप्त हो गये थे। अन्य लोग अपने मुखों से फेनों का वमन कर रहे थे और कुछ तो विषम दशा को ही प्राप्त हो गये थे। उसके श्वांस से ही बहुत से निर्दग्ध हो गये थे। इसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र और दानव सबके सब दग्ध अङ्गार के तुल्य हो गये थे जो भूत परम भव्य दिव्य रूप वाले थे। इसके अनन्तर भगवान् विष्णु सुरात्मक उससे बड़े ही सम्भ्रम से बोले—श्री भगवान् ने कहा—आप एक अन्तक की प्राख्या वाले कौन हैं ? हम सबको आपका परम प्रिय क्या कर्म करना चाहिए। जिससे देव को प्रसन्न करें। यह समस्त अभ्य हमको बतलाइये ! वह कालाग्नि के सदृश भगवान् विष्णु के इस वचन का श्रवण करके वह कालकूट विष जो मूर्त्तिमान् था भिन्न दुन्दुभि के समान ध्वनि वाला यह बोला-॥ १४-२० ॥

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः।
यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः। १
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान् ॥२२
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः।
मा मां ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम्। २३
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः।
ब्रह्मविष्णूपुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम् ॥२४
निवेदितास्ततोद्वास्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः।
अनुज्ञाताः शिवेनाथबिविशुर्गिरिशान्तिकम् ॥२५
मन्दरस्यगुहांहैमीं मुक्तामालाविभूषिताम्।
सुस्वच्छमणिसोपानांवैदूर्यस्तम्भमण्डिताम् ॥२६
तत्र देवासुरैः सर्वै र्जानुभिर्धरणीगतैः।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम् ॥२७

कालकूट ने कहा—मैं कालकूट नाम वाला अम्बुधि से समुत्पन्न होने

वाला विष हूं जिस समय में तीव्रतर अमर्ष वाले और परस्पर में वध करने की इच्छा से युक्त सुरों और असुरों के द्वारा यह अद्भुत दुग्धाम्भोधि का विमथन किया गया तो मैं उसी समय में इन समस्त दानवों के सहित देवों का हनन करने के लिए ही समुत्पन्न हुआ हूं। अब मैं क्षणभर में यहां पर सब देह धारियों को मार डालूंगा। सब लोग मुझको ग्रसित मत करो अथवा भगवान् गिरीश के समीप में चले जाओ ॥२१, २२, २३॥ उसके इस वचन को सुनकर सब सुर और असुर भयभीत हो गये थे और उन्होने ब्रह्मा तथा विष्णु को अपना नेता बनाकर वे सब भगवान् शङ्कर के समीप में जाकर प्राप्त हुए थे। वहां पर द्वारपर स्थित गणेशों के द्वारा उन सुरासुरों का आगमन निवेदित किया गया था। इस पर शिव के द्वारा वे आज्ञा को प्राप्त करके फिर भगवान् शिव के समीप में पहुँच गये थे। वहां पर मन्दराचल की एक गुहा थी जो सुवर्ण मयी थी और मोतियों की मालाओं से विभूषित थी तथा उसमें अतीव निर्मल मणियों के सोपान बने हुए थे एवं वैदूर्य मणियों के स्तम्भों से वह गुहा मण्डित थी। वहां पर सभी देव और असुर अपने घुटने भूमि पर टेककर बैठ गये थे। उन्होंने अपने आगे ब्रह्माजी को संस्थित करके इस स्तोत्र का कथन करना आरम्भ कर दिया था ॥२४–२७॥

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ॥२८
नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे ।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ॥२९
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे ।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ॥३०
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे ।
साङ्ख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ॥३१
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्कर ।

रंहसे देवदेवाय नमस्ते च सुरोत्तम ! ॥३२
एकवीराय शर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने ।
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने ॥३३
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे ।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ॥३४
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।
अग्र्यायचैवचोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ॥३५

देवों तथा दानवों ने कहा—हे विरूपाक्ष देव ! सभी ओर से अनन्त चक्षु वाले आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है । पिनाक को हाथ रखने वाले—वज्रहस्त और चम्बी आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥२८॥ त्रिशूल हाथ में रखने वाले—दण्ड धारी और धूजटि आपको प्रणाम है । त्रैलोक्य के नाथ और भूत ग्रामों के शरीर को धारण करने वाले आपकी सेवा में नमस्कार है ॥२९॥ सुरों के शत्रुओं का हनन करने वाले—सोम, अग्नि, अर्क के उत्तम नेत्रों वाले को प्रणाम है । ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु के रूप वाले आपको हमारा नमस्कार है । वेदरूप ब्रह्मा और देव रूपी आपके लिए नमस्कार है । भूतों के साङ्ख्य योग के लिए और शम्भु आपके लिए नमस्कार है । कामदेव के अङ्ग का विनाश करने वाले आपको हमारा प्रणाम है । हे काल के क्षय करने वाले ! हे सुरों में उत्तम ! देवों के देव ! आपकी सेवा में नमस्कार है ॥३०, ३१, ३२॥ एक वीर, शर्व और पिङ्ग कपर्दी आपके लिये प्रणाम है । उमा देवी के भर्त्ता और यज्ञ त्रिपुर के घात करने वाले आपके लिए नमस्कार है । ॥३३॥ शुद्ध बोध प्रबोध, मुक्त, कैवल्य रूपी, तीनों लोकों के विधाता तथा वरुण, इन्द्र और अग्नि के रूप वाले आपकी सेवा में नमस्कार है । ॥३४॥ ऋक्, यजु, सामवेद पुरुष, ईश्वर, अग्य, उग्र, विप्र और श्रुति के चक्षु वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार समर्पित है ॥३५॥

रजसेचैवसत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ।

अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ॥३६
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ।
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च ॥३७
उमाप्रियाय शर्वाय दन्दिवक्त्राञ्चिताय च ।
ऋतुमन्वन्तरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ॥३८
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने ।
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥३९
धन्विने रथिने चैव यतते ब्रह्मचारिणे ।
इत्येवमादिचरितः स्तुतं तुभ्यं नमोनमः ॥४०
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः ।
उवाच वाक्यंभीतानांस्मितान्वितशुभाक्षरम् ॥४१

स्तिमित आत्मा वाले—रजगुण और सत्त्व के लिए नमस्कार है। अनित्य नित्यभाव और नित्य चरात्मा के लिये नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त को प्रणाम है। भक्तों की आर्त्ति के नाश करने वाले और नारायण प्रभु के प्रिय, उमा के परम प्रिय, शर्व, नान्दि वक्त्राञ्जित ऋतु मन्वन्तर कल्प, पक्ष मास दिन स्वरूप वाले. नानारूप, मुण्ड, वरूथ पृथु दण्डी, कमल हस्त, दिग्दास, शिखण्डी, धन्वी, रथी, यति, ब्रह्मचारी. इत्येवमादि चरितों से स्तुत आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। इस प्रकार से सुर और असुरों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् स्थाणु परम तोष को प्राप्त हुए थे। भीतों के स्मित से समन्वित शुभ अक्षरों वाला वाक्य उन्होंने कहा था—॥३६-४१॥

किमर्थमगता ब्रूत त्रासग्लानमुखाम्बुजाः ! ।
कि वाऽभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ॥
इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः ॥४२॥
अमृतार्थे महादेव ! मथ्यमानेमहोदधौ ।
विषमद्भुतमुद्भूतंलोकसंक्षयकारकम् ॥४३

स उवाचाथसर्वेषां देवानां भयकारकः ।
सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मा पिबस्तथा ॥४४
तमशक्तावयं ग्रस्तुं सोऽस्मान् शक्तोबलोत्कटः ।
एषनिश्वासमात्रेण शत वंसमद्युतिः ॥४५
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेनयमश्च विषमात्मवान् ।
मूच्छिताः पतिताश्चान्येविप्रणाशङ्कताः परे ॥४६
अर्थोऽनर्थक्रियांयाति दुर्भगानां यथा विभो ! ।
दुर्बलानाञ्च राकलो यथाभवतिचापदि ।४७
विषमेतत्समुद्भतं तस्माद्वामृतकांक्षया ।
अस्माद्भयान्मोचयत्वं गतिस्त्वञ्च परायणम् ॥४८
भक्तानुकम्पो भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः ।
यज्ञाग्रभुक् सवहविः सौम्यः सोमः स्मरान्ततकृत् ॥४९

भगवान् श्री शङ्कर ने कहा—त्रास से म्लान मुख कमल वालो ! आप लोग यहां किस प्रयोजन के लिए समागत हुए हैं ? आज मैं आपका क्या अभीष्ट प्रदान करूं ? आप स्वेच्छया शीघ्र बतलाइये और इसके बताने में विलम्ब न करिये। इस तरह से जब महादेव के द्वारा उनसे कहा गया था तो वे सब सुर और असुर उनसे कहने लगे थे—॥४२॥ सुर और असुरों ने कहा—हे महादेव ! हम लोग अमृत के लिये इस महोदधि का मन्थन्न कर रहे थे उस मथ्यमान सागर से अद्भुत और लोकों के संक्षय को करने वाला विष समुत्पन्न हुआ था। वह हम सब देवों को भय करने वाला बोला था कि मैं आप सबको भक्षण कर जाऊँगा अथवा मेरा पान करो ॥४३, ४४॥ उसका ग्रसन करने के लिए हम सब अशक्त हैं प्रत्युत बल से उत्कर वही हमको ग्रसने में समर्थ है। यह केवल विश्वास मात्र से ही ग्रस्त कर सकता है। वह शतपर्व की द्युति के समान द्युति वाला है। उसने विष्णु को कृष्ण कर दिया था और आत्मवान् उसने यम को विष कर दिया था। कुछ लोग उसने मूच्छित कर दिये

थे, अन्य गिरा दिये थे तथा दूसरों को प्रनष्ट कर दिया था। हे विभो ! जैसे बुरे भाग्यों वालों को हुआ करता है वैसे ही सब अर्थ अनर्थ क्रिया प्राप्त हुआ करते हैं जिस तरह से आपत्ति काल में दुर्बलों का संकल्प हुआ करता है। यह विष उससे समुद्भूत हुआ है शायद यह अमृत की आकाङ्क्षा से ही हुआ है। अब आप इस भय से हमारा मोचन करिये। आप ही हमारी अब गति हैं और आप ही परायण हैं। आप अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, भावों के ज्ञाता, भुवनादीश्वर, विभु हैं तथा यज्ञों में सबसे आगे भोग करने वाले, सर्व हवि, सोम, सौम्य और आप कामदेव के अन्त कर देने वाले हैं ॥४५-४९॥

त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत् ।
रक्षास्मान् भक्तसंकल्पाद्विरूपाक्ष ! विषज्वरात् ॥५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद्भवः ।
भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् ॥५१
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः ! ।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥५२
इत्युक्त्वाहृष्टरोमाणो वाष्पगद्गदकण्ठिनः ।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथाइव मेनिरे ॥
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ॥५३
ततोऽव्रजद् द्रुतगतिना ककुद्मिना हरोऽम्बरे पवनगतिजगत्पतिः ।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनै विगृहीतशुभ्रचामरैः ॥
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः ।
शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ॥ ५४
आसाद्य दुग्धसिन्धुं तं कालकूटं विषं यतः ।
ततो देवोमहादेवो विलोक्यविषमंविषम् ॥५५
च्छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामपाणिना ।
पीयमानेविषेतस्मिंस्ततोदेवाः महासुराः ॥५६

हे देव ! आप ही एक हमारी गति हैं और देवों के समुदाय के कल्याण करने वाले हैं। हे विरूपाक्ष ! भक्षण करने के संकल्प वाले इस महाविष के डर से हमारी आप रक्षा कीजिए ।।५०।। यह श्रवण करके भग के नेत्रों के अन्त कर देने वाले भव प्रभु ने कहा—मैं इस घोर महाविष कालकूट का भक्षण कर जाऊँगा। हे सुरासरो ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो कृच्छ्रसाध्य कृत्य होगा उसको भी साध्य कर दूंगा। आप लोग सब विगत ज्वर होकर स्थित रहिए ।।५१, ५२।। इतना कह कर वह शान्त हो गये। किन्तु देवगण प्रहृष्ट रोमों वाले, वाष्प से गद्गद् कठों वाले आनन्द के अश्रुओं से परीत नेत्रों वाले सबन अपने आप सनाथ की तरह से मान लिया था। ब्रह्मा आदि समस्त देवगण सुमानस एवं समाश्वस्त हुए थे। इसके उपरान्त में पवन के समान गति वाले जगत् के स्वामी हर ने आकाश में द्रुत गति वाले ककुद्मी के द्वारा चले गये थे। ग्रहण किये हैं शुभ्र चामर जिन्होंने ऐसे वाहनों से समन्वित और प्रधावित असुर और सुरेन्द्रनायकों को आगे करके वह शिखी क समान कपिश और ऊर्ध्व जूट वाले वशी भगवान् शिव इन शुभ आश्रमों वालों के सहित परम सुन्दर शोभा को प्राप्त हुए थे ॥५३–५६॥

जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।
चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ।।५७
स्तुवन्तश्चैव देवेश प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा ।
कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विषेदेवमथाब्रुवन् ।।५८
विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः ।
शोभते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ।।५९
भृङ्गमालोनिभंकण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव ।
इत्युक्तः शङ्करोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ।।६०
पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्त ममन्थुरब्धि विविधप्रकारैः ।।६१

उस समय में इन्द्र आदि जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवगण तथा हिरण्याक्ष प्रभृति दानव गण सभी गान करने लगे थे एवं नृत्य कर रहे थे और पुष्कल सिंह के समान नाद करते थे। देवेश्वर का स्तवन करते हुए वे सब उस अवसर पर परम प्रसन्न हो गये थे। जब वह महा कालकूट विष उनके कण्ठ देश में प्राप्त हो गया था तो वे सब इसके अनन्तर देव से कहने लगे थे। ब्रह्मा हैं प्रधान जिनमें ऐसे सब सुरगण और बलि जिनमें प्रमुख थे वे सब असुरगण महादेव जी से बोले—हे देव! कुन्द के पुष्प के तुल्य परम स्वच्छ श्वेत प्रभा वाले आपके गात्र में आपका यह कण्ठ भाग शोभा युक्त हो रहा है। भौंरो की माला के तुल्य यह महाविष आपके इस कण्ठ में ही यहीं पर स्थित रहे। इस तरह से उनके द्वारा कहे हुए देव त्रिपुर के विनाशक शंकर ने उनसे कहा था और विष के पान कर लेने पर भगवान् हर उन देवगणों को छोड़ कर मन्दर शैल के ही समीप में चले गए थे। उनके वहा पर पहुँच जाने पर उन देव गणों ने फिर अनेक प्रकारों से उस सागर का मन्थन करना शुरू कर दिया था।।५७-६१।।

११४—क्षीरोद मथन वर्णन (३)

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत ।
धत्वन्तरिः स भगवान् आयुर्वेदप्रजापतिः ।।१
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी ।
ततोऽमृतञ्च सुरभिः सर्वभूतभयापहा ।।२
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभञ्च महामणिम् ।
गजेन्द्रञ्चसहस्राक्षो हयरत्नञ्च भास्करः ।।३
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ।
छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः ।।४

पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा ।
धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदतिष्ठत ।।५
श्वेतकमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।
एतदत्यद्भुतं द्रष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ।।६
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम् ।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः ।।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—पुनः उस जलधि के मथ्यमान होने पर वह भगवान् आयुर्वेद के प्रजापति श्री धन्वन्तरि दिखलाई दिये थे। समस्त लोकों के चित्तों को प्रमथन करने वाली और आयत नेत्रों से समन्वित वह मूर्त्तिमती मदिरा दिखलाई दी थी और इसके अनन्तर अमृत तथा सब लोकों के भय का अपहरण करने वाली सुरभि तथा कमला प्रकट हुई। भगवान् विष्णु ने उस कमला को और कौस्तुभ मणि को ग्रहण कर लिया था। सहस्राक्ष ने गजेन्द्र को और भास्कर देव ने हयरत्न का ग्रहण किया था एवं लोकों के आरोग्य के प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि का भी ग्रहण किया था। छत्र को वरुण ने और शची के स्वामी ने कुण्डलों को ग्रहण किया कर लिया था। पारिजात नाम वाले तरु को वायु देव ने ग्रहण किया था और वह परम मुदित हुए थे। फिर देव वपुष्मान् धन्वन्तरि उत्थित हुए थे। उनके हाथ में एक श्वेत वर्ण का कमण्डलु था जिसमें अमृत स्थित था। इस परम अद्भुत दृश्य को देखकर दानवों का महान् नाद समुत्थित हो गया था। उस अमृत के लिए यह मेरा है—ऐसा ही सब कह रहे थे। इसके उपरान्त नारायण प्रभु मोहिनी माया में आस्थित हुए थे।।१–७।।

स्त्रीरूपमतुलंकृत्वा दानवानभिसंसृतः ।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः ।।
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ।।८
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च ।

प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहितादैत्यदानवाः ।।९
ततस्तदमृतंदेवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहारदानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ।।१०
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
विष्णोः सकाशात् संप्राप्य सगामे तुमुलेसति ।।११
ततः पिवत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिवत्तदा ।।१२
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ।।१३
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नलंकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ।।१४

श्री नारायण प्रभु ने अनुपम स्त्री का स्वरूप धारण किया था और फिर वे उन दानवों के संमुख में समागत हुए थे। इसके अनन्तर उन मूढ़ बुद्धि वाले दानवों ने वह अमृत का कलश उस मोहिनी को समर्पित कर दिया था ।।८।। दानव और देवगण सभी उस स्त्री में समासक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि उस मोहिनी का रूप लावण्य ही अद्भुत आकर्षण करने वाला था। इसके उपरान्त में सब दैत्य और दानव एकत्रित होकर अनेक अस्त्र तथा मुख्य महान प्रहरणों को ग्रहण करके सबके सब देवगणों पर आक्रमण कारी हो गये थे। इसके पश्चात् वीर्यवान् भगवान् विष्णु ने उस अमृत को लेकर नर के सहित प्रभु ने दानवों से हरण कर लिया था। इसके उपरान्त उसी समय में उन देवगणों ने उस अमृत का पान कर डाला था। उस समय में तुमुल संग्राम उपस्थित हो गया था तो भी देवगण ने विष्णु से उस अमृत को प्राप्त कर लिया था ।।९, १०, ११।। उस अमृत का देवों के द्वारा पान करने पर जो कि उनका परम अभीष्ट था। उन देवगणों में राहु दैत्य भी देवता का स्वरूप बनाकर बैठ गया था और उस समय में उसने भी उस अमृत को पी लिया था। उस दानव

के कण्ठ देश में ही वह अमृत प्राप्त हुआ था उसी समय में चन्द्र सूर्यों ने देवों के हित की कामना से इस तथ्य को बतला दिया था कि यह दानव कपट वेश में यहां पर अमृत पान कर रहा है। इसके पश्चात् भगवान् ने उसके अलंकृत शिर को सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला था जिस समय में वह अमृत का पान ओज से कर ही रहा था ।।८–१४।।

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरोमहत् ।
चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयन् वसुधातलम् ॥१५
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै ।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते ॥१६
विहायभगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः ।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत् ॥१७
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ।
ते सुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तोरुधिरं बहु ॥१८
असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ।
भिन्नानिपट्टिशैश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः ॥१९
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशन्तदा ।
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ॥२०
अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ।
ततो हलाहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः ॥२१

उस दानव का वह शैल के शिखर के समान महान् शिर चक्र के द्वारा उत्कृत्त होकर वसुधातल को चालित कर करते हुए गिर गया था। ॥१५॥ इसके पश्चात् राहु के मुख के द्वारा वैरि का विनिर्वन्ध किया गया था और वह चन्द्र एवं सूर्य्य के साथ शाश्वत है जो कि बल पूर्वक आज भी वाधा दिया करता है ॥१६॥ हरि भगवान् ने भी उस मोहिनी स्त्री के अतुल रूप का त्याग करके बड़े भयानक अनेक प्रहरणों के द्वारा दानव गणों को कम्पित कर दिया था ॥१७॥ प्रास, सुविपुल, तीक्ष्ण और सहस्रों

की संख्या में गिर रहे थे। वे असुर गण भगवान् के चक्र के द्वारा निर्भिन्न होकर बहुत से रुधिर का वमन कर रहे थे ।।१८।। असि, शक्ति और गदा से भिन्न होकर वे धरणी तल में निपतित हो गये थे। युद्ध स्थल में दारुण प्रहरणों के द्वारा भिन्न हुए शिर और पट्टिश भी भूमि पर गिर गये थे ।।१९।। उस समय में निरन्तर तप्त सुवर्ण के माल्य धरणी तल में गिर गईं थीं। महासुर रुधिर से अवलिप्त अङ्ग वाले निहत हो गये थे जो कि पर्वतों के शिखरों की भाँति धातुओं से रक्त होकर भूमि पर सो रहे थे। इसके पश्चात् सभी ओर से हलहला शब्द सम्भूत हो गया था। ।। २०, २१ ।।

अन्योऽन्यं चिछन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति ।
परिघैश्चायसैः पीतैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः ।।२२
निघ्नतां समरेऽन्योऽन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत् ।
चिछन्धि 'भन्धि प्रधावेति पातयेभिसरेतिव ।।२३
विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः ।
एवं सुतुमुलेयुद्धे वर्त्तमाने महाभये ।।२४
नरनारायणा देवौ समाजग्मतुराहवम् ।
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि ॥
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसत्तमान् ।।२५
ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागत महाप्रभं चक्रम मित्रनाशनम् ।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यमुत्तमम् ॥२६
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभ भयङ्करं करिकरबाहुरच्युतः ।
महाप्रभ दनुकुलदैत्यदारण तथोज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम् ।।२७
मुमोच वै तपनमुदप्रवेगवान् महाप्रभं रिपुनगरात्रदारणम् ।
सम्वर्त्ताज्वलन समानवचस पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा ।।२८

इसके पश्चात् परस्पर मे छेदन करने वालों के शस्त्रों से आदित्य के लोहित हो जाने पर आयत परिघों से पीत सन्निकर्षों से—मुष्टियों से

समर में अन्योऽन्य का निहनन करने वालों का शब्द दिवलोक को मानों स्पर्श कर रहा था। काटो, भेदन करदो, दौड़ो, गिरादो, दौड़कर धावा कर घेरलो, इत्यादि शब्द जो कि महान् घोर थे वहां पर सभी ओर सुनाई दे रहे थे। इस तरह से महान् भय देने वाले तुमुल युद्ध के वर्त्तमान होने पर नर और नारायण दोनों देव उस समर स्थल में समागत हो गये थे। वहां पर भगवान ने भी नर के दिव्य धनुष को देखकर भगवान् विष्णु ने दानव श्रेष्ठों के हनन करने के लिये चक्र का चिन्तन किया था। उसी समय में जैसे ही चक्र का चिन्तन किया था अम्बर तल से वह सुदर्शन चक्र आ गया था जो महती प्रभा से युक्त और शत्रुओं के नाश करने वाला था। उस चक्र की दीप्ति सूर्य्य के तुल्य थी—उसका मण्डल कुण्ठा से रहित था—वह सुन्दर दर्शन वाला-भीम-असह्य और उत्तम था ।।२२-२६।। उस समागत हुए, जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले, भयकर, महा प्रभा से युक्त, दनुकुल के दैत्यों का दारण करने वाले तथा जलती हुई अग्नि के समान विग्रह वाले उस चक्र को करिके करके सदृश वाहु वाले अच्युत प्रभु ने छोड़ दिया था। उस समय में अति प्रवेगवान्, तपन महाप्रभा से युक्त, शत्रुओं के नगरों का अवदारण करने वाला, सम्वर्त्तक (प्रलय कालीन अग्नि) वह्नि के तुल्य वर्चस वाला और वेग युक्त वह चक्र बारम्बार गिरा करता था ।।२७, २८।।

व्यदारयद्दितितनयान् सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे।
दहत् क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरितं प्रसह्य तानसुरगणान्नकृन्तत। २९
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमयः पिशाचवत्।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयस्तथा ।।३०
महाचला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः।
अथान्तराभरजनना: प्रपेदिरे सपादपा वहुविधमेघरूपिणः ।।३१
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य भास्वराः।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना महीधरा पवनहताः समन्ततः ।।३२

परस्परं भृशमभिगर्जितं मुहू रणाजिरे भृशमभि सम्प्रत्तंते ।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणैं मंहेषुभिः पवनपथं समावृणात् ॥३३
विदारयन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो महीं लवणजलञ्च सागरं महासुराः प्रविविशुर्रदिताः सुरै ॥३४
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशाम्य च ।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देश गमितः सुपूजितः ॥३५
नविादयन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोगताः सलिलधरा यथा गतम् ।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम् ।
ददुश्च त निधिममृतस्य रक्षितुं किरीटिने वलिभिरथमारः सह ॥३६

उस संयुग में पुरुष श्रेष्ठ के हाथों से ईरित उस चक्र ने सहस्रों की सख्या में दिति के पुत्रों को विदीर्ण कर दिया था।।२९।। किसी स्थान पर अग्नि की भाँति जो कि वायु से सम्प्रेरित होता है बल पूर्वक उन असुर गणों को दग्ध करता हुआ काट रहा था । आकाश में प्रवेरित, पुनः क्षिति में उस समय में रुधिर मय पिशाच की भांति रण स्थल में रक्त का वह चक्र पान कर रहा था । असुरगण अदीन मन वाले होकर पर्वतों से पुनः पुनः सुरगणों को अर्दित कर रहे थे ।।३०।। सहस्रों की सख्या में स्थित महान् अचल विगलित मेघों के वचस वाले गगन से महान् प्रपात करते हुए, पादपों के सहित बहुत प्रकार के मेघों के स्वरूप वाले अन्तराभरजनन वाले हो गये थ ।।३१।। आगे के शिखरों के प्रविगलित हो जाने वाले महान् पर्वत परस्पर में शीघ्र ही अभिपतित होकर भास्वर हो रहे थे । इसके अनन्तर मही जिसमें आद्र और कानन चलाय मान हो रहे थे ऐसी हो गई थी और सभी ओर महीधर पवन के द्वारा आहत हो र थे ।।३२।। उस रण के आँगन में आपस में अत्यन्त अधिक अभिगर्जित बारम्बार अधिकाधिक रूप में सम्प्रावृत्त हो रहा था । इसके अनन्तर नर ने श्रेष्ठ कनक के अग्रभूषणों वाले महान् वाणों से उस पवन के मार्ग को समावृत कर दिया था ।।३३।। उस समय में महान् भयानक उस सुरगणों

के युद्ध में पत्रियों के द्वारा पर्वतों के शिखरों को विदीर्ण करते हुए सुरों के द्वारा अर्दित हुए महासुर मही—लवण जल वाले सागर में प्रवेश कर गये थे ।।३४।। आकाश में गये हुए जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले परिकुपित सुदर्शन का श्रवण कराकर सुरगणों के द्वारा विजय प्राप्त करके वह मन्दराचल सुपूजित होता हुआ अपने ही देश को भेज दिया गया था ।।३५।। अपनी दिशा में प्राप्त होकर विनाद करता हुआ वह चला गया था । इसके अनन्तर सलिलधर सभी ओर वहां से जैसे समागत हुए थे वैसे ही चले गये थे । इसके उपरान्त सुरों ने अत्यधिक परम आनन्द की प्राप्ति कर उस अमृत को सुनिहित ही कर दिया था फिर बलशाली अमरों के सहित उस अमृत की निधि की रक्षा करने के लिए उस किरीट धारी प्रभु को दे दिया था ।।३६।।

११५—प्रासाद, भवन आदि निर्माण

प्रासादभवनादीनां निवेशं विस्तराद्वद ।
कुर्य्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः ।।१
भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदोनग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ।। २
ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ।।३
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः ।
सङ्क्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्यरूपिणा ।। ४
तदिदानी प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् ।
पुरान्धकवधेघोरे घोररूपस्य शूलिनः ।।५
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम् ।

करालवदनं तस्मात् भूतमुद्भूतमुल्वणम् ॥ ६
ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
ततोऽन्धकानां रुधिरमपिवत्पतितं क्षितौ ॥ ७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब कृपा करके आप प्रासाद—भवन आदि के निवेश को विस्तार पूर्वक बतलाइये । किस विधान से इसे करना चाहिए और कौन सी वस्तु वास्तु, इस नाम से कही जाती है ? ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र, और वृहस्पति ये अठारह वास्तु शास्त्र के उपदेशक विख्यात हुए हैं । मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् ने भी मनु के लिए सङ्क्षेप से इसका उपदेश दिया है ॥२, ३, ४॥ सो अब मैं इस वास्तु के उत्तम शास्त्र का वर्णन करूँगा । प्राचीन समय में घोर रूप वाले भगवान् शूली के घोर अन्धक के वध होने पर शिव के ललाट से भीषण स्वेद का सलिल भूमि पर गिर गया था । उससे कराल वदन वाला एक अत्यन्त उल्वण भूत उद्भूत हुआ था ॥ ५, ६ ॥ वह आकाश को ग्रसन्न हुआ था और सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को ग्रसित-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । इस भूमि पर अन्धकों का जो भी जितना रुधिर पतित होता था उसको वह तुरन्त ही पी जाया करता था ॥७॥

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले ।
तथापि तृप्तिमगमन्न तद्भूतं यदा तदा ॥८
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम् ।
क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ॥९
ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे ।
वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदभीष्टन्तवानघ ! ॥१०
तमुवाच ततोभूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् ।

भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तञ्च शूलिना ।।११
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः ।
स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धानं प्रपतद्भुवि ।।१२
भीतभीतैस्ततोदेवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना ।
दानवासुरक्षोभिष्टब्धं समन्ततः ।।१३
येन यत्रैवचाक्रान्त स तत्रैवावसत्पुनः ।
निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ।।१४

उसने उस युद्ध में महीतल पर जो भी जितना रुधिर पतित हुआ था उसने उस सबका पान कर लिया था । तो भी वह भूत जब तक तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ था । वह भगवान् सदाशिव के आगे बड़ा ही दारुण तप किया करता था और क्षुधा से आविष्ट वह भूत इस जगती त्रय का आहरण करने को समुद्यत हो रहा था । कुछ समय में उसकी उस महा दारुण तपस्या से उस युद्ध में भैरव उससे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये थे। भैरव ने उससे कहा—हे अनघ ! तुमको जो भी अभीष्ट हो वह वर मुझ से माँग लो तेरा कल्याण हो । इसके अनन्तर उस भूत ने भैरव से कहा-हे देव देवेश ! मैं इस त्रैलोक्य के ग्रसन करने की सामर्थ्य वाला हो जाऊँ । इस पर शूली ने 'ऐसा ही होगा'—यह कह दिया था ।।८–११।। इसके उपरान्त वह सम्पूर्ण त्रिदिव समग्र भूमण्डल और अपने देह से रुन्धान अन्तरिक्ष भूमि पर गिर पड़ा था ।।१२।। इसके पश्चात् डरे-डराये हुए देवों-ब्रह्मा-शूली और दानव, असुर तथा राक्षसों के द्वारा सभी ओर अवष्टब्ध हो गया ।।१३।। जिसके द्वारा जहां पर ही आक्रमण किया गया था वह फिर वहीं पर निवास करने लगा था । समस्त देवों के निवास से "वास्तु"—इस नाम से कहा जाता है ।।१४।।

अवष्टब्धाश्च तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः ।
प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः ।।१५
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः ।

ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः ।।१६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति ।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ।।१७
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।
यज्ञोत्सवादो च बलिस्तवाहारोभविष्यति ।।१८
एव मुक्तस्ततोहृष्टः सवास्तुरभवत्तदा ।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात्ततः प्रभृतिशान्तये ।।१९

उसके द्वारा अवष्टब्ध सब देवगण विज्ञप्त हो गये थे कि हे समस्त सुरगणो ! आप प्रसन्न हो जाइये आपने मुझे निश्चयीभूत बना दिया है । अब मैं नीचे की ओर मुख वाला अवष्टब्ध हुआ किस आकार वाला होकर स्थित रहूँगा ? इसका उत्तर ब्रह्मादि सबने यही दिया था कि वास्तु के मध्य में जो बलि है इसमें निश्चय ही वैश्व देवान्त में आहार हो जायगा ।।१५, १६ १७।। जो यज्ञ अज्ञान से किया गया है वह भी तेरा आहार होगा। यज्ञोत्सव आदि में जो बलि है वह तेरा आहार होगा । इस प्रकार से कहे जाने पर वह परम प्रसन्न होकर उस समय में वास्तु हो गया था । इसी कारण से तभी से लेकर शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ यह कहा गया है ।।१८, १९।।

११९–गृह निर्माण काल वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम् ।
यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ।।१
चैत्रेव्याधिमवाप्नोति यो गृह कारयेन्नरः ।
वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठेमृत्यु तथैव च ।।२
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् ।

श्रावणे भृत्यलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ।।३
पत्नीनाशोऽश्विने विन्द्यात्कार्तिके धनधान्यकम् ।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ।।४
लाभञ्च वहुशो विन्द्यात् अग्नि माघे विनिर्दिशेत् ।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ।।५
अश्विनीरोहिणीमूलं उत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ।।६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्ववाराः शुभावहाः ।
वर्ज्यंव्याघातशूलेचव्यतीपातातिगण्डयाः ।।७

श्री सूतजी ने कहा – इसके अनन्तर गृहकाल का विशेष निर्णय मैं बतलाता हूं । जिस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा भवन के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए ।। १ ।। जो मनुष्य चैत्र मास में गृह का निर्माण कराता है तो व्याधि की प्राप्ति किया करता है । वैशाख मास में धेनु और रत्नों का लाभ होता है तथा ज्येष्ठ मास में गृह के निर्माण का कर्य आरम्भ कराने से मृत्यु हो जाया करती है । आषाढ़ मास में भृत्य और रत्न तथा पशु वर्ग का लाभ होता है । श्रावण मास में भृत्यों का लाभ होता है तथा भाद्रपद मास में गृह निर्माण कराने से हानि हुआ करती है । आश्विन मास में पत्नी का विनाश जानना चाहिए । कार्त्तिक के महीने में गृह के निर्माण कराने से धन-धान्य का लाभ होता है । मार्गशीर्य में भक्त का लाभ तथा पौष में तस्करों से भय उत्पन्न होता है एवं बहुत सा लाभ भी होता है । माघ में अग्नि का भय होता है । फाल्गुन मास में काञ्चन और पुत्रों की प्राप्ति होती है यह काल का बल बता दिया गया है ।। ३, ४, ५ ।। अब नक्षत्रों के विषय में विचार प्रकट किया जाता है—अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, ऐन्दव, स्वाती, हस्त, अनुराधा ये नक्षत्र गृह निर्माण के कार्य्य में परम प्रशस्त माने गये हैं । आदित्य, भौम इन दो वारों को वर्जित करके गृह निर्माण

में अन्य सभी वार शुभावह हुआ करते हैं। व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड ये वर्जित करने के योग्य होते हैं ।। ६, ७ ।।

विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु कारयेत् ।
श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ।।८
तथा वैराजसावित्रो मुहूर्ते गृहमारभेत् ।
चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत् ।।६
स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमयन्तु परिवर्जयेत् ।
प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषुचैव हि ।।१०
पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत् ।
श्वेतारक्ता तथापीता कृष्णाचैवानुपूर्वशः ।।११
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्य्यं परीक्षणम् ।
विप्राणांमधुरास्वादाकटुकाक्षत्रियस्य तु ।।१२
तिक्ताकषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते ।
अरत्निमात्रोवैगर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः ।१३
घृतमामशरावस्थं कृत्वावर्तिचतुष्टयम् ।
ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णंसर्वदिङ्मुखम् ।।१४

निष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र ये योग श्रेष्ठ होते हैं— इनमें गृह का निर्माण कराना चाहिये। श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित्, रौहिण, वैराज, सावित्र—इन मुहूर्त्तों में गृह के निर्माण का आरम्भ कराना चाहिए। चन्द्र और सूर्य के बल को प्राप्त कर शुभ लग्न को भी देख लेना चाहिए। अन्य स्तम्भोच्छ्राय आदि कर्त्तव्य को परिवर्जित कर देना चाहिए। जो प्रासादों का निर्माण कराया जावे उनमें इसी प्रकार से विचार करना नितान्त आवश्यक है तथा कूआ और बावड़ी आदि के विषय में भी यही विचार करे। सबसे पहिले भूमि की परीक्षा करनी चाहिए इसके पश्चात् वस्तु की प्रकल्पना करे। कृष्णा, रक्ता, श्वेता तथा पीता अर्थात् सफेद, लाल, पीला और काला इनकी आनुपूर्वी से

कल्पना करे । विप्रों आदि की भूमि प्रशस्त कही जाती है । अतएव परीक्षण करना ही चाहिए । विप्रों का मधुर आस्वाद–क्षत्रिय का कटु का और वैश्य तथा शूद्रों में तिक्त एवं कषाय आस्वाद प्रशस्त होता है । एक अरत्नि मात्र गर्त्त में जो कि सभी ओर से भली भाँति लिप्त कर दिया गया हो, उसमें एक कच्चे सकोरा में घृत भर कर चार बत्तियाँ उसमें डाले और उनको जलाकर उस पूर्ण दीपक को सभी दिशाओं की ओर मुख करके भूमि की परीक्षा के लिये रखना चाहिए ।। ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४ ।।

दीप्तौ पूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वंशः ।
वास्तुः सामूहिकोनाम दीप्यते सर्वतस्तुयः ।।१५
शुभदः सववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च ।
अरत्निमात्रमधोगर्ते परीक्ष्य खातपूरणे ।।१६
अधिकेश्रियमाप्नोति न्यूनेहानिं समे समम् ।
फालकृष्टेऽथवादेशे सर्वबीजानि वापयेत् ।।१७
त्रिपञ्चसप्तरात्रो च यत्रारोहन्ति तान्यपि ।
ज्येष्ठोत्तमाकनिष्ठाभूर्वर्जनीयतरा सदा ।।१८
पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत् ।
एकाशीति पद कृत्वा रेखाभिः कनकेन च ।।१९
पश्चात्पिष्टेनचालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः ।
दशपूर्वायतालेखा दशचैवोत्तरायताः ।।२०
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव ।
एकाशीति पदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु ।।२१

उसकी दीप्ति में पूर्वादि को आनुपूर्वंशः गणों का ग्रहण करना चाहिए वास्तु—यह सामूहिक नाम है जो सभी ओर दीप्त होता है ।। १५ ।। यह प्रासादों में और गृहों में सब वर्णों का शुभ देने वाला होता है । अरत्नि मात्र खातपूरण नीचे के गर्त में परीक्षण करने के योग्य है ।।१६।। अधिक

होने पर श्री की प्राप्ति करता है और न्यून होने पर हानि करता है तथा सम होने पर सम ही फल देता है। हल की फाल के द्वारा जुते हुए अथवा देश में सब बीजों का वपन कराना चाहिए। तीन-पाँच और सात रात्रि में वे बीज जहाँ पर अंकुरित होते हैं वह भूमि ज्येष्ठ—उत्तम और कनिष्ठ होती है तथा सदा वर्णनीयतरा हुआ करती है ।। १७। १८ ।। पञ्चगव्य और औषधि के जलों के द्वारा परीक्षा करके सेवन करे। इक्यासी रेखाओं से और कनक से पद करके फिर पिष्ट के द्वारा अनुलेपन करे और सब ओर सूत्र से आलोडन करे। दश तो पूर्व की ओर आयत लेखा हों और दश ही उत्तरायन होवें। सब वास्तु विभागों में नवकानय जाननी चाहिए वास्तु के वेत्ता पुरुष को सब वास्तुओं में इक्यासी पद करना आवश्यक है ।। १९, २०, २१ ।।

पदस्थान् पूजयेद्देवां स्त्रिशत्पञ्चदशैव तु।
द्वात्रिशद्वाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदशः। २२
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत।
ईशानकोणादिषु तान् पूजसेद्धविषा नरः ।।२३
शिखीचैवाथपर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्यसत्यौ भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ।।२४
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा ।।२५
दौवारिकाऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः।
असुरः शोषपापौ चरोगोहिर्मुख्यएवच ।।२६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा।
बहिर्द्वात्रिंशादेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु ।।२७
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद्बुधः।
आपश्चैवाथसावित्रो जयोरुद्रस्तथैवच ।।२८

पदों में स्थित देवां का अभ्यर्चन करें जो तीस और पञ्चदश

होवें। बत्तीस वाह्य भाग में पूजने चाहिए और अन्दर में तेरह की पूजा करनी चाहिए ।। २२ ।। अव हम नामों का उल्लेख करके उनको वतलायेंगे उनके स्थानों को जानलो। उस मनुष्य को चाहिए कि ईशान आदि चारों कोणों में संस्थितों का पूजन करे और उस हवि के द्वारा ही करना चाहिए ।२३।। शिखी—पर्जन्य—जयन्त—कुलिशायुध—सूर्या—सत्य—भृश—आकाश—वायु—पूषा—वितथ—गृहक्षत—यम-गन्धर्व—भृङ्गराज—मृग—पितृगण—दौवारिक—-सुग्रीव—पुष्पदन्त—जलाधिप-—असुर—शोष—पाप—चरोग—आदि—मुख्य—भल्लाट—सोम—सर्प—अदिति—दिति—वाहिर ये बत्तीस होते हैं। उसके अन्त में जो होते हैं उनका श्रवण करो। ईशान आदि चतुष्कोणों में संस्थितों का बुध पुरुष को पूजन करना चाहिए। आप–सावित्र–जय–रुद्र ।। २३, २४ २५, २६, २७, २८ ।।

मध्ये नवपदे ब्रह्मायस्याष्टौचसमीपगान् ।
साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामतः श्रृणुः ।।२९
अर्य्यमासविताचैवविवस्वान्विबुधाधिपः ।
मित्रोऽथराजयक्ष्माचतथापृथ्वीधरः स्मृतः ।।३०
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृतः ।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्य्यग्नोऽग्निर्दितिस्तथा ।।३१
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः ।
तन्मध्ये तु बहिर्विंश द्विपदास्ते तु सवशः ।।३२
अर्य्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा ।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः ।।३३
वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक् ।
वायुं यावत्तथारोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः ।।३४
मुख्यात्भृशं तथा शोषाद्वितथं यावदेव तु ।
सुग्रीवाददितिं यावन् मृगात्पर्जन्यमेवच ।।३५

मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके आठ समीप में गमन करने वाले --एक के अन्तर से युक्त साध्यों को जान लो अब पूर्वार्द्धों के नामों का श्रवण करो ।। २६ ।। अर्यमा–सविता–विवस्नाम्–वसुधाधिप–मित्र–राजयक्ष्मा —पृथ्वीधर–आठवां आपवत्स--परित ब्रह्मण--आप--अपवत्स–पर्यग्न–अभिदिति—इस प्रकार से यह पादिकों का यह वर्ग है इसी तरह से कोणों में पूर्ण रूप से हैं । उसके मध्य में सब ओर वे बाहिर बीस द्विपद हैं ।। ३०, ३१, ३२ ।। अर्यमा–विवस्वान्–मित्र–पृथ्वीधर–दिशाओं में वे सब ओर ब्रह्मा के दोनों ओर त्रिपदा हैं ।। ३३ ।। अब मैं सरलों को भी पृथक २ बतलाऊँगा । तथा रोग से जहाँ तक वायु को फिर पितृगण से शिखि को बतलाता हूँ ।। ३४ ।। मुख्य से भृश तथा शोष से वितथ पर्य्यन्त–सुग्रीव से जहाँ तक अदिति है और मृग से पर्जन्य पर्यन्त है ।। ३५ ।।

एतेवंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु ।
एतेषां यस्तुसम्पातः पदं मध्य समं तथा ।।३६
मर्मचैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणगञ्च यत् ।
स्तम्भं न्यासेषुवर्ज्यानितुलाविधिषुसर्वदा ।।३७
कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद् यत्नतो जनः ।
सर्वत्र वास्तुर्निर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः ।।३८
मूर्द्धन्यग्निः समादिष्टो मुखेचापः समाश्रितः ।
पृथ्वीधरोऽयमाचौवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ ।।३९
वक्षस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः ।
नेत्रयोदितिपर्जन्यौ श्रोत्रोऽदितिजयन्तकौ ।।४०
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
सूर्यसोमादयस्तद्वत् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च ।।४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ ।
सावित्रः सविता तद्वद्धस्तं दक्षिणमास्थितौ ।।४२

ये वंश समाख्यात किये गये हैं और कहीं पर तो जय ही है। इनका जो सम्पात है मध्य पद तथा सम है। यह मर्म कह दिया गया है जो त्रिशूल कोण गत है। सब ओर न्यासों में स्तम्भ है और तुला विधियों में वर्ज्य हैं। मनुष्य को कीलोच्छिष्ट उपघात आदि को यत्न से वर्जित कर देना चाहिए। सब जगह पर वास्तु का पितृवैश्वानरायत निर्दिष्ट है। मूर्द्धा में अग्नि का निर्देश किया गया है—मुख में चाप समाश्रित है। पृथ्वीधर और अर्यमा वे दोनों स्तनों में अधिष्ठित हैं। वक्षःस्थल में आपवत्स का बुध पुरुषों को सदा पूजन करना चाहिए। नेत्रों में दिति और पर्जन्य, श्रोत्र में अदिति जयन्तक, दो सर्पेन्द्र अंस में संस्थित प्रयत्न पूर्वक पूजन करने के योग्य होते हैं। उसी तरह से बाहुओं में पाँच-पाँच सूर्य सोमादिक पूजनीय हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा वामहस्त में दोनों समास्थित हैं। इसी प्रकार से सावित्र-सविता दक्षिण हाथ में आस्थित हैं ।। ३६–४२ ।।

विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ ।
पूषाच पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने ।।४३
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ ।
पार्श्वेतु दक्षिणे तद्वत् वितथः सगृहक्षतः ।।४४
ऊर्वोर्यमांबुपौ ज्ञेयौ जान्वौर्गन्धर्वपुष्पकौ ।
जङ्घयो भृंगसुग्रीवौस्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः ।।४५
जयशक्रौ तथामेढ्रे पादयोः पितरस्तथा ।
मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते ।।४६
चतुः षष्टि पदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणास्मृतः ।
ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा ।।४७
बहिः कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसस्थिताः ।
विंशति द्विपदाश्चैव चतुः षष्टि पदे स्मृताः ।।४८
गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्ग यत्र जायते ।

शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ॥४६
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम् ।
हीनाधिकां गतावास्तोसर्वथातु विवर्जयेत् ॥५०
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत् ।
चतुः शालं त्रिशालञ्च द्विशाल चैकशालकम् ॥
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः ॥५१॥

इसके अनन्तर विवस्वान् और मित्र जठर में भली भाँति व्यवस्थित हैं। पूषा और पाप यक्ष्मा हाथों के मणिबन्धन में हैं। उसी प्रकार से असुर और शोष वाम पार्श्व में समाश्रित हैं। दक्षिण पार्श्व में उसी भाँति वितथ और सगृहत हैं। दोनों ऊरुओं में यम और अम्बुय जान लेने के योग्य हैं। दोनों जानुओं में गन्धर्व और पुष्पक हैं। दोनों जङ्घाओं में भृग और सुग्रीव समवस्थित हैं और स्फिक भागों मे दौवारिक और मृग स्थित होते हैं ॥ ४३, ४४, ४५ ॥ जप और शक्र मेढ् में संस्थित हैं और दोनों पादों में पितर समवस्थित रहा करते हैं। मध्य नव पद में ब्रह्मा हैं और वह हृदय में पूजित होते हैं। ब्रह्माजी के द्वारा यह वास्तु चौंसठ पद वाला कहा गया है। वहाँ पर ब्रह्मा चतुष्पद हैं तथा कोणों में अर्ध पद हैं। बाहिर कोणों में वास्तु में साध उभय संस्थित होते हैं। बीस द्विपद हैं और चौंसठ पद मे बताये गये हैं ॥ ४६, ४७, ४८ ॥ गृहों के आरम्भ कालों मे स्वामी के अङ्गों में जहाँ पर कण्डूति होती है वहाँ पर प्रासाद तथा भवन मे शल्य का अपनयन करना चाहिए। शल्य के सहित भयप्रद हुआ करता है और अशल्य शुभदायक होता है। हीनाधिक को गत वास्तु के सर्वथा विवर्जित कर देने चाहिए। इसी प्रकार से नगर और ग्राम देशों में भी विशेष रूप में वर्जित कर देवे। चतुःशाल–त्रिशाल–द्विशाल और एक शाल हे द्विजोत्तमो! नाम निर्देशपूर्वक उनका बतलायेंगे और स्वरूप के द्वारा भी कहेंगे ॥ ४६-५१ ॥

११७–भवन निर्माण वर्णन

चतुः शालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा ।
चतुः शालञ्चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम् ॥१
नाम्ना तत् सर्वतोभद्र शुभ देवनृपालये ।
पश्चिमद्वारहीनञ्च नन्द्यावर्तः प्रचक्षते ॥२
दक्षिणद्वारहीनन्तु वर्द्धमानमुपाहृतम् ।
पूर्वद्वारविहीनं तत्स्वस्तिकं नाम विश्रुतम् ।।३
रुचकंचोत्तरद्वारविहीनं तत्प्रचक्षते ।
सौम्यशालाविहीनं यत्त्रिशालं धान्यकञ्च तत् ॥४
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम् ।
शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ॥५
धन्यं यशस्यमायुष्यं शोकमोह विनाशम् ।
शालया याम्ययाहीनंयद्विशालंतुशालया ।।६
कुलक्षयकरंनृणां सर्वव्याधिविनाशनम् ।
हीन पश्चिमया यत्तु पक्षघ्नं नाम तत्पुनः ।।७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब मैं चतुःशाला का नाम और स्वरूप से वर्णन करता हूँ। चतुशाला चार द्वारों और सर्वतोमुख अलिन्दों से युक्त हुआ करता है ।।१।। देव और नृप के आलय में वह नाम से सर्वतोभद्र परम शुभ होता है। पश्चिम द्वार से हीन नन्द्यावर्त्त कहा जाता है ।।२।। जो दक्षिण द्वार से हीन होता है वह वर्द्धमान उपाहृत होता है। पूर्व द्वार से रहित वह स्वस्तिक इस नाम से प्रसिद्ध है ॥३।। उत्तर द्वार से जो विहीन होता है वह रुचक नाम वाला होता है। जो सौम्यशाला से रहित होता है वह त्रिशाल और धान्यक होता है ।।४।। यह मनुष्यों को बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के फल को प्रदान करने वाला तथा क्षेम और वृद्धि के करने वाला होता है। पूर्व शाला से हीन

'सुक्षेत्रम' इस नाम से विश्रुत होता है ।।५।। यह परम धन्य, आयुष्य (आयुकी वृद्धि करने वाला)—शोक और मोह का विनाश करने वाला होता है । याम्य (दक्षिण) शाला से हीन और शाला से विशाल होता है वह मनुष्यों के कुल का क्षय करने वाला और समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला हुआ करता है । जो पश्चिम दिशा में होने वाले द्वार से रहित होता है उसका नाम "पक्षघ्न"—हुआ करता है ।। ६, ७ ।।

मित्र बन्धून् सुतान् हन्त तथा सर्वभयापहम् ।
याम्यापराभ्यां शालाभ्यं धनधान्यफलप्रदम् ।।८
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथापुत्र फलप्रदम् ।
यम सूर्यञ्चविज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालिकम् ।।९
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत् ।
उदक्पूर्वे तु शालेहं दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ।।१०
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम् ।
धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यांयद्विशालकम् ।।११
तच्छास्त्रभयदनृणां पराभवभयावहम् ।
चूल्लीपूर्वा पराभ्यां तु साभवेन्मृत्युसूचनी ।।१२
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम् ।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्यांशालाभ्यांभयदंनृणाम् ।।१३
सिद्धाथवज्रवर्ज्याणि विशालानि सदावुधैः ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि भवनंपृथिवीपतेः ।।१४

याम्या पर शालाओं से मित्र–बन्धु–और सुतों की प्राप्ति होती है तथा सर्वप्रकार के भयों का अपहरण एवं धन और धान्य के फल का प्रदान करने वाला पक्षघ्न हुआ करता है । पश्चिमोत्तर शालिक मनुष्यों के क्षेम एवं वृद्धि का करने वाला है और पुत्र की प्राप्ति का फल प्रदान करने वाला है। इसका नाम यम सूर्य्यं जानना चाहिए ।।८, ९।। उत्तर और पूर्व

की शालाऐं जहां पर होती हैं उनका नाम दण्ड होता है। यह मनुष्यों को राजा, अग्नि, और मृत्यु का भय देने वाली हैं तथा कुल का क्षय करने वाली हैं ।।१०।। पूर्व और याम्य शालाओं से जो विशालक होता है उस का नाम धन है। यह अकाल मृत्यु और भय का प्रदान करने वाला तथा परचक्र के भय देने वाला होता है। पराओं से जो चूल्ली पूर्वा शाला होती है वह मृत्यु की सूचना देने वाली हुआ करती है ।।११, १२।। स्त्रियों को वैधव्य के देने वाला—अनेक भयों का करने वाला होता है। उत्तर और याम्य की शाला से मनुष्यों को भय दान होता है। अतएव बुध पुरुषों को सदा सिद्धार्थ वज्र वर्ज्य विशाल ही करनी चाहिए। इसके अनन्तर अब मैं पृथिवी पति के भवन का वर्णन करूँगा ।।१३, १४।।

पञ्चप्रकारं तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदतः।
अष्टोत्तरंहस्तशतं विस्तरश्चोत्तमोमतः ।।१५
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयतेचाष्टभिः करैः।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।।१६
युवराजस्य वक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम्।
षड्भिः षड् भिस्तथाशीतिहीयतेतत्रविस्तरात् ।।१७
त्र्यंशेन चाधिकदैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते।
सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।।१८
चतुः षष्टिस्तुविस्ताराात्षड्भिः षड्भिस्तुहीयते।
पञ्चस्वेतेषुदैर्घ्यंञ्चषड्भागेनाधिकभवेत् ।।१९
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्।
चतुश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करषष्टिः प्रविस्तरे ।।२०
अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते।
सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ।। १

यह नृप का भवन उत्तम आदि भेदों से पाँच प्रकार का बताया गया है। जो एक सौ आठ हाथ के विस्तार वाला होता है वह ही उत्तम

माना गया है ।।१५।। अन्य जो चार प्रकार के भवन कहे गये हैं उनमें जो विस्तार होता है वह आठ हाथों का कम ही हुआ करता है। इन पाँचों में लम्बाई से चतुर्थांश से अधिक दीर्घता बताई गयी है। अब मैं युवराज के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में कहता हूँ वहां पर अस्सी के विस्तार से छै-छै हाथ कम होता जाया करता है। इन पाँचों में भी तीन अंश से अधिक दीर्घता कही जाती है। अब सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों के विषय मे वर्णन किया जाता है ।।१६, १७, १८।। ये भवन चौंसठ के विस्तार से छै-छै हाथ प्रत्येक में कम होता जाया करता है। इन पाँचों में चौड़ाई षड्भाग से अधिक ही हुआ करती है ।।१९।। अब राजा के मन्त्रियों के भी भवन पाँच प्रकार के ही हुआ करते हैं उनका वर्णन किया जाता है। इनका विस्तार साठ हाथ का होता है और ये भी क्रम से चार-चार हाथ कम होते हैं ।।२०।। इन पाँचों में भी आठ अंश से अधिक दीर्घता हुआ करती है। अब इसके उपरान्त राजा के सामन्त—आमान्य और लोकों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन यहां पर किया जाता है ।।२१।।

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषुशस्यते ॥२२
शिल्पिनां कञ्चुकीनाञ्च वेश्यानां गृहपञ्चकम् ।
अष्टाविंशत् कराणान्तु विहीनं विस्तरे क्रमात् ॥२३
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत् ।
दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ॥२४
चतुर्थांशाधिकंदैर्घ्यं विस्तारोद्वादशेव तु ।
अर्धार्धकरहानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात् ॥२५
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम् ।
तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवन पञ्चकम् ॥२६
चत्वारिंशत्तुविस्तारा चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।

पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकंभवेत् ॥२७
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम् ।
द्वात्रिंशतिकराणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ॥२८

ये भवन चालीस और आठ अड़तालीस हाथ के विस्तार वाले हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार हाथ न्यून हो जाया करते हैं। इनमें भी चौथाई अंश से अधिक दीर्घता (चौड़ाई) इन पाँचों में प्रशस्त हुआ करती है ॥२२॥ नृप के यहां पर जो शिल्पी-कञ्चुकी और वेश्याएँ होते हैं उनके भी भवन पाँच तरह के उत्तम आदि भेदों वाले हुआ करते हैं। अट्ठाईस हाथ के विस्तार वाले होते हैं और क्रम से प्रत्येक में हीनता भी होती चली जाया करती है ॥२३॥ दुगुनी दीर्घता भी बताई गयी है। इसी प्रकार से मध्यमों भी होती है। अब दूतीकर्म करने वाले और अन्तिकादि के पाँचों भवनों को बतलाते हैं। चतुर्थांश से अधिक दीर्घता होती है और विस्तार बारह का हुआ करता है। आधे-आधे हाथ की न्यूनता विस्तार से क्रम से पाँचों में हो जाती है ॥२४, २५॥ राजा के यहां रहने वाले दैवज्ञ (ज्योतिषी)—गुरु, वैद्य, सभास्तार, पुरोहित, इनके भी पाँच-पाँच प्रकार के उत्तमादि भेद से भवन हुआ करते हैं। उनको बतलाते हैं—चालीस हाथ के विस्तार से युक्त ये होते है और चार-चार हाथ क्रम से हीन होते हैं। इन पाँचों में दीर्घता षड़भाग से अधिक हुआ करती है। अब ब्राह्मणादि चार वर्णों के सामान्य पाँचों गृहों के विषय में कहते हैं। ये बत्तीस हाथ के विस्तार से सयुत हुआ करते है और क्रम से चार-चार की हीनता हुआ करती है ॥२६, २७, २८॥

आषोड़शादितिपरं नूतमन्तेवसायिनाम् ।
दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागोनाथ पादिकम् ॥२९
अधिकंदैर्घ्यमित्याहु ब्राह्मणादेः प्रशस्यते ।
सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु ॥३०
नृपवासगृहकाद्यं भाण्डागार तथैव च ।

सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ।।
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ।।३१।।

अन्तरप्रभवानाञ्च स्व पितु गृंहमिष्यते ।
तथा हस्तशतादर्द्धं गदितं वनवासिनाम् ।।३२
सेनापतेर्नृपरस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते ।
चतुर्दश हृतेब्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः ।।३३

पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः ।
तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता ।।३४
विप्रस्य महतीशाला न दैर्ध्यं परतोभवेत् ।
दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य न विद्यते ।।३५

षोड़श से लेकर इति पर निश्चय ही अन्तेव क्षत्रियों का भवन होता है । दशांश से—अष्ट भाग से और त्रिभाग से पादिक होता है। ब्राह्मणादि की दीर्घता अधिक प्रशस्त होती है—ऐसा कहते हैं । सेनापति और नृप के भी गृहों में अन्तर होता है ।।२९, ३०।। नृप के निवास का गृह तथा भाण्डागार दोनों का निर्माण कराना चाहिए । सेनापति का गृह और चारों वर्णों वालों का गृह अन्तर में ही होना आवश्यक है । निवास के सर्वदा राज पूज्यों में गृहा करना चाहिए ।।३१।। जिनका अन्तर में प्रभव हो उनको अपने पिता का ही गृह अभीष्ट होना चाहिए । वनवासियों का गृह सौ हाथ का आधा भाग कहा गया है ।।३२।। सेनापति का भी जो कि राजा का होता है, सप्तति (सत्तर) के सहित एव अन्वित तथा चतुर्दश व्यास के हृत होने पर शाला का कीर्तित किया गया है। उसके पञ्च त्रिंशान्वित होने पर यह आलिन्द कहा गया है । तथा छत्तीस हाथ वाली और सात अंगुलों से समन्वित विप्र की महती शाला होती है पर से उसकी दीर्घता नहीं होनी चाहिए । उसी भाँति दश अंगुल से अधिक क्षत्रिय की नहीं होती है ।।३३, ३४, ३५ ।

पञ्चत्रिंशत्करावैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश ।
तावत्करैव शूद्रस्य युतापञ्च दशाङ्गुलैः ।।३६
शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत् ।
सोष्णीषंनाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत् ।।३७
पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते ।
समन्ताद्वीथिकायत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ।।३८
शुभदंसर्वमेतत्स्या च्चातुर्वर्ण्ये चतुर्विधम् ।
विस्तरात् षोड़शो भागस्तथाहस्तचतुष्टयम् ।।३९
प्रथमोभूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात्प्रहीतते ।
द्वादशांशेनसर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ।।४०
पक्वेष्टकाभवेद्भित्तिः षोड़शांशेन विस्तरात् !
दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृन्मयभित्तिका ।।४१
गर्भमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते ।
गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ।।४२
संयूतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयाभवेत् ।
द्वारशाखा सुबाहुल्यमुच्छ्राय करसम्मितः ।।४३
अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां पृथुत्वं शस्यतेबुधैः ।
उदुम्बरोत्तमागञ्च तदर्धार्धं प्रविस्तरात् ।।४४

वैश्य की शाला पच्चीस कर विस्तृत तथा त्रयोदश अंगुल होनी चाहिए। उतने ही हाथों के विस्तार से युक्त पन्द्रह-अगुल सहित शूद्र की शाला होनी चाहिए ।।३६।। शाला के त्रिभाग से जिसके आगे एक वीथिका का होना आवश्यक है। जिसका पीछा उच्छ्रय वाला हो वह श्रेय और सोष्णीष नाम वाला वास्तु होता है। जिसके पार्श्वों में वीथिका हो उसका नाम सावष्टम्भ कहा जाता है। जिसके सब ओर वीथिका हो उसका नाम यहां पर स्थित कहा जाया करता है। चातुर्वर्णों में यह चारों प्रकार का सब शुभ देने वाला होता है। विस्तार से यह षोड़श भाग

होता है तथा चार हाथ हुआ करता है ।।३७, ३८, ३९।। प्रथम भूमिकोच्छ्राय ऊपर से हीन होता है । द्वादश अंश से सब भूमिकाओं में उसी प्रकार का उच्छ्रय होता है ।।४०।। षोड़श अंश से विस्तार युक्त पकी हुई ईटों की भिति होनी चाहिए । दारव अर्थात् काष्ठों से भी निर्मित होवे या मृन्मय भित्ति होवे ।।४१।। गर्भमास से मान सब वास्तुओं में प्रशस्त होता है । उस गृह मास पचास और अष्टादश अगुलों से संयुत द्वार विष्कम्भ होता है और द्विगुण उच्छ्रय होता है । द्वारशाखा सुवाहुल्य कर सम्मित से उच्छ्राय होता है । सब वास्तुओं का अगुलों से पृथक्त्व वुधों के द्वारा प्रशास्त माना जाता है । उदुम्वरोत्तम और आग उसके अर्ध का अर्ध विस्तार से होता है ।।४२–४४।।

११८–स्तम्भमान निर्णय वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भमान विनिर्णयम् ।
कृत्वास्वभुवनोच्छ्रायं सदासप्तगुणंबुधैः ।।१
अशीत्यंशः पृथुत्वं स्यादग्रेणावगुणैः सह ।
रुचकश्चतुरः स्यात्तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ।।२
द्विवज्रः षोड़शास्रस्तु द्वात्रिंशास्रः प्रलीनकः ।
मध्यप्रदेशे यस्तम्भो वृत्तोबृत्तइति स्मृतः ।।३
एतेपञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु ।
पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ।।४
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु ।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ।।५
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः ।
हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु ।।६

वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशे दक्षिणेन तु ।
द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अब मैं स्तम्भों के मान का विशेष निर्णय किया जाता है। अपने भुवन का उच्छ्राय करके बुधों के द्वारा सव सप्त गुण होना चाहिए ॥१। अस्सी अंश स्तम्भ का पृथुत्व होना चाहिए। अग्रभाग से अवगुणों के साथ चार वाला रुचक होता है। आठ अस्त्रों वाला वज्र–इस नाम से कहा जाया करता है। षोड़श अस्त्र वाला द्विवज्र और बतीस से संयुत प्रलीनक कहा जाता है मध्य भाग में जो स्तम्भ हुआ करता है उसको वृत्तोवृत्त इस नाम से पुकारा जाया करता है ॥२, ३॥ इस तरह से रुचक—वज्र—द्विवज्र—प्रलीनक और वृत्तोवृत्त ये पाँच महान् स्तम्भ सर्व वास्तुओं में परम प्रशस्त कहे जाते हैं। पद्मवत् लीलता कुम्भ पत्र दर्पण से रुपित हुआ करते हैं। ॥४॥ स्तम्भ का नवम अंश जो हो उसी से पद्म कुम्भ के अन्तर होते हैं। स्तम्भ के तुल्य ही तुला कही गयी है और जो हीन होती है वह उपतुला होती है ॥५॥ यहां पर सभी जगह त्रिभाग से अथवा चतुर्भाग से उसी भाँति सर्व भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन–हीन होती है। सबके निवास करने योग्य गेहों मे दक्षिण भाग से प्रवेश करने में जो द्वार हुआ करतेहैं जो कि परम प्रशस्त होते हैं उन्हीं के विषय में अब मैं वर्णन करता हूं ॥६, ७॥

पूर्वेणेन्द्रं जयन्तञ्चद्वारं सर्वत्रशास्यते ।
याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ॥८
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणञ्च प्रशस्यते ।
उत्तरेण तु भल्लाट सौम्यं तु शुभदम्भवेत् ॥९
तथावास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत् ।
द्वारे तु रथ्ययाविद्धे भवेत् सवकुलक्षयः ॥ ०
तरुणाद्वेषबाहुल्य शोकः पङ्के न जायते ।

अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ॥११
व्यथाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्नि भयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृतं भवेत् ॥१२
गृहभर्तु विनाशः स्यात् गृहेण च गृहे कृते ।
अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत् ॥१३
तथा शस्त्रमयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु ।
उच्छ्राया द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते ॥१४

पूर्व दिशा में होने वाले इन्द्र और जयन्त द्वार सर्वत्र बहुत ही प्रशस्त होते हैं । बुध लोग जो दक्षिण भाग में द्वार होता है उसे याम्य और वितथ कहा करते हैं ॥८॥ पश्चिम दिशा में होने वाले द्वार को पुष्प दन्त और वारुण कहा जाता है जो कि प्रशस्त होता है । उत्तर मे होने वाला द्वार भल्लाट और सौम्य कहलाता है यह भी शुभ के प्रदान करने वाला होता है ॥९॥ उसी प्रकार से सभी जगह पर द्वार का वेध वर्जित होना चाहिए । रथ्या से जो विद्ध वार होता है उसमें तो सम्पूर्ण कुल का क्षय हो जाया करता है अर्थात् ऐसा द्वार तो कभी भी कराना ही नहीं चाहिए ॥१०॥ तरुण से वेष का बाहुल्य होता है और पङ्क से शोक हुआ करता है । सर्वदा कूप वेध से निश्चय रूप से अपस्मार हुआ करता है । ॥११॥ प्रस्रवण से व्यथा होती है और कील से अग्नि का भय हुआ करता है। देवता के विद्ध द्वार में विनाश होता है । स्तम्भ के द्वारा स्त्रीकृत होता है ॥१२॥ गृह के द्वारा गृह के करने पर गृह का जो भर्त्ता होता है उस गृह के स्वामी का विनाश हो जाया करता करता है । अमेध्य (अपवित्र) अवस्करों के द्वारा विद्ध द्वार के होने पर गृहिणी वन्धकी हो जाया करती है । किसी अन्त्यज के गृह के द्वारा वेध होने पर शास्त्रमय जानना चाहिए या प्राप्त करे । उच्छ्राय से द्विगुणित भमि का त्याग करके वेध नहीं हुआ करता है ॥१३, १४॥

स्वयमुत्पाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् ।

स्वयंवापिहितेविद्यात् कुलनाशंविचक्षणः ॥१५
मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत् ।
द्वारोपरि च यद्द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम् ॥१६
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः ।
वज्रन्तु सङ्कटं मध्ये सद्योभर्तृ विनाशनम् ॥१७
तथान्यपीड़ितं द्वारं वहुदोषकरं भवेत् ।
मूलद्वारातथान्यत्तु नाधिकं शोभनं भवेत् ॥१८
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभि र्मूलद्वारन्तु शोभयेत् ।
पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिनाचाक्षतोदकैः ॥१९
भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ॥२०

स्वयं द्वार के उत्पादित होने पर जो गृह में निवास करने वाले होते हैं उनको उन्माद हो जाया करता है । अथवा स्वयं ही पिहित करने पर विचक्षण पुरुष को अपने कुल का नाश समझ लेना चाहिए ॥१५॥ यदि द्वार जो भी उसका मान स्वीकृत किया गया है उससे अधिक हो तो राज से होने वाला भय होता है और यदि अभीप्सित मान से न्यून हो तो तस्करों से भय रहा करता है । द्वार के ऊपर जो द्वार होता है उसको अन्तक मुख नाम वाला कहा गया है ॥१६॥ मध्य देश में जिसका अधिक विस्तार हो वह अध्वन कहलाता है । मध्य में सङ्कट वज्र होता है और वह तुरन्त ही स्वामी का विनाश करने वाला हुआ करता है । तथा अन्य से पीड़ित द्वार बहुत–से दोषों के करने वाला होता है । जो मूल द्वार होता है उससे अन्य द्वार अधिक शोभन नहीं हुआ करता ॥१७, १८॥ कुम्भ, श्रीपर्णि और वल्लियों के द्वारा मूल-द्वार को शोभित करना चाहिए । उस द्वार की नित्य ही पूजा करे तथा अक्षतोदक से अर्चन एव बलिदान करना चाहिए । भवन के पूर्व दिशा के भाग में सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले वट वृक्ष का समारोपण करना चाहिए—दक्षिण दिशा

के भाग में उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष और वारुणी दिशा में परम शुभ पीपल का वृक्ष समारोपित करना चाहिए ।।१६, २०।।

प्लक्षश्चोत्तरतोधन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये ।
कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः ।।२१
भार्य्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा ।
न च्छिन्द्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ।।२२
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाड़िमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान् ।।२३
जम्बीरपूगपनसद्रमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः ।
यन्नालिकेरकदलीदलपाटभियुक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति ।।२४

भवन के उत्तर दिग्भाग में प्लक्ष (पाखर) के वृक्ष का समारोपण करे । इस तरह से गृह की इन चारों दिशाओं में उपर्युक्त चार प्रकार के वृक्षों का समारोपण सिद्धि दायक हुआ करता है । इनके विपरीत आरोपण से असिद्धि होती है । काँटेदार क्षीर देने वाला वृक्ष और आसन सफल द्रुम होता है । उस समय में क्रम से भार्या की हानि और प्रजा की हानि हुआ करती हैं । यदि उनको दूसरों के अन्तर में शुभ वृक्षों को स्थापित करे तो फिर इनका छेदन कभी भी नहीं करना चाहिए ।।२१, २२।। पुन्नाग–अशोक–वकुल–शमी–तिलक–चम्पक–दाड़िम–पिप्पली—द्राक्षा—कुसुम मण्डप––जम्वीर—पूग––पनसद्रुम—केतकी––जाती—सरोज—शत पत्रक—मल्लिका—नालिकेर––कदली दल–पाटल इन समस्त वृक्षों के समारोहण से समन्वित होता है वह श्री का विस्तार किया करता ।।२३, २४।।

११६—भवन निर्माण वर्णन

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरंतथा ।
परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्य्यात्स्तम्भोच्छ्रायंविचक्षणः ।।१
न देवधूर्त सचिवचत्वराणां समन्ततः ।
कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः ।।२
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः ।
पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्त्तः प्रशस्यते ।।३
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा ।
सर्वकामफलोनृणां सम्पूर्णो नाम वामतः ।।४
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् ।
अथ सांवत्सरेप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ।।५
रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
चतुर्भिब्राह्मणैः स्तम्भ कारयित्वा सुपूजितम् ।।६
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगैः ।
स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ।।७
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम् ।
ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिः स्वनैः ।।८

महर्षिवर श्री सूतजी ने कहा—विचक्षण पुरुष को चाहिए कि उदगादि प्लव तथा समान शिखर वाले वास्तु की परीक्षा करके पूर्व की भाँति स्तम्भों की ऊँचाई करनी चाहिए ।। १ ।। प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपने भवन के चारों ओर देव—धूर्त—सचिव और चत्वरों का भवन नहीं बनवाना चाहिए क्योंकि इससे फिर दुःख और शोक तथा भय होता है ।। २ ।। उसके चार प्रदेश होते हैं तथा आगे की ओर उत्सर्ग परम शुभ हुआ करता है । पीछे की ओर उसका पृष्ठ भाग सव्यावर्त्त प्रशस्त होता है ।।३।। जो अपसव्य होता है वह विनाश के लिये ही हुआ

करता है । दक्षिण में शीर्षक मनुष्यों के सब कामनाओं के फल वाला हुआ करता है और वाम भाग में सम्पूर्ण होता है । इस प्रकार प्रदेश का समालोकन करके ही यत्नपूर्वक गृह के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए और वह भी साम्वत्सर प्रोक्त किसी शुभ लक्षणों वाले मुहूर्त में करे ।। ४ । ५ ।। समस्त बीजों से संयुत शिला को रत्नों के ऊपर करके चार ब्राह्मणों के द्वारा भलीभाँति अर्चित स्तम्भ का निर्माण करावे ।। ६ ।। वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा शिल्पियों के सहित शुल्क अम्बरों के धारी को स्तापित करके विन्यस्त करना चाहिए । उसी के समान सर्वोषधियों से समन्वित — नाना अक्षतों से समुपेत — वस्त्र एवं आभूषणों से युक्त करके ही विन्यास करना चाहिए । ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) वाद्य और गीत एवं माङ्गलिक ध्वनियों के द्वारा विन्यस्त करे । ।। ७, ८ ।।

पायसं भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसर्पिषा ।
वास्तोष्पतेप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ।।९
सूत्रपाते तथा कार्य्यमेवं स्तम्भोदये पुनः ।
द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ।।१०
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा ।
ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ।।११
प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम् ।
तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ।।१२
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम् ।
सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेदने ।।१३
न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः ।
न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ।।१४

फिर विप्रों को पायस का भोजन करावे और मधु और घृत के द्वारा होम करे । सर्वदा वास्तोष्पति से इस मन्त्र के द्वारा प्रतिज्ञा करे ।

उस प्रकार से सूत्रपात में करे और पुनः स्तम्भोदय के समय में भी करना चाहिए। द्वार बंश के उच्छ्रय में तथा उसी भाँति से प्रवेश के समय में करना चाहिये। उसी तरह से वास्तु के उपशमन के अवसर पर उसी तरह से वास्तु यज्ञ पाँच प्रकार का होता है। ईशान में सूत्रपात होता है—आग्नेय में स्तम्भ का रोपण होता है और वास्तु के पदविलेखन का प्रदक्षिण करना चाहिए। तर्जनी, मध्यमा तथा दक्षिण में अंगुष्ठ रक्खे। प्रबाल, रत्न, कनक फल (धतूरे का फल) को जल के साथ पीस कर सम्पूर्ण वास्तु के विभागों में पदबिलेखन करे। पद बिलेखन करने में यह परम प्रशस्त कहा गया है। वास्तु का बिलेखन कहीं पर भी भस्म-अङ्गार और काष्ठ से भी नहीं करे तथा सीग, अस्थि और कपालों के द्वारा भी पद बिलेखन नहीं करे ।।६–१४।।

एभिर्विलिखितं कुर्य्याद्दुः खशोकभयादिकम् ।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत् ।।१५
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम् ।
आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः पुरुषं यदि ।।१६
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभतुर्यदात्मनः ।
वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नशल्यं भयप्रदम् ।।१७
अङ्कनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापद भवेत् ।
तदङ्गसम्भवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षणः ।।१८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुर्विलङ्घिते ।
तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देति भैरवे ।।१९
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः ।
धनं तत्र विजनीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते ।।२०
सूत्रच्छेभवेन्मृव्याधिः कीले त्वधोमुखे ।
अङ्गारेषुतथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम् ।।२१

यदि उपर्युक्त साधनों में से किसी भी एक के द्वारा पदविलेखन किया जाता है तो इसका परिणाम बुरा हुआ करता है। और दुःख—शोक और भय आदि हुआ करते हैं। जिस समय में गृह प्रवेश होवे वहाँ पर भी शिल्पी को लक्षित करना चाहिये ।। १५ ।। स्तम्भ सूत्रादिक भी उसी भांति शुभ और अशुभ फल के प्रदान करने वाले होते हैं। यदि शकुनि सूर्य्य के सम्मुख पुरष के प्रति ध्वनि करता है और तुल्यकाल ही में गृह के स्वामी के अङ्ग का स्पर्श करता है और अपने अङ्ग को छूता है तो उसको भय प्रदान करने वाला नरशल्य जान लेना चाहिए ।।१६, १७।। अङ्कन के अनन्तर जिसमें हस्ती—अश्व और श्वापद होवे तो उसको वहाँ पर विचक्षण पुरुष अङ्ग में होने वाला शल्य समझ लेवे ।। १८ ।। सूत्र के फैलाये जाने पर वह श्वान और गोमायु के द्वारा विलङ्घित हो जावे तो उसको भी शल्य ही जान लेना चाहिए तथा भैरव में खर शब्द हो उसको भी शल्य समझ लेवे ।। १९ ।। जो ईशान कोण के दिग्भाग में वायस (कौआ) मधुर ध्वनि करता हो तो वहाँ पर उस भाग में धन का होना समझ लेना चाहिए अथवा-स्वामी के द्वारा अधिष्ठित भाग में धन जानलो ।। २० ।। सूत्र का जो कि प्रसादित किया गया है किसी भी तरह से छेदन हो जावे तो मृत्यु जान लेवे तथा कील के नीचे की ओर मुख वाली हो जाने पर व्याधि होने का ज्ञान कर लेवे। अङ्गारों के होने पर उन्माद और कपालों के हो जाने पर सम्भ्रम होना समझ लेना चाहिए ।। २१ ।।

कम्बुशल्येषु जानीयात् पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित् ।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे ।।२२
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत् ।
कुम्भापहारे सवस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत् ।।२३
मृत्युः स्थानच्युतेकुम्भे भग्नेबन्धं विदुर्बुधाः ।
करङ्ख्याविनाश तु नाशगृहपतेर्विदुः ।।२४

विजौषधिविहीनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत् ।
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यकेत्स्तम्भान्विचक्षणः ॥२५
यस्माद्भयकरं नृणां योजिता ह्यप्रदक्षिणम् ।
रक्षांकुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ॥२६
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् ।
प्रागुदक्प्रवणं कुर्य्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत् ॥२७
स्तम्भ वा भवनंवापिद्वारं वासगृहं तथा ।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यान्नच्च संवर्द्धयेद् गृहम् ॥२८

कम्बुशल्यों में वास्तु के वेत्ता को स्त्रियों के विषय में पौंश्चल्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । शिल्पी के सम्भ्रम हो जाने पर गृह के स्वामी का और गृह का भी बिनाश हो जाता है । स्तम्भ में कुम्भ क स्कन्ध से च्युत हो जाने पर शिरोरोग का होना जान लेवे । कुम्भ का यदि अपहरण ही हो जावे तो समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण ही कुल का क्षय हो जावेगा ॥ २२, २३ ॥ कुम्भ के निर्दिष्ट स्थान से च्युत हो जाने पर मृत्यु की सूचना होती है—ऐसा जान लेवे । यदि कुम्भ का भंग हो जावे तो बुध लोग उसको बन्धन का सूचक बतलाया करते हैं । करों की संख्या के बिनाश हो जाने पर गृहपति का नाश कहा करते हैं । बीजों और ओषधियों के विहीन होने पर भूतों से भय प्राप्त होने की सूचना हुआ करती है । इसीलिये विचक्षण पुरुष का कर्त्तव्य है कि उससे प्रदक्षिण में अन्य स्तम्भों का न्यास करे । जिससे मनुष्यों को भय करने वाला कुछ हो उसे अप्रदक्षिण में योजित करे और स्तम्भों को होने वाले जो उपद्रव होवें उनके विनाश करने वाली की प्रबल प्रयत्नों के साथ रक्षा करनी चाहिए ॥ २४, २५, २६ ॥ उसी प्रकार से फलों से युक्त एक शाखा को स्तम्भ के ऊपर निवेशित कर देना चाहिए । उसे पूर्व और उत्तर की ओर मुख वाली ही विनिवेशित करनी चाहिए तथा दिक् संमूढ़ उसे नहीं कराना चाहिए ॥ २७ ॥ स्तम्भ हो या भवन हो तथा

द्वार हो अथवा निवास करने का गृह हो इसमें दिङ्मूढ़ता कभी भूल कर भी नहीं करे क्योंकि दिङ्मूढ़ होने पर कुल का नाश ही हो जाया करता है और गृह को फिर वह कभी भी संवर्द्धित नहीं किया करता है ॥ २८ ॥

यदिसंवर्द्धयेद्गेहं सर्वदिक्षु विवर्द्धयेत् ।
पूर्वेण वर्द्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ॥२९
दक्षिणे वर्द्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः ।
पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारक । ३०
वर्द्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम् ।
आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत् ॥३१
वर्द्धितं राक्षसेकोणे शिशुक्षयकरं भवेत् ।
वद्ध्वापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ॥३२
ईशान्यां अन्नहानिः स्यात् वास्तौसवर्द्धितेसदा ।
ईशानेदेवतागारं तथा शान्तिगृहंभवेत् ॥३३
महानसन्तथाग्नेये तत्पार्श्वेचोत्तारेजलम् ।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैऋत्येस्थापयेद्बुधः ॥३४
वधस्थानं वहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च ।
धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो वहिः ॥
एवं वास्तु विशेषः स्यात् गृहभर्तुः शुभावहः ॥३५

यदि गृह को सवर्द्धित करे तो सभी दिशाओं में उसे विवर्द्धित करना चाहिए । पूर्व दिशा में यदि वास्तु वर्द्धित होवे तो सर्वदा वैरों को किया करता है ॥ २९ ॥ दक्षिण दिशा में वास्तु का वर्द्धन होवे तो वह निस्सन्देह मृत्यु के ही लिये हुआ करता है । पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर वास्तु विवर्द्धित होवे तो वह अर्थ के क्षय करने वाला होता है । सौम्य दिशा में वर्द्धित वास्तु बहुत अधिक सन्ताप का कारक हुआ करता है । जहां पर आग्नेय कोण में इसकी वृद्धि होती है तो वह अग्नि से

होने वाले भय को प्रदान करने वाला हुआ करता है। राक्षस कोण में बर्द्धित वास्तु शिशुओं के क्षय का करने वाला हुआ करता है। वायव्य कोण की दिशा में तन्तु को बद्ध करके भी वातजन्य व्याधि के प्रकोप को करने वाला हुआ करता है। ईशान दिशा में अन्न को हानि सदा होती है जब कि उस ओर वास्तु संवर्द्धित होता है। ईशान में देवता का आभार तथा शान्ति गृह होना चाहिये ॥ ३०, ३१, ३२, ३३ ॥ आग्नेय कोण में महानस (रसोई घर) और उसके पार्श्व में उत्तर दिशा में जल के रहने का स्थान और बुध पुरुष को नैऋत्य कोण में गृह के सभी उपस्कर स्थापित करने चाहिए अर्थात् भण्डार गृह बनाना चाहिए। बाहिरी भाग में बध का स्थान बनाना चाहिए तथा स्नान मण्डप भी बाहिर ही बनाना चाहिये। वायव्य कोण में धन-धान्य का स्थान बनावे और इससे आगे बाहिर कर्मशाला का निर्माण कराना उचित है। इस प्रकार से विशेष रूप वाला वास्तु गृह के स्वामी के लिए परम शुभ के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥ ३४, ३५ ॥

१२०–दार्वाहरण वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम् ।
धनिष्ठापञ्चके मुक्त्वा विष्ट्यादिकमतः परम् ॥१
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वन बुधः ।
प्रथमं वलिपूजाञ्च कुर्य्याद्वृक्षस्य सर्वदा ॥२
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते ।
अन्यथा न शुभं विन्द्यात् याम्योपरि निपातनम् ॥३
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत् ।
कृताधिवासं विहङ्गैरनिलानलपीडितम् ॥४

गजावरुग्णञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीड़ितम् ।
अर्द्ध शुष्कं तथा दारुभग्नशुष्कं तथैवच ॥५
चैत्यदेवालयोत्पं नदीसङ्गमजन्तथा ।
श्मशानकूपनिलयं तड़ागादिसमुद्भवम् ॥६
वर्जयेत्सवथादारुयदीच्छेद्विपुलांश्रियम् ।
तथा कण्टकिनोवृक्षान् नीपनिम्वविभीतकान् ॥७
श्लेष्मातकानाम्रतरून् वर्जयेद् गृहकर्मणि ।
आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ॥८
चन्दनं पनसन्धय सुरदारुहरिद्रवः ।
द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वाभवनं शुभम् ॥९

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम दार्वाहरण के विषय में कहता हूं । धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों को छोड़कर और इसके आगे विष्टयादि (भद्रा) को त्याग करके बुध पुरुष को साम्वत्सार से इष्ट दिन में वन में गमन करना चाहिए । सर्वदा प्रथम वृक्ष की बलि पूजा करनी चाहिए ॥१. २॥ पूर्वोत्तर दिशा में पतित गृह का दारु (काष्ठ) प्रशस्त होता है । अन्यथा याम्य दिशा में ऊपर नियातन शुभ का लाभ नहीं किया करता है । क्षीर वृक्ष से समुत्पन्न होने वाला काष्ठ कभी भी गृह में विनिवशित न करावे । पक्षियों के द्वारा अधिवास किया हुआ—अनिल और अनल से पीड़ित—गज से अवरुग्ण--विद्युत् के निर्घात से पीड़ित—अर्द्ध शुष्क—दारु के भग्न होने से शुष्क—चैत्य और देवालय में समुत्पन्न—नदियों के सङ्गम में उपजने वाला—श्मशान और कूप के निलय वाला—तड़ाग आदि में समुद्भूत होने वाला ऐसे काष्ठ को सर्वथा वर्जित कर देना चाहिए । यदि विपुल श्री के प्राप्त करने की इच्छा हृदय में होवे । काँटे वाले वृक्षों को—नीप, निम्व, विभीतकों को, श्लेष्मातकों को, आम्र तरुओं को गृह के निर्माण के कर्म में वर्जित करना चाहिए । आसन-अशोक-मधुक और सर्जशाल ये सब शुभावह होते हैं । चन्दन-

पनस परम धन्य हैं। सुरदारु और हरिद्रव इन दोनों में से एक के द्वारा अथवा तीनों के द्वारा शुभ भवन का निर्माण करना चाहिए। ॥ ३–६ ॥

बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्।
एकैव शिशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकीतथा ॥१०
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः।
स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः ॥११
एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।
तरुच्छेदे महापीतेगोधा विन्द्याद्विचक्षणः ॥१२
माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरठं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत् ॥१३
कपिले मूषकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत्।
एवंविधं सगर्भन्तु वर्जयेद्वास्तु कर्मणि ॥१४

क्योंकि बहुतों के द्वारा जो कराया जाता है वह अनेक भयों के प्रदान करने वाला होता है। एक ही शिशपा का वृक्ष परम धन्य होता है और श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी भी उसी प्रकार से परम धन्य हैं। ये अन्य से समायुक्त न होकर किसी समय में शुभ कारक होते हैं। उसी तरह से स्यन्दन—पनस—सरल—अर्जुन और पद्मक भी हैं। ये अन्य से समायुक्त न होते हुए वास्तु कार्य्य के फल के प्रदान करने वाले हैं। विचक्षण पुरुष महापीत तरु के छेदन होने पर गोधा की प्राप्ति करे। मञ्जिष्ठा के वर्ण में भेक होवे तथा नील में सर्पादि का विनिर्देश करना चाहिए। अरुण वर्ण में सरठ को जानना चाहिए। मुक्ता की आभा वाले में शुक का समादेश करे ॥१०–१३॥ कपिल वर्ण में मूषकों को जानना चाहिए। खङ्ग की आभा वाले में जल का समादेश करे। इस प्रकार के सगर्भ को वास्तु कर्म्म में वर्जित कर देना चाहिए ॥१४॥

पूर्वच्छिन्नन्तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः ।
व्यासेन गुणिते दैर्घ्यंअष्टाभिर्वैंहृते तथा ।।१५
यच्छेषमायतं विद्यादष्टभेदं वदामि वः ।
ध्वजो धूमश्च सिहश्च वृषभः खर एव च ।।१६
हस्तीध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषाभवन्त्यमी ।
ध्वजः सर्वमुखोधन्यः प्रत्यग्द्वारोविशेषतः ।।१७
उदङ्मुखो भवेत्सिहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो हस्तो सप्तभिः समुदाहृतः ।।१८
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः ।
पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तोविकोणस्थाश्चवर्जयेत् ।।१९
तमेवाष्टगुणकृत्वा करराशि विचक्षणः ।
सप्तविंशाहृतेभागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः ।।२०

शुभ निमित्त शकुनों के द्वारा पूर्व च्छिन्न को ग्रहण करना चाहिए। व्यास के द्वारा गुणित होने पर आठों से वँहृत होने पर दीर्घता होती है। उससे जो शेष है—वह आयत जानना चाहिए। मैं आपको आठ भेद बतलाता हूं—ध्वज, धूम, सिंह, वृषभ, खर, हस्ती और ध्वङ्क्ष ये पूर्वाद्या कर शेष होते हैं। ध्वज सर्वमुख धन्य होता है और विशेष रूप से प्रत्यग् द्वार होता है ॥१५, १६, १७॥ उत्तर की ओर मुख वाला सिंह होता है और पूर्व की ओर मुख से युक्त वृषभ होता है। दक्षिण दिशा के अभिमुख होने वाला हस्ती है तथा इसी प्रकार से यह सात प्रकार वाला उदाहृत किया गया है ॥१८॥ एक के द्वारा ध्वज कहा गया है—तीन के द्वारा सिंह कीर्तित किया गया है—पाँचों से वृषभ उक्त हुआ है। जो त्रिकोण में स्थित हाते हैं वे सब वर्जित माने गये हैं अतः उनको निषिद्ध मानना चाहिए। विचक्षण पुरुष को चाहिए उसी कर राशि को अठगुना करके अर्थात् आठ से गुना करके सत्ताईस से भाग समाहृत करे और उसी ऋक्ष (नक्षत्र) को जान लेना चाहिए ॥१९, २०॥

अष्टभिर्भाजितेऋक्षेयः शेषः सव्ययो मतः ।
व्यायाधिकं न कुर्वीत यतोदोषकरम्भवेत् ॥
आयाधिके भदेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ॥२१
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं ,
दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो ,
मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहंविशेत्तु ॥२२
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्-
प्रासादवास्तुशमने च विधिर्यउक्त ।
सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः ,
शुक्लाम्बरः स्वभवन प्रविशेत्सधूपम् ॥२३

आठ से भाजित करने पर जो नक्षत्र शेष होता है वह समय माना गया है । व्यय से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दोषकर होता है । भगवान् श्री हरि ने यही कहा है कि आयाधिक में शान्ति होती है ॥२१॥ इस के अनन्तर द्विज श्रेष्ठों को आगे करके दधि, अक्षत, आदल, पुष्प, फल इनसे उपशोभित पूर्ण कुम्भ को करके द्विज गणों के लिए उस समय में सुवर्ण तथा वस्त्रादि देकर मङ्गल्य शान्ति निलय के लिये गृह में प्रवेश करना चाहिए । फिर गृह्य मे वर्णित होम की विधि के साथ बलि कर्म करना चाहिए । यही प्रासाद के वास्तु का शमन करने में विधान बतलाया गया है । इसके उपरान्त भक्ष्य भोज्यों के द्वारा श्रेष्ठ द्विज गणों को संतृप्त करना चाहिए और स्वयं शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाला धूप के दान के सहित अपने भवन में प्रवेश करे ॥२२, २३॥

१२१–प्रतिमा निर्माण वर्णन

क्रियायोगः कथं सिद्ध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ।।१
क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यत् लोकेषु विद्यते ।।२
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवातार्चानुकीर्तनम् ।
देवयज्ञोत्सवञ्चापि बन्धनाद्ये न मुच्यते ॥३
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते ।
शङ्खचक्रधरंशान्तं पद्महस्तंगदाधरम् ।।४
च्छत्राकारंशिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम् ।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ।।५
क्वचिदष्टभुज विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् ।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ॥६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत ।
खड्गोगदाशरः पद्मं दिव्य दक्षिणतो हरेः ।।७

ऋषि वृन्द ने कहा—गृहस्थ आदि में क्रिया का योग किस प्रकार से सर्वदा सिद्ध होता है यह कृपया बतलाइये क्योंकि सहस्रों ज्ञान योग से कर्म योग विशिष्ट हुआ करता है ।।१।। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—मैं अब उस क्रिया योग को बतलाता हूँ जिसमें देवगण के अर्चना का अनुकीर्त्तन किया जाता है क्योंकि उससे अन्य लोकों में भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला कोई भी नहीं होता है ।।२।। सुरगणों की प्रतिष्ठायें देवताओं के अभ्यर्चन का अनुकीर्त्तन और देवयज्ञों का उत्सव भी होता है । जो ऐसे नहीं करते हैं वे बन्धन से मुक्त नहीं होते हैं । भगवान् विष्णु के विषक में मैं वर्णन करता हूं जैसा कि उनका रूप प्रशस्त कहा जाया करता है । शंख–चक्र और गदा के धारण करने वाला—परम प्रशान्त

हाथ में पद्म तथा गदा को धारण किए हुए—उनका शिर छत्र के आकार से संयुत है—कम्बु के समान ग्रीवा वाला—शुभ नेत्रों से युक्त—तुङ्ग (ऊँची) नासिका से सम्पन्न - शुक्ति के तुल्य कानों वाला—परम प्रशान्त ऊरुयुग और भुजाओं के क्रम से समन्वित—कहीं पर आठ भुजाओं से युक्त और दूसरा चार भुजाओं से युक्त एव दो भुजाओं से भी सम्पन्न उनका स्वरूप होता है। भवनों में पुरोहित के द्वारा ऐसा ही उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित उनका स्वरूप करना चाहिए। अष्ट भुजाधारी इस देव को यथा स्थान समक्ष लेना चाहिए। खड्ग—गदा—शर—दिव्य पद्म—ये सब आयुध भगवान् विष्णु के दक्षिण भाग में होने चाहिए ॥ ३–७ ॥

धनुश्च खेटकञ्चैव शङ्खचक्रे च वामतः ।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः ॥८
दक्षिणेन गदापद्मं वासुदेवस्य कारयेत् ।
वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता ॥९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते ।
यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत्॥१०
अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः ।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तंनिवेशयेत् ॥११
वामतस्तुभवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना ।
गरुत्मानग्रतोवापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता ॥१२
श्रीश्चपुष्टिश्च कर्तव्येपार्श्वयोः पद्मसंयुते ।
तोरणञ्चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम् ॥१३
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम् ।
पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम् ॥१४

धनुष—खेटक—शंख—चक्र ये चार आयुध उनके वाम भाग में रहने चाहिए। यह आठ भुजाओं के आयुधों के धारण करने का क्रम होता है।

अब चतुर्भुज भगवान विष्णु के आयुधों को धारण करने के क्रम एव संस्थिति का वर्णन किया जाता है। भगवान् वासुदेव के दक्षिण भाग में गदा और पद्म इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। वाम भाग में जो भूति के प्राप्त करने की इच्छा रखता है उस भक्त को चाहिए कि वाम भाग में शंख और चक्र इन दो आयुओं को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कृष्णावतार में गदा बाँये हाथ में ही प्रशस्त मानी गयी है। अपनी इच्छा के अनुसार ही ऊपर से शंख तथा चक्र इन दो आयुधों की कल्पना करनी चाहिए। उनके नीचे की ओर पाद के मध्य भाग में पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए और दक्षिण भाग में उसी प्रकार से प्रणति करते हुए गरुड का निवेश करना चाहिए ॥८–११॥ भगवान् के वाम भाग में पद्म हाथों में धारण करने वाली तथा परम शुभ मुख वाली लक्ष्मी देवी विराजमान होनी चाहिए। विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि भगवान् के आगे गरुड की भी संस्थापना करनी चाहिए। दोनों पार्श्व भागों में पद्मों से सयुत श्री और वुष्टि इन दोनों की सस्थापना करे। विद्याधर से संयुत ऊपर के भाग में तोरण बनावे।१२।१३। देवों की दुन्दुभि नाद वाले वाद्य से युक्त गन्धर्वों के जोडे से समन्वित—पत्रवल्ली समोपेत—सिंह और व्याघ्र से युक्त भगवान् की स्थापना वहां पर करनी चाहिए ॥१४॥

तथाकल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः।
एवंविधोभवेद्विष्णो स्त्रिभागेनास्य पीटिकाः ॥१५
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः ॥१६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम्।
त्रसरेणुः सविज्ञेयो वालाग्रन्तैरथाष्टभिः ॥१७
तदष्टकेन लिक्षा तु यूकालिक्षाष्टकैर्मता।
यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदंगुलम् ॥१८

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम् ।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना ॥१६
सौवर्णीराजतीवापि ताम्री रत्नमयी तथा ।
शैलीदारुमयीचापि लोहसघमयी तथा ॥२०
रीतिकाधातुयुक्तावा ताम्रकांस्यमयी तथा ।
शुभदारुमयीवापि देवतार्चा प्रशस्यते ॥२१

कल्पलता से संयुत तथा देवगणों के द्वारा स्तुति किये जाने वाले भगवान् विष्णु को स्थापित करे। इन विष्णु की तीन भाग से वहां पर पीठिका होनी चाहिए ॥१५॥ वह पीठिका जो है इसके समीप में नवताल प्रमाण वाले देव 'गन्धर्व और किन्नर स्थापित करे। अब इसके आगे विशेष रूप से मानोन्मान के विषय में वर्णन करता हूँ ॥१६॥ जाल के अन्तर में प्रविष्ट भानु की किरणों के द्वारा जो स्फुट रूप से रज के कण दिखलाई दिया करते हैं उनको त्रस रेणु जानना चाहिए। वे बाल के अग्र भाग के समान होते हैं। उन आठों की एक लिक्षा होती है। आठ लिक्षाओं की एक यूका मानी गयी है। आठ यूकाओं का एक यव होता है और आठ यवों का एक अंगुल हुआ करता है ॥१७, १८॥ अपने अंगुल के मान से द्वादश अंगुलों का मुख होता है। इस मुख के मान के द्वारा ही समस्त अवयवों की कल्पना करनी चाहिए ॥१९॥ भगवान् की प्रतिमाएँ सुवर्ण से—रजत (चांदी) से निर्मित होती हैं तथा ताम्र, और रत्नों के द्वारा निर्मित की हुई हुआ करती हैं। शैली अर्थात् पाषाण से-दारुमयी अर्थात् विशुद्ध काष्ठ से भी निर्माण की हुई प्रतिमाएं होती हैं और लोह संघ से पूर्ण होती हैं। रीति का अथवा धातु से युक्त—ताम्र और कांस्य के मिश्रण से निर्मित या शुभ काष्ठ के निग्रह वाली देवता की प्रतिमा की अर्चा प्रशस्त होती है ॥२०, २१॥

अंगुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥२२

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः ।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ॥ ३
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टन्तु यद्भवेत् ॥२४
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः ।
पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता ॥२५
प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत् ।
चतुरंगुला भवेद्ग्रीवाभागेन हृदयंपुनः ॥२६
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना ।
निम्नत्वेविस्तरत्वे च अंगुलंपरिकीर्तितम् ॥२७
नाभेरधस्तथामेढ़ं भागेनैकेन कल्पयेत् ।
द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरंगुले ॥२८

अपने अँगूठे के पर्व से आरम्भ करके एक वितस्ति (बिलांद या वलिश्त) पर्यन्त लम्बी और बड़ी देव प्रतिमा निर्मित करानी चाहिए। बुध पुरुषों के द्वारा इस प्रमाण से अधिक बड़ी प्रतिमा को प्रशस्त नहीं बतलाया गया है ॥२२॥ जो प्रासाद हो उसमें षोड़श से अधिक बड़ी प्रतिमा कभी नहीं करानी चाहिए। अपने वित्त के अनुसार उत्तम-मध्यम और कनिष्ट प्रतिमा का निर्माण कराना आवश्यक है ॥२३॥ द्वार के उच्छ्राय का जो मान है उसको आठ भाग करे। उनमें से एक भाग का त्याग करके जो परिशिष्ट होवे ॥२४॥ उनमें से दो भागों के प्रमाण से प्रतिमा की रचना करानी चाहिए। फिर उसके तीन भाग करके भाग से पीठिका की रचना करे। वह पीठिका न तो अत्यन्त नीची होनी चाहिए और न अधिक उच्छ्रित ही होनी चाहिए ॥२५॥ प्रतिमा के मुख मान से नौ भागों की प्रकल्पना करनी चाहिए। चार अंगुल वाली ग्रीवा होवे और फिर भाग के द्वारा हृदय की रचना होनी चाहिए ॥२६॥ उसके अर्थात् उरःस्थल के नीचे एक भाग से परम शोभन नाभि का निर्माण

करावे। उस नाभि की भिन्नता और विस्तार में अंगुल ही कीर्त्तित किया गया है। नाभि के नीचे एक भाग मे मेढ़ की रचना की कल्पना करे और दो भागों के द्वारा आयत ऊरुओं एवं चार अंगुल के प्रमाण वाले जानुओं की रचना करानी चाहिए ॥-७, २८॥

जङ्घेद्विभागेविख्यातेपादौ च चतुरंगुलौ।
चतुर्दशांगुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः॥ ६
ऊद्र्ध्वमानमिदंप्रोक्तं पृथुत्वञ्चनिबोधत।
सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः॥३०
चतुरंगुलंललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च।
द्व्यगुलन्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठः स्वांगुलसम्मितः॥३१
अष्टांगुले ललाटे च तावन्मात्रो भ्रुवौ मते।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता॥३२
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते।
अक्षिणी द्व्यंगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे॥३३
उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे।
तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्चभागिका॥३४
द्व्यंगुलन्तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथांगुलम्।
नासाग्रविस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम्॥३५

दो भागों वाले जघन विख्यात हैं और दोनों पाद चार अंगुल के मान वाले होने चाहिए। उसी भाँति चौदह अंगुल का उस प्रतिमा का मौलि कीर्त्तित किया गया है। यह इसका ऊर्ध्व मान बताया गया है अब उसके पृथुत्व को भी समझ लेना चाहिए। हे द्विजगण! समस्त अवयवों के मानों में जो भी विस्तार होता है उसका भी श्रवण कर लो॥२६॥॥३०॥ चार अंगुल का ललाट होता है उसी भाँति से ऊर्ध्व भाग में नासिका हुआ करती है। दो अंगुल का दनु (ठोड़ी) जानना चाहिए और ओष्ठ अपने अंगुल के सम्मित होते हैं? आठ अंगुल के ललाट में उतनी

मात्रा वाली ही भौंहें मानी गयी हैं। भ्रुओं के लेखा आधे अंगुल की होती हैं जो भ्रूओं के मध्य में धनुष की भाँति आनत हुआ करती है। पार्श्व भाग में वह उन्नत अग्र भाग वाली होती है तथा श्लक्ष्णा और तीक्ष्ण प्रशस्त कही जाया करती है। दो अंगुल की याम वाली दो अक्षियाँ होनी चाहिए और विस्तार में इससे आधी होवें ॥३१, ३२, ३३॥ उन्नत उदर के मध्य भाग वाली और अन्त में रक्त वर्ण से युक्त आँखें शुभ लक्षण से सम्पन्न हुआ करती हैं। तारक के अर्ध विभाग से दृष्टि पाँच भाग वाली होती है ॥३४॥ भौंहों के मध्य में दो अंगुल के प्रमाण वाला नासिका का मूल होता है और एक अंगुल नासिका के अग्रभाग का विस्तार हुआ करता है। इसी भाँति से आनन नासिका के दो पुर हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

नासापुटबिलंतद्वदर्धांगुलमुदाहृतम् ।
कपोले द्व्यंगुले तद्‌वत् कर्णमूलाद्विनिर्गते ॥३६
हन्वग्रमंगुलं तद्वद्विस्तारो द्व्यंगुलो भवेत् ।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोराजी प्रणालसदृशी समा ॥३७
अर्द्धांगुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे ।
निष्पावसदृशन्तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ॥३८
सृक्विकणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडंगुले ।
कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयौ ऊर्द्ध्वन्तु चतुरंगुलौ ॥३९
द्व्यंगुलौकर्णपाश्वौं तु मात्रामेकान्तु विस्तृतौ ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्चमस्तकं द्वादशांगुलम् ॥ ४०
ललाटात्पृष्ठतोऽर्द्धेन प्रोक्तमष्टादशांगुलम् ।
षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ॥४१
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
केशान्तात्हनुका तद्वदंगुलानि त षोडश ॥४२

नासिका के पुट का बिल उसी भाँति से आधे अंगुल का कहा गया है। दो अंगुल के प्रमाण से युक्त दोनों कपोल होने चाहिए जो कर्णमूल से विनिर्गत हुआ करते हैं ।।३६।। दनु के अग्रभाग का विस्तार दो अंगुल और वह एक अंगुल होता है। भ्रूओं की राजी आधी अंगुल वाली होती है जो प्रणाल के सदृश एवं सम हुआ करती है ।। ३७ ।। विस्तार में उसी की भाँति उत्तरोष्ठ अर्द्ध अंगुल के समान होना चाहिए। उसी तरह से निष्पाव के समान नासापुटों का दल होता है ।।३८।। कर्णों के मूल से छै अंगुल परिमाण वाली ज्योति के तुल्य सृक्किणी होनी चाहिए। और दोनों कान भ्रूद्रों के समान जानने चाहिए जो ऊर्ध्व भाग में चार अंगुल प्रमाण वाले हों ।।३९।। कर्णों के पार्श्व भाग दोनों दो अंगुल के होने चाहिए और एक मात्रा विस्तृत होवें। दोनों कानों के ऊपर मस्तक बारह अंगुल का होना चाहिए। ललाट से पृष्ठ भाग में इसके आधे भाग से युक्त कहा गया है जो अठारह अंगुल होना चाहिए। इसके शिर में होने वाला परिणाह छत्तीस अंगुल का होता है। जिसके केशों के निचय के साथ परिमणि वयालीस अंगुल का होता है। केशान्त उसी भाँति दनु का सोलह अंगुल की होती है ।।४०-४ ।।

ग्रीवा मध्यपरोणाहश्चतुर्विशतिकांगुलः।
अष्टांगुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते ।।४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा।
स्तनयारन्तरं तद्वद् द्वादशांगुलमिष्यते ।।४४
स्तनयोर्मण्डलंतद्वद्द्वयङ्गुलं परिकीर्तितम्।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौस्मृतौ ।।४५
द्वितालञ्चापि विस्तराद्वक्षन्थलमुदाहृतम्।
कक्षे षडंगुलेप्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे ।।४६
चतुर्दशांगुलौपादावङ्गुष्ठौ तु त्रियंगुलौ।
पञ्चांगुलपरोणाहमङ्गुष्ठाग तथोन्नतम् ।।४७

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी ।
तस्याः षोड़शभागेन हीयते मध्यमांगुली ॥४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते ।
पर्वत्रयेणचांगुल्यागुल्फौ द्वंचगलकौ मतौ ॥४९

ग्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अंगुल का होना चाहिए। आठ अंगुल की ग्रीवा जो होती है पृथुत्व से प्रशस्त मानी गयी है ॥४३॥ स्वयम्भू ने स्तनों और ग्रीवा का अन्तर एक ताल कहा है। दोनों स्तनों का अन्तर उसी भाँति से बारह अंगुल का होना चाहिए जो कि अभीष्ट है ॥४४॥ स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अंगुल का परिकीर्त्तित किया गया है। स्तनों के चूचुक (घुण्ड) उस मण्डल के अन्दर दोनों यव मात्र होनी चाहिए—ऐसा कहा गया है ॥४५॥ विस्तार से वक्षः स्थल भी द्विताल बताया गया है। बाहुओं के मूल में स्तनों के बीच में दोनों कक्षों का परिमाण छै अंगुल का कहा गया है ॥४६॥ चौदह अंगुल के दोनों पैर और तीन अंगुल के परिमाण से युक्त दोनों अंगुष्ठ होते हैं। पाँच अंगुल के परीणाह से युक्त एवं उन्नत अंगुष्ठ का अग्र भाग होता है। अंगुष्ठ के ही समान उसी के समान आयाम वाली प्रदेशिनी होती है। उसके सोहलवें भाग से मध्यांगुलि हीन होती है ॥४७, ४८॥ अनामिका आठ भाग से और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है। तीन पर्व से अंगुलियाँ और दोनों गुल्फ दो अंगुल के माने गये हैं ॥ ४९ ॥

पार्ष्णिर्द्व्यंगुलमात्रस्तु कलथाञ्चः प्रकीर्तितः ।
द्विपर्वांगुष्ठकः प्रोक्त परीणाहश्च द्व्यंगुलः ॥५०
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यंगुलः समुदाहृतः ।
कन्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशोद्विजाः ॥५१
अंगलेनोच्छ्रयः कार्योः ह्यंगुष्ठस्य विशेषतः ।
तदर्धेन तु शेषाणामंगुलानान्तथो छ्रयः । ५२
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अंगुलानि चतुर्दश ।

जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशांगुलः ।।५३
जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरंगुलः ।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुलप्रोक्तो मण्डलन्तु त्रिरंगुलम् ।।५४
उरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकांगुलः ।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरंगुलौ ।।५५
द्व्यंगुश्च तथामेढ्रं परीणाहः षड़ंगुलम् ।
मणिबन्धादधोविद्यात् केशरेखास्तथैव ।।५६

पार्ष्णि दो अंगुल परिमाण वाला कला से उच्च कीर्त्तित किया गया है । अंगुष्ठ दो पर्वों वाला कहा गया है और परीणाह भी दो अंगुल वाला होता है । प्रदेशिका का परीणाह तीन अंगुल वाला कहा गया है । हे द्विजगण ! कन्यसा आठ भाग से क्रम से हीन होती है । एक अंगुल का उच्छ्रय अंगुष्ठ का विशेष रूप से करना चाहिए । उसके अर्ध भाग से शेष अंगुलियों का उसी भाँति उच्छ्रय होना चाहिए ।।५०, ५१, ५२।। जङ्घाओं के अग्र भाग में चौदह अंगुलों का परीणाह होता है । जाँघों के मध्य में परीणाह उसी भाँति अठारह अंगुल का होता है ।।५३।। जानुओं के मध्य में जो परीणाह है वह इक्कीस अंगुल के परिमाण वाला है । जानुओं का उच्छ्रय एक अंगुल कहा गया है और मण्डल तीन अंगुल का होता है ।।५४।। अरुओं के मध्य में अट्ठाईस अंगुल के परिमाण से युक्त परीणाह होता है । और ऊपर इकत्तीस अंगुल का होता है । दोनों वृषण तीन अंगुल वाले हैं । दो अंगुल का मेढ़्र है तथा इसका परीणाह छै अंगुल का होता है । उसी भाँति से मणिबन्ध से नीचे केश रेखाएँ जाननी चाहिए ।।५५ ५६।।

मणिकोशपरीणाहश्चतुरंगुल इष्यते ।
विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशांगुला ।।५७
द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशांगुलौ ।
नाभिमध्य परीणाहो द्विचत्वारिंशदंगुलः ।।५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कटच्याञ्चैव तु वेष्टनम् ।
कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौप्रोक्तौ षडंगुलौ ।।५९
अष्टांगुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिर्दिशेत् ।
परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् :। ६०
आयामो भुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
कार्यन्तु बाहुशिखरं प्रमाणेषोड़शांगुलम् ।।६१
ऊद्धर्वं यद्वाहुपर्यन्त विन्द्यादष्टांगुलं शतम् ।
तथैकांगुलहीनन्तु द्वितीयं पर्वं उच्यते ।।६२
वाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशांगुलः ।
षोड़शोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कोग्रकरोमतः ।।६३

मणि कोश का परीणाह चार अंगुल का अभीष्ट होता है। उसी भाँति विस्तार से कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए ।।५७।। स्त्रियों की कटि वाईस अंगुल की होती है और दोनों स्तन बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह वयालीस अंगुल वाला अभीष्ट होता है। ।।५८।। पुरुष में पचपन और कटि में वेष्टन तथा दोनों कक्षों के ऊपर छे अंगुल के स्कन्ध बताये गये हैं। विस्तार में ग्रीवा को आठ अंगुल की विनिर्दिष्ट करनी चाहिए और परीणाह में ग्रीवा को बारह कला निर्दिष्ट करना चाहिए ।।५९, ६०।। दोनों भुआओं का आयाम उसी भाँति से वयालीस अंगुल का होना है। बाहुशिखर को प्रमाण में सोलह अंगुल का करना चाहिए ।।६१।। ऊर्ध्व भाग में वाहुपयन्त एक सौ आठ अंगुल का लाभ करना चाहिए। उसी प्रकार से एक अंगुल हीन दूसरा पर्व कहा जाता है। वाहुओ के मध्य मे अठारह अंगुल का परीणाह होना चाहिए। प्रवाहु षोड़श कहा गया है और अग्र कर षट्कला वाला माना गया है ।।६२, ६३।।

सप्तांगुलं करतलं पञ्चमध्यांगुलीमता ।
अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ।।६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ॥६५
अंगुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः ।
अंगुष्टपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरंगुलः ॥६६
शेषाणामंगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमामध्यभागन्तु अंगुलद्वयमायतम् ॥६७
यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्याः प्रहीयते ।
अंगुष्ठपर्वमध्यन्तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ॥६८
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम् ।
पर्वार्द्धे तु नखान्विद्यादंगुलीषु समन्ततः ॥६९
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः ।
निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ॥७०

सात अंगुल का करतल होता है और पाँच मध्यांगुली मानी गयी है। अनामिका, मध्यमा अंगुलि से सात भाग से हीन हुआ करती है ॥ ६४ ॥ उसके पाँच भाग से हीन कनिष्ठा कही जाया करती है। मध्यमा से हीन तर्जनी पाँच भाग से हुआ करती है। तर्जनी के मूल से नीचे उसी के समान अंगुष्ठ कहा गया है। इस अंगुष्ठ का परीणाह तो चार अंगुल का जानना चाहिए ॥ ६५ । ६६ ॥ शेष अंगुलियों का भाग से हीन होता है। मध्यमा के मध्य भाग दो अंगुल आयत वाला होता है ॥६७॥ सबका यव यव से उस–उसका प्रहयित हुआ करता है। अंगुष्ठ के पर्व का मध्य तर्जनी के ही सदृश हुआ करता है। उसी भाँति अग्रपर्व दो यव से अधिक उदाहृत किया गया है। अंगुलियों को सभी ओर पूर्वार्द्ध में नखों को जानना चाहिए ॥६८, ६९॥ अग्रभाग में थोड़ा रक्त–स्निग्ध और श्लक्ष्ण करना चाहिए। मध्य में भिन्न पृष्ठ और पार्श्व में कला से उच्छ्रित होना चाहिए ॥७०॥

तत्रैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः ।।७१
चतुर्दशांगुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् ।
नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्श्लक्ष्णभुजास्ततः ।।७२
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्वक्त्रमलकावलिरुत्तमा ।
नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धमात्रं त्रिरंगुलम् ।।७३
अध्यर्द्धांगुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकंनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् । ७४
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धांगुलोच्छ्रया ।
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च ।।
तव चालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम् ।।७५

वहीं पर केशों की वल्ली स्कन्धों के ऊपर दश अंगुल परिमाण वाली होनी चाहिए। स्त्रियों का विग्रह तनु अर्थात् कृश अङ्गों वाला करना चाहिये। इनके तो केवल स्तन ऊरु और जङ्घाएँ ही अधिक परिपुष्ट होने चाहिएँ ।।७१।। चौदह अंगुल के आयाम वाला उदर निर्दिष्ट करना चाहिये। नाना आभरणों से सम्पन्न और कुछ श्लक्ष्ण भुजाओं से युक्त स्त्रियों विग्रह होना चाहिए। कुछ दीर्घ वक्त्र होवे और उस पर उत्तम अलकों की अवली होनी चाहिये। नासा—ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल का होवे। अधर पल्लव स्त्रियों का अध्यर्द्धांगुल विस्तार से समन्वित प्रशस्त हुआ करत है। अधिक दोनों नेत्रों का युग्म चतुर्भाग से विनिर्दिष्ट करना चाहिए। अर्द्धांगुल उच्छ्रय वाली ग्रीवा की अवली करनी चाहिए। इसी प्रकार से समस्त नारियों में और देवों की सब प्रतिमाओं में रचना करानी चाहिए। आपको यह अत्यधिक लक्षण बतला दिया है। यह पापों का नाश करने वाला है ।।७२-७५।।

१२२–देवाकार प्रमाण वर्णन (१)

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः ।
दशतालः स्मृतो रामो वलिर्वैरोचनिस्तथा ॥१
वराहो नारसिंहश्च पप्ततालस्तु वामनः ।
मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा ॥२
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम् ।
स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ॥३
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटोविभुः ।
जटामुकुटधारी च द्वयष्टवर्षाकृतिश्च सः ॥४
बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डलः ।
ऊर्द्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः ॥५
व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः ।
हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ॥६
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः ।
पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलंकृतः ॥७

महामहर्षि वर श्री सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं विशेष रूप से देवों के आकार का वर्णन करूँगा। राम दशताल तथा बलि और वैरोचनि कहा गया है ॥ १ ॥ वाराह और नरसिंह और वामन सप्त ताल बताये गये हैं। स्वयम्भू ने मत्स्य और कूर्म इन दोनों को शोभा के अनुसार ही निर्दिष्ट किया है। इससे आगे रुद्रादि के उत्तम आकार को मैं बतलाऊँगा। यह पीन कुरु एव भुजाओ वाले हैं तथा उनका स्कन्ध भी पीन है एवं तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य प्रभा से वह सुसम्पन्न हैं ॥ २, ३ ॥ शुक्ल वर्ण वाले—अर्क (सूर्य) रश्मियों का सघात—चन्द्र से अङ्कित जटा वाला—विभु—जटा एव मुकुट के धारण करने वाले और सोलह वर्ष की अवस्था से युक्त पुरुष की आकृति के समान आकृति वाले है हाथी की सूँड की आभा वाली बाहुओं वाले—वृत्त जङ्घा

एवं ऊरुओं के मण्डल से युक्त—ऊर्ध्व भाग की ओर केशों वाले तथा दीर्घ एवं आयत नेत्रों वाला स्वरूप करना चाहिए। व्याघ्र के चर्म से परीधान करने वाले—कटि में तीन सूत्रों से संयुत हार, केयूर और अन्य सुन्दर आभरणों से सम्पन्न—सर्पों के आभूषणों से शोभित करे। और ऐसे वहुत—से अनेक आभरणों से विभूषित विरचित करे। पीन ऊरु गण्ड फलक वाला तथा कुण्डलों से समलंकृत बनावे ॥ ४–७ ॥

आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्ति सुशोभनः।
खेटकं वामहस्ते तु शङ्खञ्चैव तु दक्षिणे ॥८
शक्ति दण्डं त्रिशूलञ्च दक्षिणेषु निवेशयेत्।
कपालं वामपश्र्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च ॥९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।
वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः ॥१०
नृत्यन्दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।
तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोड़शैव तु ॥११
शङ्ख चक्रं गदाशार्ङ्गं घण्टातत्राधिकाभवेत्।
तथाधनुः पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा ॥१२
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः।
तीक्ष्णनासाग्रदशन करालवदना महान् ॥१३
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः।
न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयङ्करः ॥१४

जानु पर्यन्त लम्बी वाहुओं से युक्त—सौम्य मूर्ति सुन्दर शोभा से संयुत-वाम हस्त में खेटक धारण करने वाले तथा दाहिने हाथ मे शख को धारण किये हुए एवं दक्षिणों में शक्ति—दण्ड और त्रिशूल को निवेशित करना चाहिए। एक हाथ तो वर प्रदान करने वाली मुद्रा में होना चाहिए और दूसरा अक्षों के वलय वाला होवे। वैशाख स्थानक करके नृत्यों के अभिनय करने से संस्थित होना चाहिए। नृत्य करते हुए दश भुजाओं वाला एवं गज के चर्म का धारी रुद्रदेव का स्वरूप निर्मित

करे तथा त्रिपुरासुर के दाह करने में सोलहों बाहुऐं व्यस्त हों। वहाँ पर शंख—चक्र—गदा—शार्ङ्ग हों और अधि का घण्टा होना चाहिये। तथा पिनाक धनु और विष्णुमय शर होना चाहिए। चतुर्भुज अथवा आठ बाहुओं वाला ज्ञान योग के ईश्वर को माना गया है। तीक्ष्ण नासा तथा अग्र दशन वाले—कराल बदन से युक्त—महान् और प्रत्यायतन में में संस्थित भैरव लोक में परम प्रशस्त कहे गये हैं। मूलायतन में भैरव भगवान् कभी भी भयङ्कर नहीं निर्मित करना चाहिये ।। ८–१४ ।।

नारसिंह वराहोवा तथान्येऽपि भयङ्करा: ।
नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गा कर्तव्या देवता: क्वचित् ।।१५
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा ।
अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी ।।१६
कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसाधननाशिनी ।
वक्रनासा तु दुःखाय सङ्क्षिप्ताङ्गी भयङ्करी ।। ७
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी ।
दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा ।।१८
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम् ।
शुष्कवक्त्रा तु राजान कटिहीना च या भवेत् ।।१९
पाणिपादविहीनो योजायते मारकोमहान् ।
जङ्घानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी ।।२०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षस्थला तु या ।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा ।।२१

नारसिंह अथवा वराह तथा अन्य भी भयङ्कर होते हैं किन्तु कभी भी और कहीं पर भी देवों की प्रतिमाओं को अधिक अङ्गों वाली नहीं बनानी चाहिये ।। १५ ।। जो कोई देवमूर्त्ति न्यून अङ्गों वाली होती है अथवा कराल मुख से युक्त होती है वह स्वामी का घात किया करती है। जो अधिक अङ्गों वाली अथवा कृश होती है वह उसके निर्माण

करने वाले शिल्पकार का हनन किया करती है और अर्थ का विनाश करने वाली होती है ।। १५, १६ ।। जो कोई देवता की प्रतिमा कृश उदर से युक्त निर्मित कराई जावे तो वह दुर्भिक्ष करने वाली हुआ करती है तथा मांस से हीन यदि देव प्रतिमा की निर्मित कराई जावे तो उसका यह बुरा फल होता है कि यह धन का विनाश किया करती है। वक्र नासिका वाली देव प्रतिमा दुःख के ही लिये हुआ करती है। जिस प्रतिमा के अङ्ग संच्छिन्नहों तो वह भय करने वाली हुआ करती है। जो मूर्त्ति चिपिटा होती है वह दुःख ग्रौर शोक के लिये ही हुआ करती है। जिसके नेत्र नहीं होते हैं अर्थात् नेत्रों की रचना न की गई हो वह देव प्रतिमा नेत्रों के विनाश करने वाली हुआ करती है। हीन मुख वाली प्रतिमा की रचना का यह दुष्परिणाम होता है कि वह सर्वदा दुःख प्रदान किया करती है तथा हाथ और चरणों से कृश प्रतिमा हो—हीनाङ्गा—हीनजंघा हो यह मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद करने वाली हुआ करती है। शुष्क मुख वाली ग्रौर कटि से हीना जो होती है वह राजा को क्रिया करती है। पार्ष्णि और पाद से जो विहीन होकर समुत्पन्न होता है वह महान् मारक हुआ करता है। जो जंघा और जानु से विहीन होती है तो वह शत्रु के कल्याण करने वाली होती है। जो हीन वक्षःस्थल वाली होती है वह पुत्र और मित्र के विनाश के लिये हुआ करती है। जो सम्पूर्ण अवयवों से युक्त होती है वह सदा आयु और लक्ष्मी के प्रदान करने वाली होती है ॥१७–२१॥

एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः ।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्भवम् ॥२२
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम् ।
प्रणता लोकपालास्त पार्श्वे तु गणनायकाः ॥२३
नृत्यद्भृङ्गारिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः ।
सर्वेहृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम् ॥२४

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरो गुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रैर्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ॥ २५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रबालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ॥ २६

इस प्रकार से लक्षणों की प्राप्ति करके परमेश्वर की प्रतिमा की रचना करानी चाहिये। भगवान भव को इस प्रकार से दर्शित कराना चाहिए कि वह सब ओर से समस्त सुरगणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे हैं ॥२२॥ इन्दु के द्वारा—नन्दी और महाकाल के द्वारा शङ्कर की स्तुति की जा रही हो। भगवान् के पार्श्व में सब गण नायक और लोकपाल प्रणत हो रहे हों। भगवान् की प्रतिमा को इस प्रकार संनिर्मित कराना चाहिए कि उनके समक्ष में भृङ्गी और रिटि नृत्य कर रहे हों तथा भूतों और वेतालों से संवृत हों। सब परम प्रसन्न होते हुए परमेश्वर की स्तुति करने वाले हों। गन्धर्व—विद्याधर—किन्नर—अप्सरायें—गुह्यक—नायक इनके अनेक सैकड़ों गणों के द्वारा—महेन्द्रों के द्वारा—और मुनि प्रवरों के द्वारा नम्यमान होवें। सैकड़ों अक्ष सूत्रों के धारण करने वाले प्रवाल—पुष्पों के उपहार के प्रचयों के समर्पित करने वालों के द्वारा स्तूयमान—तीन नेत्रों से युक्त देवगण और मनुष्यों के परम पूज्य—ईड्य भगवान् की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। ॥ २२-२६ ॥

१२३— देवाकार प्रमाण वर्णन (२)

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् ।
अर्धेन देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् ॥१
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलयायुतः ।

उमार्धेचापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ ॥२
वासुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ।
बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणेकरे ॥
त्रिशूलं वापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥३
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलन्तु विशेषतः ॥४
वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ।
उपवीञ्च कर्तव्यं मणिमुक्तामयन्तथा ॥५
स्तनभारं तथार्धेतु वामेपीनं प्रकल्पयेत् ।
परार्घ्यमुज्ज्वलंकुर्य्याच्छ्रोण्यर्धेतु तथैव च । ६
लिङ्गार्द्धमूर्ध्वगं कुर्य्यात् व्यालाजिनकृताम्बरम् ।
वामेलम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ॥७

महामहर्षि प्रवर श्रीसूत जी ने कहा—अब परम अर्ध नारीश्वर भगवान् के विषय में कहते हैं। देवों के देव के अर्ध भाग से सुशोभन नारी का रूप है ॥ १ ॥ ईश के अर्ध भाग में जटा का भाग है और बालचन्द्र की कला से युक्त है तथा उमादेवी का जो अर्ध भाग है उससे सीमन्त और तिलक ये दोनों देने के योग्य हैं। भगवान् शिव के दक्षिण कर्ण में वासुकि सर्प शोभित हो रहे हैं और वाम कर्ण में कुण्डल धारण किया हुआ है। ऊपर में बालिका है दक्षिण कर में कपाल धारण किये हुए हैं। देवों के देव भगवान् शूली के कर में त्रिशूल धारण कराना चाहिये। वाम भाग में दर्पण और विशेष रूप से उत्पल धारण करावे। ॥ १, २, ३, ४ ॥ वामबाहु को केयूर और वलय से समन्वित करे। तथा मणि मुक्ताओं से परिपूर्ण उपवीत भी धारण कराना चाहिए ॥ ५ ॥ वाम अर्ध भाग में पीन स्तन का भार प्रकल्पित करे तथा श्रोण्यर्ध में उसी भाँति उज्ज्वल परार्घ्य को करना चाहिए। व्याल और अजिन से अम्बर करके ऊर्ध्वङ्ग लिङ्गार्ध करे तथा वाम भाग में कटि सूत्र त्रय से समन्वित लम्बे परीधान को धारण कराना चाहिए ॥२—७॥

नानारत्नसमोपेतं दक्षिणेभुजगान्वितम् ।
देवस्य दक्षिणं पादंपद्मोपरिसुसंस्थितम ॥८
कञ्चिदर्द्धे तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु ।
रत्नैर्विभूषितान् कुर्य्यादंगुलीष्वंगुलीयकान् ॥९
सालक्तक तथापादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा ।
अर्द्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ॥१०
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुतद्विजाः ।
संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ॥११
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम ॥१२
दक्षिणेनोत्पल शूलं वामेकुचभरेकरम् ।
द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ॥१३
सुप्रतिष्ठं सुवेषञ्च तथार्धेन्दुकृताननम ।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता ॥१४

दक्षिण भाग में अनेक प्रकार के रत्नों से समुपेत एवं भुजगों से युक्त शोभा को सम्पादित करे और देवों के देव का दक्षिण चरण पद्म के ऊपर संस्थित करे ॥ ८ ॥ अर्द्ध भाग में वाम को अर्थात् बांये चरण को नूपुर से समलंकृत करे रत्नों से विभूषित अंगुलीयकों को अंगुलियाँ धारण कराना चाहिए ॥ ९ ॥ सदा पार्वती देवी उस पाद को लक्तक के सहित दर्शित कराना चाहिए । जिसमें अर्ध नारीश्वर प्रभु का यह रूप उदाहृत किया गया होवे ॥ १० ॥ हे द्विजगण ! अब आप उमा महेश्वर प्रभु का भी स्वरूप एवं लक्षण का श्रवण कीजिए । उनके लीला से ललित विभ्रम वाले संस्थान को मैं सम्यक प्रकार से वर्णित करूँगा । चार भुजाओं से संयुत अथवा दो बाहु वाले रूप से समन्वित हों—जटाजूट के भार और चन्द्रमा के भूषण के सहित—तीन लोचन वाले तथा उमा के कन्धे पर एक हाथ रखते भगवान् शिव का वह रूप है जो एक

ही में उमा महेश्वर दोनों का होता है ।। ११, १२ ।। दक्षिण कर से उत्पल को ग्रहण करने वाले तथा शूल को लिये हुए और वाम कर से स्तन के भार को सम्हाले हुए—द्वीपि के चर्म का परीधान धारण करने वाले एवं अनेक रत्नों से समुप शोभित—सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त – सुन्दर वेष वाले तथा अर्ध चन्द्र से मुख को करने वाले रूप से युक्त भगवान् भव का स्वरूप है । उनके ऊरु पर वाम भाग में बाहुओं से गृहित उमादेवी विराजमान हैं ।।१३, १४।।

शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललिताननना ।
सवालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्वला ।।१५
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित् ।
हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी ।।१६
वामांसन्देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः ।
दक्षिणन्तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा । १७
स्कन्धं वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्ग लजैः क्वचित् ।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ।।१८
कटिसूत्रत्रयंच्चैव नितम्वे स्यात्प्रलम्बकम् ।
जया च विजयाचैव कार्तिकेयविनायकौ ।।१९
पार्श्वयोर्द्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान् ।
माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः ।।२०
एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्य भूतिमिच्छता ।
शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।।२१

वह देवी शिरोभूषणों से समन्वित अलकों के द्वारा अत्यन्त ललित आनन वाली हैं । बालिका (वाली) के सहित कानों से शोभित-ललाट पर तिलक धारण करने से परमोज्वल—मणियों से जटित कुण्डलों वाली—किसी समय में कर्णिका के आभरण से भूषित–हार तथा केयूरों के धारण करने से बहुल–भगवान् हर के मुख का अवलोकन करने वाली–

लीला से देवों के भी देव भगवान् शिव के वाम अंश का स्पर्श करने वाली—दक्षिण बाहु को बाहिर करके दक्षिण की ओर से दक्षिण कुक्षि में अंगुलियों से स्कन्ध का स्पर्श करती हुई श्री उमादेवी विराजमान हैं। इनके वाम हस्त में दर्पण समर्पित करना चाहिए अथवा परम शोभा से सुसम्पन्न उत्पल देना चाहिए ।। १५, १६, १७, १८ ।। उन देवी के नितम्ब भाग में कटि का सूत्र त्रय होना चाहिए तथा प्रलम्बक का होना भी अत्यावश्यक है । जया और विजया तथा स्वामी कार्त्तिकेय और विघ्न विनाशक विनायक ये सब उन महादेवी के दोनों पार्श्व भागों में वहाँ पर तोरण में गणों और गुह्यकों को दिखलावें—इसी प्रकार से माला—विद्याधरों को तथा अप्सराओं के समुदाय को दिखलाने प्रदर्शित करने चाहिये ।। १९, २० ।। जो मनुष्य वैभव की इच्छा रखने वाला है उसको चाहिए कि इस तरह का उपरिवर्णित महेश्वर भगवान् का स्वरूप बनावे । अब मैं इस प्रकार से शिव नारायण के मिश्रित स्वरूप का वर्णन करूँगा जो समस्त प्रकार के महापापों का विनाश करने वाला है ।। २१ ।।

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम् ।
बाहुद्वयञ्च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ।।२२
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम् ।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद्गदाभृतः ।।२३
शङ्खञ्चैवेतरे दद्यात् कट्यर्धं भूषणोज्ज्वलम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् । २४
दक्षिणार्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम् ।
भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिण करम् ।।२५
द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम् ।।२६
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।

शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ।।२७
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनीवामकूर्परम् ।।२८

श्री शिवनारायणात्मक स्वरूप में वाम भाग में भगवान् माधव को जानना चाहिए और दक्षिण भाग में शूल हाथ में धारण करने वाले शिव का स्वरूप समझ लेवे। भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों बाहुओं को मणियों जटित केयूरों से समलंकृत करे ।। २२ ।। भगवान् माधव का स्वरूप शंख और चक्र को धारण करने वाला हो—परम शान्त - आरक्त अंगुलों के विभ्रम से संयुत हो—अथवा भगवान् गदाधर के कर में चक्र के स्थान में गदा को ही धारण करा देवे। दूसरे कर में शंख को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कटि का अर्ध भाग भूषण से समुज्ज्वल बनावे। पीतवर्ण वाले वस्त्र का उनका परीधान करावे और मणियों से जटित भूषण से युक्त चरण प्रदर्शित करे। इस तरह से वाम भाग में रमा के ईश्वर भगवान् का स्वरूप प्रदर्शित कराना चाहिये। अब दक्षिण अर्ध भाग में भगवान् शिव के स्वरूप का प्रदर्शन होना चाहिये। वह शिव का स्वरूप जराओं के भार से युक्त है और अर्ध चन्द्र के द्वारा भूषण किये हुए हैं—भुजङ्गों क हार एवं वलय वाला है और जिस शिव स्वरूप का दक्षिण कर वर के प्रदान करने वाला है। दूसरे स्वरूप को भी करना चाहिये जो त्रिशूल वर का धारण करने वाला—व्यालों के उपवीत से समन्वित है तथा कटि का अर्धभाग कृत्ति (गज चर्म) के वस्त्र से समावृत है। मणि रत्नों के द्वारा पाद संयुक्त हैं तथा नागों से विभूषित है। इस प्रकार से शिव और नारायण के मिश्रित उत्तम स्वरूप की कल्पना करनी चाहिए। अब मैं महा वराह के स्वरूप का वर्णन करूंगा। महा वराह का स्वरूप पद्म हाथ में धारण करने वाला है—गदा के धारण करने वाला—तीक्ष्ण दंष्ट्रा से युक्त अग्र घोणा (नासिका) और आस्य (मुख) वाला है जिसके वाम कूर्पर पर मेदिनी है ।।२३—२८।।

दष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम् ।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥२९
दक्षिणं कटिसंस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् ।
कूर्मोपरि तथा पादमेक नागेन्द्रमूर्द्धनि ॥३०
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत् ।
नारसिंहन्तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ॥३१
रौद्रं सिंहासनं तद्वत् विदारितमुखेक्षणम् ।
स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तन्दितेः सुतम् ॥३२
विनिर्गतान्त्रजालञ्च दानवं परिकल्पयेत् ।
वमन्तं रुधिर घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ॥३३
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित्करणवन्धनैः ।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ॥३४
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खड्गखेटकधारिणम् ।
स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ॥३५

उस महा वराह के स्वरूप में धरणी की कल्पना भी करनी चाहिये जो दाढ़ के अग्रभाग से उद्धृत हो—उत्पलों से समन्वित हो—विस्मय से उत्फुल्ल वदन वाली हो. ऐसी धरणी की ऊपर के भाग में रचना करावे उस महा वराह की प्रतिमा का दक्षिण कर कटि पर स्थित हो—ऐसी कल्पना करे। उस महा वराह का एक चरण कूर्म के ऊपर और एक पाद नागेन्द्र के मस्तक पर स्थित होने की कल्पना करनी चाहिए ॥३०॥ सब ओर से लोकपालों के द्वारा संस्तूयमान होने वाले स्वरूप को परिकल्पित करें। नरसिंह भगवान् के शरीर को आठ भुजाओं से समन्वित कल्पित करना चाहिये ॥३१॥ उनका महान् रौद्र स्वरूप वाला सिंहासन होता है और उसी तरह से विदारित मुख एवं नेत्र होते हैं। स्तब्ध पुष्ट सराओं से युक्त कर्णों वाला वह स्वरूप होता है जो दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु के हृदय के विदीर्ण करता हुआ विद्यमान है

॥३२॥ उस दानव के आँतों का जाल विदीर्ण करने से वाहिर निकला हुआ हो ऐसा ही स्वरूप परिकल्पित करना चाहिए जो कि अत्यधिक घोर रुधिर का वमन कर रहा हो जो भृकुटि–मुख और नेत्रों से वह रुधिर निकलने वाला हो ॥३३॥ कहीं किसी स्थल पर ऐसा भी स्वरूप कल्पित किया जा सकता है जो करण बन्धनों के द्वारा युद्ध करता हुआ हो और दैत्य परिश्रान्त होकर बारम्बार तर्जन किया जाने वाला हो। युद्ध करने की अवस्था में दैत्य को खड्ग और खेटक का धारण करने वाला प्रदर्शित करना चाहिए। उस समय में यह भी प्रदर्शित करे कि अमराधिप गणों के द्वारा विष्णु स्तवन किये जा रहे हों ॥३४, ३५॥

तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम्।
पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ॥३६
अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम्।
दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीन प्रकल्पयेत् ॥३७
भृङ्गारधारिणं तद्वद्बलिं तस्य च पार्श्वतः।
बन्धनञ्चास्य कुर्वन्तं गरुडन्तस्य दर्शयेत् ॥३८
मत्स्यरूपं तथा मात्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत्।
एव रूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ॥३९
ब्रह्माकमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः।
हंसारूढः क्वचित्कार्य्यः क्वचिच्च कमलासनः ॥४०
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः।
कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ॥४१
वामेदण्डधरं तद्वत् स्तुवञ्चापि प्रदर्शयेत्।
मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्तत ॥४२

अब भगवान् त्रिविक्रम के विषय में वर्णन किया जाता है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के क्रमण करने में अत्यन्त ही उल्वण थे। पाद के पार्श्व में तथा ऊपर वाहु की कल्पना करनी चाहिए। नीचे की ओर उसी भाँति

वामन देव की कमण्डलु के सहित वर्त्तमान होने की कल्पना करनी चाहिए। उन वामन देव प्रभु के दाहिने हाथ में एक छोटा सा छत्र देवे और उनका मुख दीनता से परिव्याप्त ही कल्पित करे। उनके पार्श्व भाग में भृङ्गार के धारण करने वाले राजा बलि को प्रदर्शित करना चाहिए। वामन देव को इस दैत्यों के राजा बलि का बन्धन करते हुए ही दर्शित करना चाहिए तथा उनके समीप में ही गरुड़ को भी दिखलावे ।।३६, ३७, ३८।। वहीं पर मत्स्य रूपी मात्स्य एवं कूर्म की आकृति से युक्त कूर्म का भी न्यास करना चाहिए। इस प्रकार के स्वरूप से सुसम्पन्न भगवान् नारायण हरि का स्वरूप वहां पर करना आवश्यक है ।।३६।। चारों मुखों से युक्त कमण्डलु के धारण करने वाले ब्रह्मा जी को वहां पर दिखलाना चाहिये। किसी स्थल पर उन ब्रह्मा को हंस पर समारूढ़ और कहीं पर कमल के आसन पर विराजमान दिखलावे ।।४०।। ब्रह्मा का वर्ण कमल की आभा के सदृश—चार भुजाओं से युक्त—शुभ नेत्रों वाला—बाँये हाथ में कमण्डलु लिये हुए तथा दाहिने हाथ मे स्रुव धारण करने वाला दिखलाना चाहिये ।।४१।। उसी भाँति वाम हस्त में दण्ड को धारण करने वाला और स्तुव का धारी प्रदर्शित करे। सभी ओर मुनिगण—देवगण और गन्धर्वों के द्वारा स्तूयमान होने वाला श्री वामन देव को दिखलाना चाहिये ।।४२।।

कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन् शुक्लाम्बरधरं विभुम् ।
मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ।।४३
आज्यस्थालिं न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः ।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम् ।।४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्य्याः पैतामहेपदे ।
कार्तिकेय प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम् ।।४५
कमलोदरवर्णाभ कुमार सुकुमारकम् ।
दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ।।४६

स्थापयेतस्वेष्टनगरेभुजान्द्वादश कारयेत् ।
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वनेग्रामे द्विबाहुकः ।।४७
शक्तिः पाशस्तथा खङ्गः शूलं तथैवच ।
वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत् ॥४८
एतेदक्षिणतोज्ञेयाः केयूरकटकोज्वलाः ।
धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनो तु प्रसारिता ।।४६

श्री वामन देव का स्वरूप वहां पर ऐसा प्रदर्शित करे मानों वे तीनों लोकों की रचना कर रहे हों । शुक्ल वर्ण वाले वस्त्रों के धारी-विभु-मृग के चर्म के धारण करने वाले—दिव्य यज्ञोपवीत से सम्पन्न वामन देव के स्वरूप को दिखाना आवश्यक है । उनके समीप में आज्य की स्थाली रक्खे और चारों वेदों को भी स्थापित करे। इनके वाम पार्श्व में सावित्री देवी और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती देवी की उपस्थिति दिखानी चाहिए ।।४३, ४४।। आगे की ओर उन पितामह के पद में उसी तरह से ऋषिगण की रचना करनी चाहिये "अब हम स्वामि कार्त्तिकेय के तरुण आदित्य के समान प्रभा वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं ।।४५।। कार्त्तिकेय प्रभु का वर्ण कमल के उदर की प्रभा के तुल्य है । और वह कुमार अत्यन्त ही सुकुमार हैं कुमार का स्वरूप दण्डक एवं चीरकों से समायुक्त है एवं श्रेष्ठ मयूर के वाहन वाला है ।।४६॥ अपने अभीप्सित नगर में उनकी स्थापना करे तथा द्वादश भुजाओं की कल्पना करे। खर्वट में चार भुजाओं वाला स्वरूप-वन तथा ग्राम में दो बाहुओं वाला स्वरूप-प्रदर्शित करना चाहिये । शक्ति-पाश-खङ्ग-शर-शूल-ये आयुध हाथों में धारण करने वाला स्वरूप हो और एक हाथ वरदान देने वाला एवं एक हाथ अभय के देने वाला होना चाहिये । ये सब दक्षिण भाग में जानने चाहिये -- केयूर, कटकोज्ज्वल, धनुष, पताका, मुष्टि तथा तर्जनी प्रसारित होनी चाहिये ।।४७-४६।।

खेटक ताम्रचूडञ्च वामहस्तेतु शस्यते ।

द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ॥५०
चतुर्भुजे शक्तिपाशो वामतो दक्षिणे त्वसिः ।
वरदोभयदोवापि दक्षिणः स्यात्तुरीयकः ॥५१
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
लम्वोदरं शूर्पकर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥५२
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम् ।
स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा ॥५३
मोदकं परशुञ्चैव वामतः परिकल्पयेत् ।
वृहत्वात् क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ॥५४
युक्तन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
कात्यायन्या प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ॥५५
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् ।
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ॥५६

खेटक–ताम्रचूड़ ये दोनों वाम हस्त में प्रशस्त होते हैं। जो दो भुजाओं वाले स्वरूप के वाम हस्त में कुक्कुट के ऊपर में शक्ति धारण करावे। चतुर्भुज स्वरूप में वाम भाग में शक्ति और पाश तथा दक्षिण हाथ में असि धारण करावे वर देने वाला और अभय का दान करने वाला भी दक्षिण हाथ ही तुरीयक (चतुर्थ) होना चाहिये ॥५०, ५१॥ अब श्री विनायक के स्वरूप का वर्णन मैं करता हूं जिनका गज के समान मुख है और तीन लोचन हैं। भगवान् विनायक लम्वे उदर वाले–शूप के सदृश कर्णों से युक्त और व्यालों के यज्ञोपवीत को धारण करने वाले हैं, ध्वस्त कर्णों वाले—वृहत् तुण्ड से युक्त–एक दाँत से संयुत–पृथु (विशाल) उदर वाले हैं। यह अपने दाहिने हाथ से आस्वाद लेने वाले और दूसरे हाथ में उत्पल रखने वाले हैं ॥५२, ५३॥ मोदक और परशु का ग्रहण करना वाम हस्त से कल्पित करना चाहिये, वृहत् होने के कारण से क्षिप्त वदन वाले और पीन (परिपुष्ट) स्कन्ध–चरण और पाणि (हाथ) वाले

हैं तथा ऋद्धि और बुद्धि दोनों से युक्त हैं। इनके नीचे मूषक वाहन के रूप में स्थित है अतः उससे समन्वित हैं। इसके उपरान्त मैं भगवती कात्यायनी देवी के विषय में वर्णन करता हूं—इनका स्वरूप दो भुजाओं वाला है ।।५४, ५५।। यह देवी तीनों बड़े देवों के अनुकार का अनुकरण करने वाली हैं। इनकी भी आकृति जटा जूटों से समायुक्त है तथा अर्ध चन्द्र के द्वारा किये हुए लक्षण से युक्त है ।।५६।।

लोचनत्रयसम्पन्नां पद्मेन्दुसदृशाननाम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।।५७
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।
सुचारुदतनान्मद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ।।५८
त्रिभङ्गस्थानसस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं तथैवच ।।५९
तीक्ष्णं वाणं तथाशक्ति वामतोऽपि निबोधत ।
खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुशमेव च ।।६०
घण्टांवा परशुञ्चापि वामतः सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषन्तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।।६१
शिरच्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्ताविस्फारतेक्षणम् ।।६२
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् । ६३

कात्यायनी देवी तीनों लोचनों से सुसम्पन्न—पद्म तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली—अतसी के पुष्प के तुल्य स्वरूप से युक्त—सुन्दर प्रतिष्ठा से समन्वित एवं रुचिर लोचनों वाली हैं। नूतन यौवन से युक्त—सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित—सुन्दर दाँतों वाली ओर उसी तरह पीन एवं उन्नत पयोधरों से युक्त हैं ।।५७, ५८।। तीन भङ्गों से युक्त स्थानों के संस्थान वाली और महिषासुर के मर्दन करने वाली हैं। इनके दक्षिण

कर में त्रिशूल धारण करावे और खड्ग एवं चक्र भी देवे। तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को वाम कर में धारण कराना चाहिए। इनके अतिरिक्त वाम भाग में खेटक–पूर्णचाप–पाश–अंकुश–घण्ट –परशु ये भी सब निवेशित करने चाहिए। इन देवी के चरणों के नीचे के भाग में दो शिरों वाले महिषासुर को भी प्रदर्शित करे ।।५६, ६०, ६१।। शिर के छेदन होने से समुत्पन्न रक्त से स्वीकृत अङ्गों वाला— रक्त से विस्फारित नेत्रों से संयुत—खड्ग हाथ में धारण किये हुये उस दानव का स्वरूप दिखाना चाहिये ।।६०।। नाग पाश से वेष्टित—भ्रुकुटी से संयुत भीषण आनन वाला—बहते हुए रुधिर से युक्त मुख वाला देवी का वाहन सिंह भी देवी की प्रतिमा के साथ ही समीप में प्रदर्शित करना आवश्यक है ।। ६३ ।

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् ।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि ।।६४
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत् ।
इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः ।।६५
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम् ।
पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम् ।।६६
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम् ।
वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम् ।।६७
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम् ।
छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत् ।।६८
सिंहासनगतञ्चापि गन्धर्वगणसंयुतम् ।
इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम् ।।६९

देवी का दक्षिण पाद सिंह के ऊपर स्थित होता है उससे कुछ ऊपर वाम पाद का अंगुष्ठ महिषासुर के ऊपर समवस्थित होना चाहिए। ।।६४।। ऐसा देवी का स्वरूप अमर गणों के द्वारा संस्तूयमान होता हुआ

सन्निवेशित करना चाहिये । अब इसके उपरान्त मैं सुरराज महेन्द्र देव के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—इन्द्रदेव का स्वरूप सहस्र नयनों वाला है तथा मत्त गजेन्द्र पर समारूढ़-पृथु (विशाल) ऊरु, भुज और वक्षस्थल से समन्वित है । सिंह के समान स्कन्धों वाला—महान् भुजाओं से युक्त, किरीट एवं कुण्डलों के धारण करने वाला-पीवर ऊरु, भुजा एवं ईक्षणों वाला है । वज्र एवं उत्पल का धारी तथा उसी भाँति अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित—देवों और गन्धर्वों से पूजित—अप्सरा गणों के द्वारा सेवित इन्द्र का स्वरूप कराकर उनके पार्श्व में छत्र एवं चमरों के धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित करना चाहिए ।।६४-६८।। इन्द्र देव को सिंहासन पर संस्थित—गन्धर्व गण के द्वारा सेवित निदेशित करे और इनके वाम भाग में उत्पलों के धारण करने वाली इन्द्राणी को कल्पित करना चाहिए ।।६९।।

१२४—नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः ! ।
रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ।।१
सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथं तस्य प्रकल्पयेत् ।
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ।।२
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम् ।
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृतेसदा ।।३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत् ।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ ।।४
प्रतिहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ ।
कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ।।५
लेखनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे धातारमव्ययम् ।

नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद्दिवाकरम् ।।६
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभः ।
अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौतस्य पार्श्वयोः ।।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—हे द्विजगणो ! अब आप लोग प्रभाकर की प्रतिमा के स्वरूपादि के विषय का श्रवण करिए । सूर्यदेव को रथ में विराजमान—पद्म हाथ में धारण किये हुए एव सुन्दर लोचनों वाला प्रदर्शित करना चाहिए ।।१।। सूर्य का रथ सात अश्वों से समन्वित एवं एक चक्र वाला परिकल्पित करे । शिखर एक विचित्र मुकुट से समन्वित और पद्म के मध्य भाग के समान प्रभा वाला करे ।।२।। अनेक आभरण और भूषओं से युक्त भुजाओं के द्वारा पुष्करों को धारण करने वाले और सदा लीला से ही स्कन्धों पर पुष्करों को धारण किये हुए इन्द्र देव का स्वारूप है । कहीं पर चित्रों में चोलक से सवृत इन्द्र का स्वारूप दर्शित करना चाहिए । दोनों चरण तेज से समावृत होवें और दोनों पार्श्वभागों में दण्डी और पिङ्गल ये दोनों प्रतिहारी करने चाहिए । ये दोनों पुरुष हाथों में खड्गधारा नियोजित करने चाहिए । पार्श्व में ही हाथ में लेखनी धारण करने वाले अव्यय धाता को दर्शित करावे । इस प्रकार से नाना प्रकार के देवगणों से युक्त भगवान् भुवन भास्कर को प्रदर्शित करना चाहिये ।। ३, ४, ५, ६ ।। इस दिवाकर सारथि अरुण है जो पद्मिनी पत्र के सदृश है। इसके पार्श्वों में सुवलय ग्रीवा वाले अन्तस्थ दो अश्व होने चाहिये ।।७।।

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः ।
पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत् ।।८
वह्नेस्तु लक्षण वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् ।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ।।९
बालार्कसदृश तस्य वदनञ्चापि दर्शयेत् ।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ।।१०

कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् ।
ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहन मुज्वलम् ॥११
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।
तथ यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ॥१२
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ॥१३
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किङ्करास्तथा ।
समन्ताद्दर्शयेत्तस्यसौम्यासौम्यान्सुरासुरान् ॥१४

रश्मियों से (बागडोरों से) संयुत सात उनके अश्व हैं जो कि भुजङ्गों की रज्जुओं से बद्ध हैं । अरुण देव को पद्म पर स्थित—वाहन के ऊपर समारूढ़ और पद्म हाथ में ग्रहण करने वाले परिकल्पित करना चाहिए ॥ ८ ॥ अब वह्निदेव के लक्षण का वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओं के फल को प्रदान करने वाले हैं । इनका स्वरूप परम दीप्ति से युक्त—सुवर्ण के तुल्य वपु वाला अर्ध चन्द्र के आसन पर समवस्थित है ॥ ९ ॥ बाल सूर्य्य के सदृश इनका मुख प्रदर्शित करे । इन देव को यज्ञोपवीत धारी तथा लम्बी दाढ़ी से संयुत दिखलाना चाहिये ॥ १० ॥ इनके वाम कर में कमण्डलु—दक्षिण हस्त मे अक्षसूत्र—ज्वालाओं के वितान से संयुत और उज्ज्वल एवं अज के वाहन वाला कल्पित करना चाहिए ॥ ११ ॥ मस्तक पर सात शिखाओं से युक्त इस अग्निदेव को कुण्ड में समवस्थित करे । इसके अनन्तर दण्ड और पाश के धारण करने वाले विभु यमदेव के स्वरूप का वर्णन करूँगा ॥ १२ ॥ महान् विशाल महिष के ऊपर समारूढ़—कृष्ण अञ्जन के समुदाय के समान काले वर्ण वाला—सिंहासन पर स्थित--दीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाला यमराज का स्वरूप है ऐसा ही दर्शित करना चाहिये । महिष और चित्र गुप्त ये इस देव के परम कराल किङ्कर हैं जिनको कि इनके चारों ओर दिखावे ।

और अन्य सौम्य स्वरूप वाले असुरों को यमराज के सब ओर दिखलाना चाहिए ॥१३॥१४॥

राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च नैऋ॑तम् ।
नरारूढं महामायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ॥१५
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम् ।
नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ॥१६
वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शङ्खस्फटिकवर्णाभ सितहाराम्बरावृतम् ॥१७
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् ।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम् ॥१८
चित्राम्बरधरं शान्त युवानं कुञ्चितभ्रुवम् ।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ॥१९
कुबेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलंकृतम् ।
महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ॥२०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा ।
हारकेयूररचितं सिताम्बरं सदा ॥२१
गदाधरञ्च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् ।
नरयुक्तविमानस्थं एव वीरया च कारयेत् ॥२२

अब उसी तरह से राक्षसों के स्वामी और लोकपाल नैऋ॑त के विषय में वर्णन करूँगा। यह नर पर समारूढ़—महती माया से सम्पन्न बहुत से राक्षसों से संवृत—अत्यन्त नील वर्ण वाले—हाथ में खड्ग को धारण किये हुए—काजल के पर्वत के समान स्थित—नर से युक्त विमान में स्थित हैं तथा पीत वर्ण के आभरणों से समन्वित इनका स्वरूप होता है ॥१५॥१६॥ अब वरुण देव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—यह हाथ में पाश को धारण करने वाले—महान् बलवान्—शंख और स्फटिक मणि के वर्ण के तुल्य वर्ण वाले—श्वेत हार एवं वस्त्रों से समावृत—झष

(मत्स्य) के आसन पर स्थित—परम शान्त और किरीट तथा अङ्गदों के धारण करने वाले हैं। अब वायुदेव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वायु का वर्ण धूम्र होता है तथा मृग के वाहन पर विराजमान रहा करते हैं। इनका स्वरूप विचित्र वस्त्रों के धारण करने वाला—परम शान्त—युवावस्था में युक्त कुञ्चित भ्रूओं वाला—मृग पर समधिरूढ़—वरदान प्रदान करने वाला—पताका तथा ध्वजा से युक्त होता है—ऐसा ही इनका स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिए इसके अनन्तर कुबेर के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—यह कुण्डलों से अलंकृत होते हैं—इनका स्वरूप महान् उदर वाला—महान् काया वाला—आठ निधियों से समन्वित—बहुत—से गुह्यकों से युक्त जो कि धन के व्यय करने वाले हैं—गदा के धारण करने वाला—वर देने वाला—मुकुट से संयुत और नरों से युक्त विमान में समवस्थित होता है। इसी रीति से कुबेर के स्वरूप को प्रदर्शित करना चाहिये ।।१७-२२ ।।

तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम् ।
त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम् । ३
मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा ।।२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता ।।२५
जटा मुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा ।
कपालशूलखट्वाङ्गवपदाढ्या चतुर्भुजा ।।२६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना ।
रक्तवस्त्रधरा तवच्छूलशक्तिधरा मता ।।२७
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा ।
वैष्णवी विष्णुसदृशा गरुडे समुपस्थिता ।।२८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा ।

सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ।।२९
वाराहीञ्च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम् ।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी ॥३०

इसी प्रकार से भगवान् ईश के स्वरूप का मैं अब वर्णन करता हूँ—शिव का स्वरूप एकदम धवल होता है तथा इनके नेत्र भी श्वेत हुआ करते हैं । शिव के हाथ में त्रिशूल होता है—तीन नेत्रों से युक्त--वृषवाहन पर स्थित—ऐसे यह प्रभुदेव होते हैं--ऐसा ही इनका स्वरूप दर्शित करावे । अब इसके अनन्तर मातृगण के स्वरूप का वर्णन किया जाता है और इनके स्वरूप को यथा रीति से आनुपूर्व्यश बतलाया जाता है—यह ब्रह्माणी—ब्रह्म के सदृश—चार मुखों वाली—चार भुजाओं से युक्त हंस पर समधिरूढ़—अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से युक्त ही इनका स्वरूप बतलाना चाहिए । भगवान महेश्वर के रूप के साथ उसी भाँति माहेश्वरी को भी माना गया है । यह भी जटा और मुकुट से सयुत—वृष पर विराजमान—मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाली—चारों भुजाओं में क्रमशः कपाल—शूल—खट्वाङ्ग और वरदान रहा करते है-ऐसी ही चार भुजाओं वाली हैं ।। २३, २४, २५, २६ ।। मयूर के श्रेष्ठ वाहन कौमारी कुमार के स्वरूप मे सुसम्पन्न है—रक्त वस्त्रों को धारण करती हुई शूल और शक्ति को धारण करने वाली इनको माना गया है ।।२७।। हार तथा केयूरों के धारण करती हुई कृकवाकु धारिणी है— सिंहासन पर स्थित रहती हुई बालक से समन्वित है । चार बाहुओं वाली—बरदान प्रदान करती हुई शंख, चक्र और गदाधारिणी है । महिष पर समारूढ़--बराह के सदृश यह देवी चिरकाल तक मस्तक पर चामरों को धारण करती है ॥ २८-३० ।।

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी ।
इन्द्राणीमिन्द्रसदृशी वज्रशूलगदाधराम् ।।३१
गजासनगतां देवीं लोचनर्बहुभिर्वृताम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम् ॥३२

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् ।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ॥३३
दंष्ट्राकरालवदनां कुर्य्याच्चैव कृशोदरीम् ।
कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ॥३४
कपाल वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम् ।
मस्तिष्काक्तञ्चबिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणेकरे ॥३५
गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी ।
करालवदनातद्वत्कर्तव्या सा त्रिलोचना ॥३६

अब महिष के ऊपर विराजमाना वराह के ही तुल्य स्वरूप वाली वाराही गदा और चक्र के धारण करने वाली है और दानवेन्द्रों को उसी तरह से विनाश करती है । इन्द्र के सदृश वज्र शूल और गदा को धारण करने वाली इन्द्राणी है ॥ ३१ ॥ गज के आसन पर स्थित-बहुत से लोचनों से युक्त यह देवी होती है--तप्त सुवर्ण के समान वर्ण की आभा से युक्त - दिव्य आभरणों से समन्वित एवं विभूषित-तीक्ष्ण खड्ग को धारण करने वाली अब इस योगेश्वरी का मैं वर्णन करूँगा । यह योगेश्वरी देवी लम्बी जिह्वा वाली-उर्ध्व की ओर जाने वाले केशों से संयुत और अस्थि खण्डों से मण्डित है ॥ ३२, ३३ ॥ दंष्ट्राओं के द्वारा कराल वदन वाली इस कृश उदर से सम्पन्न देवी को दर्शित करनी चाहिए । कपाल मालिनी देवी मुण्डों की मालाओं से शोभित है । यह मांस और शोणित से परिपूर्ण कपाल को अपने बाँये हाथ में ग्रहण किया करती है तथा वह मस्तिष्क से अक्त होता है एवं दक्षिण कर में शक्ति का धारण करने वाली है । गृध्र पर स्थित-वायस पर संस्थित-बिना मांस वाली—विशेष रूप से नत उदर से युक्त—कराल मुख वाली और उसी भाँति इसके स्वरूप को तीन लोचनों वाला करना चाहिये ॥ ३४ । ३५ । ३६ ॥

चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा ।
दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ।।३७
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनी ध्वजसंयुता ।
विनायकञ्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ।।३८
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः ।
वीणाहस्तत्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ।।३९
श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवनां पीतगण्डां रक्तोष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम् ।४०
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ।।४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुण्डलालकैः ।
कञ्चुकाबद्धगात्रौ च हारभूषौ पयोधरौ ।।४२

चामुण्डा—बद्धघण्टा—द्वीपि (गज के) चर्म को धारण करने वाली अर्थात् नग्न—कालिका—रासभ (गधा) पर संस्थित—कपालों के धारण करने वाली—सुन्दर रक्त वर्ण वाले पुष्पों के आभरणों से समलङ्कृत—वर्धनी—और ध्वज से संयुत कपाल मालिनी आदि का स्वरूप होता है। मातृ गणों के समीप में सदा भगवान् विनायक को अवश्य ही समवस्थित करना चाहिए। और वीरेश्वर भगवान्—वृष पर समारूढ़—जटा जूट के धारण करने वाले—हाथ में वीणा रखने वाले—त्रिशूल धारी उन मातृगणों के आगे विराजमान होने चाहिए ।।३७, ३८, ३९।। अब हम श्री देवी के स्वरूप के विषय में वर्णन करेंगे जो कि नूतन वय में संस्थित हैं—सुन्दर योवन से सम्पन्न—पीनगण्डों वाली—रक्त ओष्ठों से संयुत—कुञ्चित भौंहों वाली—पीन एव उनन्त स्तनतट से युक्त—मणि जटित कुण्डलों के धारण करने वाली हैं। उन श्री देवी का मुख सुन्दर मण्डल वाला है तथा शिर सीमन्त भूषण युक्त है ।।४०, ४१।। पद्म, स्वस्तिक, शंखों के द्वारा अथवा कुण्डल और अलकों के द्वारा भूषित है। कञ्चुकी

से आवद्ध गात्रों वाले—हार की भूषा से भूषित श्री देवी के दोनों पयोधर हैं ॥ ४२ ॥

नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ ।
पद्मं हस्ते प्रदातव्य श्रीफलं दक्षिणे भुजे ॥४३
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ॥४४
पार्श्वतस्था: स्त्रिय: कार्य्याश्चामरव्यग्रपाणय: ।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ॥४५
करिभ्यांस्नाप्यमानासौभृङ्गाराभ्यामनेकश: ।
प्रक्षालयन्तौ करिणौभृङ्गाराभ्यांतथापरौ ॥४६
स्तूयमाना च लोकेशंस्तथा गन्धर्वगुह्यकै: ।
तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ॥४७
पार्श्वयो: कलशा तस्यास्तोरणे देवदानवा: ।
नागाश्चैव तु कर्तव्या: खड्गखेटकधारिण: ॥४८
अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वन्तु पौरुषी ।
फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वाबहव: समा: ॥४९

नाग (गज) के हस्त (सूंड) के सदृश दोनों बाहुएं हैं जो केयूर और कटक आभूषणों से समुज्ज्वल हैं। इनके हाथ में पद्म अर्पित करे तथा दाक्षिण कर में श्री फल देना चाहिए तप्त काञ्च के प्रभा वाली मेखला के आभरण से युक्त—अनेक भूषणों से सयुत–परम शोभन अम्बरों के धारण करने वाली भगवती श्री देवी का स्वरूप होना चाहिए। उनके पार्श्व भाग में चामरों से युक्त हाथों वाली स्त्रियों का नियोजन आवश्यक है। वह देवी पद्म के आसन पर उपविष्ट होवें तथा पद्मों के द्वारा निर्मित सिंहासन पर समवस्थित हैं। वह देवी करियों के द्वारा स्नाप्यमान होती हैं। अनेक बार भृङ्गारों के द्वारा क्षालन करते हुए दोनों करी हैं तथा दूसरे भृङ्गारों से क्षालन करने वाले हैं। लोकपालों के द्वारा

एवं गन्धर्व और गुह्यकों के द्वारा वह देवी स्तूयमान होती हुई प्रदर्शित करे। इसी भाँति से सिद्धों और असुरों के द्वारा निषेवित यक्षिणी को भी दिखलाना उचित होता है। उसके दोनों पार्श्व भागों में दो कलश संस्थापित होने चाहिए तथा तोरण में देव और दानवों को स्थित करे। खड्ग और खेटक के धारण करने वाले नागों की भी स्थिति करनी चाहिए। उनके नीचे के भाग में प्रकृति होवे तथा नाभि के ऊर्ध्व भाग में पौरुषी होनी चाहिए मूर्द्धा में फणा दर्शित करे और सम द्वि जिह्व (सर्प प्रदर्शित करने चाहिये ।।४६–४९।।

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः ।
निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः ।।५०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलोविकृताननः ।
दिग्वासा जटिलस्वद्ध छागगोमायुनिषेवितः ।।५१
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशैः समावृतम् ।
दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसृग्क्षयकारिणाम् ।।५२
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुज कुसुमायुधम् ।
पार्श्वे चाश्वमुख तस्य मकरध्वजसयुतम् ।।५३
दक्षिणे पुष्पवाणञ्च वामे पुष्पमयं धनुः ।
प्रीतिः स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता ।।५४
रतिश्च वामपार्श्वेतु शयनं सारसान्वितम् ।
पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा ।।५५
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च ।
सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान् कुसुमायुधः ।।
सस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद्विस्मास्मितवक्त्रकम् ।।५६।।
एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया ।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः ! ।।५७

पिशाच–राक्षस–भूत–वेताल जाति वाले–ये सब निर्मांस, रौद्र और विकृत रूप वाले होने चाहिये। जटाधारी तथा विकृत आनन वाला क्षेत्रपाल भी वहाँ पर स्थापित करके दर्शित करे जो दिशाओं के वसन वाला (नग्न) जटिल कुत्तों और गोमायु (गीदड़) आदि से ऐसा निषेवित हो कि उसके साथ रुला रहे हों। उसके वाम हस्त में कपाल हो तथा उस का शिर केशों से समावृत होवे। दाहिने हाथ में असुरों के क्षय के करने वाली शक्तिका को देवे—ऐसा ही उनका स्वरूप दिखलावे। इसके अनन्तर अब दो भुजाओं वाले कुसुमायुध कामदेव का वर्णित किया जाता है। उसके पार्श्व में मकरध्वज से संयुत अश्व मुख को संस्थित करना चाहिए ।।५०–५३।। उसके दाहिने हाथ में पुष्पों का बाण और वाम हस्त पुष्पमय धनुष होना चाहिये। उसके दक्षिण हस्त में भोजन के उपस्करों से समन्वित प्रीति होनी चाहिये। वाम पार्श्व में रति और सार सान्वित शयन–पट–पटह–खर जो काम से आतुर हो दिखाना चाहिये। उसके पार्श्व में जल की वापी और नन्दन वन दिखावे। इस प्रकार से भगवान् कुसुमायुध को सुन्दर शोभा से समन्वित प्रदर्शित करना चाहिये। कुसुमायुध के सस्थान में ईषद वक्त्र होना चाहिये और वह स्मित से युक्त मुख कल्पित करे। यह मैंने उद्देश से कुसुमायुध आदि समस्त देवों की प्रतिमाओं का लक्षण बतला दिया है। इन प्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की सामर्थ्य तो हे द्विजगण ! देवों के आचार्य बृहस्पति में भी नहीं है ।।५४–५७।।

१२५–पीठिका लक्षण वर्णन

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः ।
पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत् ।।१
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगतीमता ।

वृत्तोभागस्तथैकः स्याद्वृत्तः पटलभागतः ।।२
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्त्रिभागतः ।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ।।३
प्रविष्ट भागमेकक्कं जगतीयावदेवतु ।
निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्वै शेषपट्टिका ।।४
वारिनिर्गमनार्थन्तु तत्रकार्य्यः प्रणालकः ।
पीठिकानान्तुसर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ।।५
विशेषान् देवताभेदान् शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ! ।
स्थण्डिला वाथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला ।।६
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मावार्धशशिस्तथा ।
त्रिकोणादशमीतासांसंस्थानं वा निबोधत ।।७

महर्षि प्रवर श्री सूत जी ने कहा—अब मैं यथावत् आनुपूर्वी से पीठिका का लक्षण बतलाऊँगा । पीठिका की यथावत् ऊंचाई और इसके सोलह भागों को कराना चाहिए ।।१।। उनमें एक भाग भूमि में प्रविष्ट होवे और चार भागों के द्वारा यह जगतीतल माना गया है तथा एक भाग वृत्त होना चाहिए और वृत्त पटल ये समागत होवे ।।२।। तीन भागों के द्वारा कण्ठ—तीन भाग से कण्ठ पट्ट—दो भागों से ऊर्ध्व यह और शेष भाग से पट्टिका करे ।।३।। जितनी भी जगती है उसमें एक-एक भाग प्रविष्ट है । फिर उसका जितना निर्गम है वह शेष पट्टिका है ।।४।। जल के निर्गमन के लिये वहाँ पर प्रणालक करना आवश्यक है । समस्त पीठिकाओं का यह सामान्य लक्षण है ।।५।। हे द्विजश्रेष्ठगण ! अब विशेष देवताओं के भेदों का श्रवण करलो । स्थण्डिला—वापी—यक्षी—देवी—मण्डल—पूर्ण चन्द्रा—वज्रा—पदमा—अर्ध शशि—त्रिकोणा—दशमी है । अत्र उनके संस्थान को समझ लेना चाहिये ।।६, ७।।

स्थण्डिला चतुरस्रातु वर्जिता मेखलादिभिः ।
वापीद्विमेखला ज्ञेया यक्षीचैव त्रिमेखला ।।८

चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् ।
मण्डलावर्तुलायातु मेखलाभिर्मणप्रिया ॥९
रक्ता द्विमेखलामध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् ।
मेखलात्रयसंयुक्ता षड़स्रावज्रिका भवेत् ॥१०
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रस्वा तु मूलतः ।
तथैव धनुषाकारा सार्द्धचन्द्रा प्रशस्यते ॥११
त्रिशूलसदृशीतद्वन् त्रिकोणाह्यूर्द्ध्वतोमता ।
प्रागुदक्प्रवणा तद्वत्प्रशस्तालक्षणान्विता ॥१२
परिवेषत्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत् ।
विस्तारं तत्प्रमाणञ्च मूलेचाग्रे ततोर्द्ध्वतः ॥१३
जलमार्गं च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः ।
लिङ्गस्यार्द्ध त्रिभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता ॥१४
मेखला तात्त्रिभागेन खातञ्चैव प्रमाणतः ।
अथवा पादहीनन्तु शोभनं कारयेत्सदा ॥१५

स्थण्डिला चौकोर होती है और वह मेखला आदि से रहित ही हुआ करती है। वापी की दो मेखलाएँ होती हैं तथा यक्षी की तीन मेखलाएँ बताई गयी हैं। वेदी चतुरस्रायता होती है और लिङ्गों से योजित नहीं करनी चाहिये। मण्डला जो होती है वह वर्त्तुला होती है मेखलाओं से मणप्रिया है ॥८, ९॥ जो दो मेखलाओं के मध्य में रक्ता है वह ही पूर्ण चन्द्रा होती है। तीन मेखलाओं से संयुक्त छः कोणों वाली वज्रिका होती है। षोड़श अस्रों वाली पद्मा कही जाती है। जो मूल से कुछ ह्रस्व होती है तथा धनुष के आकार वाली होती है वह सार्ध चन्द्रा प्रशस्त कही जाती है। उसी तरह से त्रिशूल के सदृश त्रिकोणा ऊर्ध्व भाग से मानी गयी है। उसी भाँति से प्राक् और उदक् की ओर जो प्रवणा होती है वह लक्षणों से अन्वित प्रशस्त कही जाती है। वहां पर परिवेष निर्गम तीन भागों से कराना चाहिए। विस्तार और उसका

प्रमाण सूत्र में—अग्रभाग में और ऊर्ध्व में होता है ॥१०–१३॥ जल का भाग तीन भाग से परम शोभन करना चाहिए। लिङ्ग के अर्ध विभाग से स्थूलता से समधिष्ठित उसके तीन भाग से और उसकी खुदाई के प्रमाण से अथवा सदा एक पाद से हीन शोभा से युक्त मेखला करानी चाहिए। ॥१४, १५॥

उतरस्थं प्रणालञ्च प्रमाणादधिकारयेत् ।
स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यञ्च पुष्कलम् ॥१६
गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी सपत्प्रदाभवेत् ।
मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदापूर्णचन्द्रीका ॥१७
आयुःप्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत् ।
पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणशत्रुनाशिनी ॥१८
देवस्य यजनार्थन्तु पीठिकादश कीर्तिताः ।
शैले शैलमयींदद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा ॥१९
दारुजे दारुजां कुर्यात् मिश्रेमिश्रांतथैवच ।
नान्ययोनिस्तुकर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः ॥२०
अर्च्चायामासमन्दैर्ध्यं लिङ्गायामसमन्तथा ।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत् ॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षलम् ॥२१

उत्तर की ओर स्थित प्रणाल प्रमाण से अधिक कराना आवश्यक होना चाहिए। स्थण्डिला में आरोग्य धन तथा धान्य पुष्कल होता है ॥१६॥ यक्षी गौओं के प्रदान कराने वाली हुआ करती है और वेदी सम्पत्ति के देने वाली होती है। मण्डला में कीर्त्ति का विस्तार होता है तथा पूर्ण चन्द्रिका वरदान का प्रदान कराने वाली हुआ करती है ॥१७॥ वज्रा नाम वाली का फल आयु की वृद्धि होता है और पद्मा परम सौभाग्य के प्रदान करने वाली हुआ करती है। जो अर्ध चन्द्रा है वह पुत्र देने वाली हुआ करती है और त्रिकोण से युक्ता का फल शत्रुओं का विनाश करना

होता है ।।१८।। इस प्रकार से देवों के यजन करने के लिए पीठिका दश तरह की कीर्त्तित की गयी है । शैल में शैलमयी ही पीठिका देनी चाहिये और पार्थिव में पार्थिवी देवे। जो दारु (काष्ठ) से जात हो वहां पर दारुजा करे तथा मिश्रित होवे तो पीठिका भी मिश्रा ही करनी चाहिये। जो शुभ फल की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनको चाहिये कि पीठिका अन्य योनि की कभी भी न करें और जैसी होवे वैसी ही सदा पीठिका की रचना करावें ।।१६।। अर्चा में आसम दैर्घ्य तथा लिङ्गा में असम करे। जिस देव की जो पत्नी होवे उसको पीठ पर परिकल्पित करना ही चाहिए। यह सब संक्षेप से हमने पीठका लक्षण बतला दिया है ।। २० ।।

१२६—लिङ्ग लक्षण वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम् ।
सुस्निग्धञ्च सुवर्णञ्च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः ।।१
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते ।
लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ।।२
चतुरस्रे समेगर्त्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत् ।
वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्च्चा वा लिङ्गमेव च ।।३
प्रागुत्तरेण लीनन्तु दक्षिणा परयाश्रितम् ।
पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत् ।।४
पूर्वेणचापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम् ।
द्वारं विभज्य पूर्वन्तु एकविंशतिभागिकम् ।।५
ततो मध्यगतज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत् ।
तस्यार्द्धन्तु त्रिधाकृत्वा भागञ्चोत्तरतस्त्यजेत् ।।६
एव दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थान प्रकल्पयेत् ।
भागार्द्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यन्तदिह शस्यते ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब इसके अनन्तर मैं लिङ्ग का उत्तम लक्षण बतलाता हूँ। विचक्षण पुरुष को सुस्निग्ध और सुवर्ण लिङ्ग करना चाहिए ॥१॥ प्रासाद के प्रमाण से ही लिङ्ग के मान का विधान किया जाता है अथवा लिङ्ग के मान से ही प्रासाद शुभ लक्षण से युक्त माना जाया करता है ॥२॥ चतुरस्त (चौकोर) समगर्त्त में ब्रह्मसूत्र का निपात करना चाहिए। ब्रह्मसूत्र के वाम भाग से अर्च्या अथवा लिङ्ग होता है ॥३॥ पूर्व और उत्तर में लीन दक्षिणा परयाश्रित पुर के अमर दिग्भाग में पूर्व द्वार को परिकल्पित करना चाहिये ॥४॥ पूर्व से अपर द्वार माहेन्द्र दक्षिणोत्तर द्वार का विभाजन करके पूर्व को एक विंशति भागित करे। फिर मध्यगत का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म सूत्र को प्रकल्पित करना चाहिए। भाग के अर्घ से जो लिङ्ग हो वह ही यहां पर करना चाहिए और यही प्रशस्त कहा जाता है ॥५, ६, ७॥

पञ्च भागविभक्त वा त्रिभागे जैष्ठचमुच्यते ।
भाजिते नवधागर्भे माध्यमं पाञ्चभागिकम् ॥८
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत् ।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम् ॥९
ज्येष्ठमर्द्धकनीयोऽर्द्धं तथामध्यममध्यमम् ।
एवंगर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ॥१०
ज्येष्ठन्तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमन्त्रिविधन्तथा ।
कन्यसं त्रिविधं तद्वत् लिङ्गभेदा नवैव तु ॥११
नाभ्यर्द्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः ।
भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भञ्चतुरस्रकम् ॥१२
अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिङ्गस्य वै ध्रुवम् ।
विकीर्णे चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः ॥१३
अष्टास्रं कारयेत्तद्वदूर्द्ध्वमप्येवमेव तु ।
षोड़शास्रीवृतं पश्चाद्वर्तुलं कारयेत्ततः ॥१४

पाँच भाग में विभक्त में अथवा त्रिभाग में जेष्ठ्य कहा जाता है। गर्भ में नौ प्रकार से भाजित करने पर पाञ्ज भागिक माध्यम होता है। एक ही में नौ प्रकार से गर्भ में लिङ्गों को कराना चाहिये। सम सूत्र का विभाजन करके इसके अनन्तर नौ प्रकार से गर्भ भाजित करे ॥८, ९॥ अर्ध ज्येठ–अर्धकनीय तथा मध्यम होता है। इस प्रकार से गर्भ का समाख्यान किया गया है। तीन भागों से विभाजन करना चाहिए। लिङ्ग के भेद नौ हुआ करते हैं—तीन प्रकार का ज्येष्ठ जानना चाहिये इसी तरह से मध्यम भी तीन प्रकार का है और तद्वत् कन्यस तीन तरह का होता है। लिङ्ग के नौ प्रकार के भेद हुआ करते हैं ॥१०, ११॥ नाभि के अर्ध भाग को अष्ट भाग से विभाजित करके इसके अनन्तर बुध पुरुषों को चाहिए कि सम तीन भागों का परित्याग कर देवें। यह चतुरस्रक विष्कम्भ होता हैं। आठ अस्र वाला मध्यम जानना चाहिये जो कि लिङ्ग का निश्चित भाग होता है। यदि विकीर्ण हो तो उससे ग्रहण करके बुध पुरुष को कोणों से लाञ्छित करना चाहिए ॥१२, १३॥ अष्टास्र करना चाहिये। उसी भांति ऊर्ध्व को भी करावे। पीछे षोड़शा स्रीकृत को वर्त्तुल कराना चाहियें ॥१४॥

आयाम, तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम् ।
माहेश्वरं त्रिभागन्तु ऊद्र्ध्ववृत्तं त्ववस्थितम् ॥१५
अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रोविधीयते ।
अष्टास्रोवैष्णवोभागो मध्यस्तस्यउदाहृतः ॥१६
एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गवृद्धिप्रदम्भवेत् ।
तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ॥१७
गभमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचित भवेत् ।
चतुर्धातद्विभज्याथ विष्कुम्भन्तु प्रकल्पयेत् ॥१८
देवतायतने सूत्रं भागत्रयविकल्पितम् ।
अधस्ताच्चतुरस्रन्तु अष्टास्रं मध्यभागतः ॥१९

पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते ।
आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ।।२०
चतुरस्रार्द्धं परित्यज्य अष्टास्रस्यतु यद्भवेत ।
तस्याप्यर्द्धंपरित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत् ।।२१

उस देव के आयाम नाभि में कुण्डली कृत है। माहेश्वर तीन भाग ऊर्द्धवृत्त अवस्थित है ।। १५ ।। नीचे की ओर ब्रह्मभाग चतुरस्र (चौकोर) विहित किया जाता है। अष्टास्र वैष्णव भाग उदाहृत कर दिया गया है। इस प्रकार से प्रमाण से संयुक्त लिङ्ग वृद्धि का प्रदान करने वाला होता है। उसी तरह से और भी गर्भमान प्रमाण से बतलाऊँगा ।। १६ ।। १७ ।। गर्भमान के प्रमाण से जो लिङ्ग उचित होवे उसको चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ को प्रकल्पित करे ।।१८ ।। देवता के आयतन में सूत्र को तीन भागों में विशेष रूप से कल्पित करे। नीचे की ओर चतुरस्र–मध्यभाग में अष्टास्र इससे आधा पूज्य भाग है तथा वह नाभिभाग कहा जाया करता है। अयाम में नाह के चतुरस्रक में आयाम मे जो सूत्र होता है उस चतुरस्रार्ध का परित्याग कर देवे और जो अष्टास्र होता है उसके भी अर्धभाग का परित्याग करके इसके पश्चात् फिर वृत्त को कराना चाहिये ।।१९।।२०।।२१।।

शिरः प्रदक्षिणं तस्य संक्षिप्तं मूलतोन्यसेत् ।
ज्येष्ठपूज्यं भवेल्लिङ्गमधस्ताद्विपुलञ्च यत् ।।२२
शिरसा च सदानिम्नंमनोज्ञंलक्षणान्वितम् ।
सौम्यन्तु दृश्यते लिङ्गन्तद्वैवृद्धिप्रद भवेत् ।।२३
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणेसर्वतः समम् ।
एवम्विधन्तु यल्लिङ्गं भवेत्तत्सार्वकामिकम् ।।२४
अन्यथा यद्भवेल्लिङ्गं तदसत्सम्प्रचक्षते ।
एवंरत्नमयंकुर्यात् स्फाटिकं पार्थिव तथा ।।२५
शुभं दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ।। २६

उसका संक्षिप्त प्रदक्षिण शिर मूलसे व्यास करना चाहिए। जो नीचे की ओर विपुल है वह ज्येष्ठ पूज्य लिङ्ग होना चाहिये ॥२२॥ सदा शिर से निम्न एवं मनोज्ञ लक्षणान्वित होता है। जो सौम्य लिङ्ग दिखलाई देता है वह निश्चित रूप से वृद्धि के प्रदान करने वाला होता है। इसके अनन्तर मूल में-मध्य में और प्रमाण में सभी ओर से सम है। इस प्रकार का लिङ्ग है वह सर्वकारिक होता है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार का जो लिंग होता है वह असत् ही कहा जाता है। इस रीति से इसको रत्नों से परिपूर्ण—स्फटिक मणि के द्वारा रचित तथा पार्थिव करना चाहिये अथवा मन को रुचिकर हो तो दारुमय भी परम शुभ होता है। ॥२३-२६॥

१२७-देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
वद सूत ! यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः ॥१
अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम् ।
कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम् ॥२
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा ।
माघेवासर्वदेवानांप्रतिष्ठाशुभदाभवेत् ॥३
प्राप्यपक्षं शुभंशुक्लमतीते दक्षिणायने ।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ॥४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी ।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृत्वा बहुफला लभेत् ॥५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च ।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वभाद्रपदा तथा ॥६

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरस्तथा ।
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ।।७

ऋषिगण ने कहा--हे श्री सूतजी ! अब इस सबके कथन के अनन्तर आप जो भी उचित हो पूर्ण रूप से इन समस्त देवों की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करिये ।। १ ।। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम प्रतिष्ठा की विधि के विषय में मैं वर्णन करता हूँ और कुण्ड--मण्डप तथा वेदियों का भी यथा क्रम प्रमाण बतलाऊँगा ।। २ ।। चैत्र में, फाल्गुन में, ज्येष्ठ में)अथवा माधव में या माघ मास में सब देवों की प्रतिष्ठा शुभ देने वाली होती है ।। ३ ।। दक्षिणायन के समाप्त होने पर परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके पञ्चमी, द्वितीया, तृतीय, सप्तमी, दशमी, पौर्णमासी और त्रयोदशी ये तिथियाँ परम श्रेष्ठ होती हैं । इन तिथियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करने पर वह बहुत अधिक फल का लाभ किया करता है । अब नक्षत्रों के विषय में बतलाया जाता है -दोनों आषाढ़ा-मूल, दोनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वा भाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रैवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि कार्यों में प्रशस्त माने जाया करते है ।।४-७।।

बुधोबृहस्पतिः शुक्रस्त्रयाऽप्येते शुभग्रहाः ।
एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ।।८
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च ।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ।।९
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रह विवर्जिते ।
लग्नेऋक्षेप्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ।।१०
अयने विषुवे तद्वत् षड़शीतिमुखे तथा ।
एतेषु स्थापनंकार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ।।११
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापन तथा ।
मुहूर्तस्थापनंकुर्यात् पुनर्वाह्ये विचक्षणः ।।१२

प्रासादस्योत्तरेवापि पूर्वेवा मण्डपो भवेत् ।
हस्तान् षोड़शकुर्वीतदशद्वादश वा पुनः ॥१३
मध्येवेदिकयायुक्तः परिक्षिप्तः समन्ततः ।
पञ्चसप्तापि चतुरः करान् कुर्वीतवेदिकाम् ॥१४

बुध, बृहस्पति और शुक्र ये तीनों ग्रह परम शुभ होते हैं। इ ग्रहों के द्वारा देखी गई लग्न और नक्षत्र प्रशस्त कहे जाया करते हैं ॥८॥ ग्रह और ताराओं का बल प्राप्त करके तथा ग्रहों की पूजा करके एवं निमित्त और शकुन पाकर तथा अद्भुत आदि को वर्जित करके शुभ योग में—शुभ स्थान में क्रूर ग्रहों से विवर्जित लग्न में तथा नक्षत्र में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कर्म को करना चाहिए ॥ ९, १० ॥ बिषुव अयन में उसी भाँति षडशीति मुख में विधि के द्वारा इष्ट कर्म्म से इनमें ही स्थापना करनी चाहिए ॥ ११ ॥ प्रजापत्य में शयन तथा श्वेत में उत्थापन बिचक्षण पुरुष को पुनर्वाह्य मुहूर्त में स्थापन करना चाहिए ॥ १२ ॥ प्रासाद के उत्तर भाग में अथवा पूर्व भाग में मण्डप होना चाहिए। वह भी दश हाथ या द्वादश हाथ अथवा सोलह हाथ का बिस्तृत बनाना चाहिए ॥ १३ ॥ मध्य में वेदी से युक्त तथा चारों ओर से परिक्षिप्त होना चाहिये। वेदी भी पाँच सात और चार हाथ बिस्तार वाली निर्मित करावे ॥ १४॥

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः ।
प्लक्षद्वारंभवेत्पूर्वं याम्येचौदुम्बरं भवेत् ॥१५
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे ।
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानिचोच्छ्रये ॥१६
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्ण भूतलं स्यात् सुशोभनम् ।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ॥१७
कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् ।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ॥१८

चूतपल्लवसंच्छन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् ।
सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ॥१९
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः ।
ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ॥२०
ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
पताकाजदाकारामध्येस्यान्मडपस्यतु ॥२१

मण्डप चार मुखों वाला चार तोरणों से युक्त होना चाहिये। पूर्व द्वार में प्लक्ष (पाखर) वृक्ष वाला होना चाहिए। दक्षिण द्वार में उदुम्बर का वृक्ष होना चाहिए। पश्चिम दिशा में जो द्वार हो वह अश्वत्थ (पीपल) से युक्त एवं घटित होना चाहिए तथा उत्तर दिशा में न्यग्रोध (वट) का वृक्ष होना चाहिए भूमि में एक हाथ प्रविष्ट और ऊँचाई में चार हाथ होना आवश्यक है। भूमि का भाग अच्छी तरह से उपलिप्त–श्लक्षा एगं शोभन होना आवश्यक है। नाना प्रकार के वस्त्रों के द्वारा भूषित–पुष्प और पल्लवों से शोभित पहिले मण्डप की रचना कराकर फिर इस प्रकार से चारों द्वारों में विन्यास करना चाहिए अर्थात् व्रण से रहित–ज्वलत्काञ्चव अर्थात् देदीप्यमान सुवर्ण जिनके मध्य में प्रक्षिप्त किया गया हो ऐसे आठ कलशों का प्रत्येक द्वार पर दो-दो विन्यस्त करे ॥ १५, १६, १७, १८ ॥ आम्र के पल्लवों से संच्छन्न–श्वेत दो वस्त्रों से समन्वित—सर्वौषधि एगं फलों से उपेत—चन्दन के जल से पूरित आठ कलशों को वहाँ पर निवेषित करके उनके मध्य में गन्ध—धूप और अर्चन आदि से संयुत करके मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि से उसे सुशोभित करना चाहिए ॥ १९, २० ॥ समस्त दिशाओं में लोकपालों की ध्वजाओं को निवेशित करना चाहिए। मण्डप के मध्य भाग में जलद के आकार वाली पताकाऐं होनी चाहिए ॥२१॥

गन्धधूपादिकंकुर्यात् स्वैस्वैर्मन्त्रैरन्क्रमात् ।
बलिञ्चलोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ॥२२

ऊर्द्ध्वन्तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुके: ।
संहितायान्तु ये मन्त्रा तद्दैवत्या: श्रुतौ स्मृता: ।।२३
तै: पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्तत: ।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा ।।२४
अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम् ।
एवं सतोरणंकृत्वा अधिवासनमुत्तमम् ।।२५
तस्याप्युत्तरत: कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम् ।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुन: ।।२६
आनीय लिङ्गमर्च्चां वा शिल्पिन: पूजयेद्बुध: ।
वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारका: ।।२७
क्षमध्वमितितान् ब्रूयाद्यजमानोऽप्यत: परम् ।
देवं प्रस्तरणेकृत्वा नेत्रज्योति: प्रकल्पयेत् ।।२८

ऋतुक्रम से अपने २ मन्त्रों के द्वारा गन्ध—धूप आदि सब करना चाहिये । अपने मन्त्रों से लोकपालों के लिये बलि निवेदित करे ।। २२।। ऊपर की ओर ब्रह्माजी को बलि समर्पित करे और नीचे की ओर शेष तथा वासुकि को बलि देनी चाहिए । जो मन्त्र संहिता में हैं वह दैवती की श्रुति में कहे गये हैं ।। २३ ।। उनसे ही सभी ओर लोकपालों की पूजा करनी चाहिए । तीन रात्रि तक—एक रात्रि पञ्च रात्रि अथवा सप्त रात्रि पर्यन्त अधिवासन करना चाहिए । इस प्रकार से सतोरण उत्तम अधिवासन करके उसके भी उत्तर में उत्तम स्नान मण्डप की रचना करनी चाहिए । उनके अर्धभाग से—तीन भाग से अथवा चार भाग से लिङ्ग को लाकर अथवा अर्चा को लाकर बुध पुरुष को शिल्पी की पूजा करनी चाहिए । जो भी उनके परिचारक हों उनकी भी वस्त्र—आभरण और रत्नों से पूजा करे । उसके आगे देव के समक्ष में यजमान को 'क्षमा कीजिए'—ऐसा बोलना चाहिये और फिर देव को प्रस्तरण पर करके नेत्रों की ज्योति की परिकल्पना करे ।।२४—२८।।

अक्षणोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः ।
सर्वतस्तु बलिं दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसै ।।२९
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम् ।
विप्राणाञ्चार्चनं कुर्य्याद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ।।३०
गां महीं कनकञ्चैव स्थापकाय निवेदयेत् ।
लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः ।।३१
ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने ।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ।।३२
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिषापि स्मृतः ।
एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत् ।।३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम् ।
वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ।।३४
लक्षणोद्धरण वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः ।
त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षण स्याद् विभाजकम् ।। ३५

अब मैं नेत्रों का और संक्षेप से लिंग का भी उद्धरण बतलाऊँगा । सभी ओर सिद्धार्थघृत और पायसों से वलि होनी चाहिए । शुक्ल वर्ण वाले पृष्पों से अलंकृत करके घृत और गूगल से घूपित करना चाहिये । फिर वहां पर जो भी विप्रगण हों उनका भी अभ्यर्चन करे तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये ।। २९ ।। ३० ।। जो स्थापक हो उसको गौ—भूमि और सुवर्ण को निवोदित करे । द्विज को चाहिये कि भक्ति की भावना से निम्न मन्त्र के द्वारा लक्षण कराना चाहिये । "ओंनमः" इत्यादि मन्त्र है जिस का अर्थ है परमात्मा हिरण्यरेता हे विष्णो ! आपके लिये नमस्कार है भगवान् शिव आपके लिये नमस्कार है । यह मन्त्र समस्त देवों की नेत्र ज्योति में भी कहा गया है । इस प्रकार से देव को आमन्त्रित करके काञ्चन से विलेखन करना चाहिये । ।।३१।।३२।।३३।। विद्वान पुरुष का कर्तव्य है कि अमङ्गल का विनाश

करने वाले मङ्गल वाद्य—गीतों के सहित ब्रह्म घोष वृद्धि के लिये कराने चाहिये ॥ ४॥ अब मैं सुसमाहित होकर लिङ्ग के लक्षण का उद्धरण कहूँगा पूज्या में तीन प्रकार से विभाग करके लक्षण विभाजक होता है ॥३५॥

लेखात्रयन्तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् ।
न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वक्त्रं छेदवर्जितम् ॥३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् ।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथामध्यमकेप्यसेत् ॥३७
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्तत्रा भगात्रयं बुधः ।
लम्बयेत्सप्तरेखास्तु पाश्र्वयोरुभयोः समाः ॥३८
तावत् प्रलम्बयेद्विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् ।
भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमन्ततः ॥३९
रेखयोः सङ्गमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् ।
एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ॥४०

अष्टयवों के अन्तर से संयुत तीन लेखायें करना चाहिए । न तो अति स्थूल हो और न अत्यन्त कृश ही हो और उसी भांति वक्त्र छेद वर्जित नहीं होना चाहिये ॥ ३६ ॥ ज्येष्ठ लिङ्ग का यव के प्रमाण से निम्न कराना चाहिये । इसके उपरान्त सूक्ष्म करने चाहिये और यथा मध्यमक में न्यास करे । बुध पुरुष को चाहिये फिर अष्ट भक्त करके भाग त्रय को त्याग देवे और दोनों पार्श्वों में समसप्त रेखाओं को लम्बमान करे । विद्वान को तब तक प्रलम्बित करना चाहिये जब तक चार भाग होवें । पाँच भाग ऊपर की ओर भ्रामित किये जाते हैं और अन्ततः सङ्ग कराना चाहिये दोनों रेखाओं के सङ्गम में उसी तरह से पृष्ठ में दो भाग होने चाहिये । इस प्रकार से मैंने सक्षेप से लक्षण को बतला दिया है ॥३७—४०॥

१२८—देवप्रतिष्ठा विधि वर्णन (२)

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् ।
स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ! ।।१
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्वज्ञा दम्भलोभविवर्जितः ।।२
कृष्णसारमयेदेशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः ।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिस्पृहः ।।३
समः शत्रौ च मित्रौ च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः ।
ऊहापोहार्थतत्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्यपारगः ।।४
आचार्य्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः ।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीनाऋजवस्तथा ।।५
द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगाः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपावः प्रकीर्तिता ।।६
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ।।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं मूर्त्तियों के लक्षण बतलाता हूं । हे द्विजगण ! जो मूर्त्तियों की स्थापना करने वाले पुरुष हैं उनके लक्षणों को आप लोग श्रवण करें ।।१।। स्थापक को किन २ गुणों से सुसम्पन्न होना आवश्यक है—यह बतलाते हुए कहते हैं जो पुरुष देवों की प्रतिमा की स्थापना करता है वह अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों से संयुत होना चाहिये—वेदों के मन्त्रों का पण्डित पुराणों का ज्ञाता—तत्त्वों का जानकार—दम्भ, लोभ से रहित भी होना उसका आवश्यक है । सब के कथन का निचोड़ यही है कि उपर्युक्त गुणों से हीन पुरुष मूर्त्ति स्थापक होने का पात्र ही नहीं होता है ।।२।। मूर्त्ति स्थापक कृष्णसारी से परिपूर्ण देशों में समुत्पन्न हो और शुभ आकृति वाला होना चाहिए । वह

शौच के आचार में परायण तथा नित्य ही पाषण के कुल में स्पृहा न रखने वाला भी होना आवश्यक है ॥३॥ देवमूर्त्ति का स्थापक पुरुष शत्रु और मित्र दोनों में समान व्यवहार रखने वाला होवे –ब्रह्मा-विष्णु और शिव का प्रिय हो—ऊहा और अपोह में के तत्त्वों का ज्ञाता तथा वास्तु शास्त्र का पारगामी विद्वान् होना चाहिए ॥४॥ स्थापना कराने वाला आचार्य्य नित्य ही सभी दोषों से विशेष रूप में रहित होना चाहिए। जो भी द्विजगण मूर्त्तिप हों वे सभी अच्छे शुद्ध कुलों में समुत्पन्न और सरल स्वभाव एवं व्यवहार वाले होवें ॥५॥ बत्तीस–सोलह-आठ ऐसी ही संख्या उन द्विजों की होनी चाहिए जो देव प्रतिमा की स्थापना के कर्म कराने में सम्मिलित हों तथा ये सभी श्रुति के पारगामी पण्डित भीहोने चाहिये। ये ज्येष्ठ–मध्यम और कनिण्ठ–इन तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ करते हैं जो भी मूर्त्तिप कहे गये हैं। ६। इसके अनन्तर वे सब लिङ्ग अथवा अर्चा को लेकर स्नपन मण्डप मे प्राप्त होकर वहां पर गीत मङ्गल की ध्वनियों से स्नपन करावें ॥७॥

पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा।
शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ॥८
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः।
यासां राजेतिमन्त्रस्तु आपोहिष्ठेतिचापरः ॥९
एव स्नाप्य ततोदेवं पूज्य गन्धानुलेपनैः।
प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रोत्युदाहृतम् ॥१०
उत्थापयेत्ततोदेवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते !।
अमूरजेति च तथारथे तिष्ठेति चापरः ॥११
रथे ब्रह्मरथेवापि धृतां शिल्पिगणेन तु।
आरोप्यच ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयत् ॥१२
ततः प्रास्तीर्य्य शय्यायां स्थापये छनकैर्बुधः।
कुशानास्तीर्य्य पुष्पाणि स्थापयेत् प्राङ्मुखं ततः ॥१३

ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् ।
शिरोभागेत्तु देवस्य जपन्नेव निधापयेत् ।।१४

वहां पर प्राप्त होकर उन सबका कर्त्तव्य होता है कि वे सब पञ्च गव्य (गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गोघृत, गोदधि) कषाय के द्वारा-मृत्तिकाओं से अथवा भस्म एव उदक से चारों निम्न निर्दिष्ट वेद के मन्त्रों के द्वारा शौच सर्व प्रथम करावें । वे चारों मन्त्रों की प्रतीकें ये हैं—'समुद्र ज्येष्ठ' मन्त्र—दूसरा 'आपोदिव्य'–मन्त्र--तृतीय 'यासाँ राजा'-मन्त्र और चतुर्थ 'आपोदिष्ठा' इत्यादि मन्त्र होते हैं ।।८, ९।। इस विधि से देव प्रतिमा का स्नपन कराकर गन्धानुलेपन आदि से पूजा करे और फिर दो वस्त्रों से प्रच्छादन करे एव 'अभिवस्त्र'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।।१०।। इसके अनन्तर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव का उत्थापन कराना चाहिये । फिर 'अमूरज'–इत्यादि मन्त्र के द्वारा और 'रथेतिष्ठ'—इत्यादि मन्त्र से रथ में अथवा ब्रह्मरथ में जो कि शिल्पिगण के द्वारा वहां पर निर्मित कर प्रस्तुत किया गया है उसमें समारोपित कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उसमें प्रतिमा का प्रवेश करावे ।।११, १२, १३।। इसके पश्चात् शय्या में प्रास्तरण करके बुध पुरुष को चाहिये कि धीरे से देव प्रतिमा को वहा पर स्थापित करे । कुशाओं का आस्तरण करके प्राङ्मुख होकर फिर पुष्पों की स्थापना करनी चाहिए ।।१३।। इसके उपरान्त वस्त्र और सुवर्ण से समन्वित निद्रा कलश को निम्न निर्दिष्ट मन्त्र का जाप करते हुए देव प्रतिमा के शिरो भाग में निधापित करना चाहिये ।।१४।।

आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च ।
ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रापधानकम् ।।१५
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः ।
मधुनासर्पिषाभ्यज्य पूजयसिद्ध्यर्थकंस्ततः ।।१६

आप्यायस्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च ।
उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ॥१७
सित प्रतिसरं दद्यात् वार्हस्पत्येति मन्त्रतः ।
दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापिवा ॥१८
आच्छाद्य देव सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम् ।
पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानपुष्पसंयुतम ॥१९
रत्नान्योषध्यस्तत्र गृहोपकरणानि च ।
भाजनानि विचित्राणि शयनासान्यनानि च ॥२०
अभित्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्ययेत् ।
क्षीर क्षौद्र घृतं तद्वत् भक्ष्यभोज्यान्य(न्न) पायसैः ॥२१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात् परिपूजसेत् ।
वलि दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ॥२२

"आपो देवी"—इत्यादि मन्त्र से तथा "आपोऽस्मान् मातरोऽपिच"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दुकूल पट्टों से समाच्छादन करके देव प्रतिमा के शिरो भाग में नेत्रोपधानक अथवा कौशेय देना चाहिये—यह विचक्षण पुरुष का परम कर्त्तव्य है। फिर इसके उपरान्त में मधु और सर्पि से (घृत से) अभ्यजन करके सिद्धार्शकों के द्वारा पूजा करे। 'आप्यारास्व' इत्यादि मन्त्र से 'यातेरुद्रशिव' इत्यादि मन्त्र के द्वारा वहाँ पर उपविष्ट होकर सब ओर से गन्धाक्षत पुष्पों से देव का अभ्यर्चन करना चाहिये ॥ १५, १६, १७ ॥ 'वार्हस्पत्य'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव को सित प्रतिसर समर्पित करना चाहिए। दुकूल पट्टों के द्वारा अथवा अनेक प्रकार के कपास के सूती वस्त्रों से सर्वत्र देव प्रतिमा का भली भाँति समाच्छादन करे और वहां पर पार्श्व भाग में छत्र–चामर और दर्पण स्थापित करना चाहिए। वहां पर पुष्पो से संयुक्त एक वितान निर्मित करावे। रत्न–ओषधियाँ-गृह के अन्य समस्त उपकरण–भाजन—विचित्र शयन–आसन शूर मन्त्र के द्वारा अभित करके अपने वैभव के

अनुसार इन सभी का न्यास करना चाहिये क्षीर, क्षौद्र घृत, भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पायस, छै प्रकार के रस इन सबसे सभी ओर से देव प्रतिमा का पूजन करना चाहिये। फिर निम्न निर्दिष्ट मन्त्र के द्वारा अच्छी तरह से प्रयत्न पूर्वक बलि देना चाहिये ।।१८–२२।।

त्र्यम्बकं यजामहे इति सर्वतः शनकैर्भुवि ।
मूर्तिपान्स्थापयेत्पश्चात्सर्वदिक्षुविचक्षणः ।।२३
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् ।
श्रीसूक्तं पावमानञ्च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ।।२४
तथाच शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च ।
रक्षोघ्नञ्च तथा सूक्तं पूर्वतोबह्वृचोजपेत् ।।२५
रौद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम् ।
तथैव मण्लाध्यायमध्यायमध्वर्युर्दक्षिणेजपेत् ।।२६
वामदेवं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् ।
तथा पुरुषसूक्तञ्च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ।।२७
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ।
अथर्वोऽङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ।।२८

"त्र्यम्बकं यजामहे' — इत्यादि मन्त्र के द्वारा सब ओर धीरे से भूमि पर मूर्त्तियों को स्थापित करे। इसके पश्चात् विचक्षण पुरुष को सभी दिशाओं में द्वारों में चार द्वारपालों को विनिवेशित करना चाहिये। इसके अनन्तर श्रीसूक्त, पावमान सोम सूक्त, सुमङ्गल, शान्ति का ध्याय, इन्द्र सूक्त, रक्षोघ्न सूक्त और पहिले बह्वृचो का जाप करना चाहिये। रौद्र, पुरुष सूक्त, श्लोकाध्याय, सशुक्रिय, माला ध्याय इनका जाप अध्वर्यु दक्षिण दिशा में करना चाहिए ।।२३–२६।। छन्दों के ज्ञाता को वाम देव, बृहत्साम, ज्येष्ठ साम, रथन्तर, पुरुष सूक्त, रुद्र सूक्त, शान्तिक, भारुण्ड साम ऋचाएें — इन सबका जाप पश्चिम दिशा में करना चाहिए। जो अथर्व वेद का ज्ञाता ऋत्विज है उसको अङ्गिरस, नील, रौद्र का जाप करना चाहिए ।।२७, २८।।

तथा पराजिता देवी सप्तसूक्तं सरौद्रकम् ।
तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ।।२९
शिरः स्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।
शान्तिकः पौष्टिकैस्तद्वन् मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ।।३०
पलाशोदुम्बराश्वत्थअपामार्गः शमी तथा ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत् ।।३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः ।
नाभिमध्यं तथावक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः ।।३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम् ।
समेखलेषुते कुर्युर्योनिवक्त्रेतु चादरात् ।।३३
वितस्तिमात्रायोनिः स्यद्गजोष्ठसदृशी तथा ।
आयताच्छिद्रसंयुक्तापार्श्वतः कलयोच्छ्रिता ।।३४
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला ।
विस्तारेणोच्छ्रयात्तद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ।।३५

अथर्वा मनीषी को पराजिता देवी—सप्त सूक्त, रौद्रक और शान्ति का ध्याय का पाठ तथा जाप उत्तर दिशा में करना चाहिए ।।२९।। देव प्रतिमा के शिर के भाग की ओर स्थापक को होम का समाचरण करना चाहिए और वह होम शान्तिक पौष्टिक व्याहृतियों से युक्त मन्त्रों के द्वारा उसी भाँति करे ।।३०।। पलाश— ढाक) उदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—अपामार्ग (औंघा)—शमी (छौंकर) इनकी समिधाओं से एक-एक सहस्र आहूतियाँ देकर देव के चरण में स्पर्श करे ।३१। एक-एकसहस्र आहूतियों से होम करके फिर नाभि के मध्य भाग का—वक्षःस्थल का और शिरका आलभन करना चाहिए ।३२। सब दिशाओं में एक हाथके विस्तार वाले कुण्डोंमें जोकि मेखलाओं से युक्तहोने चाहिए और योनिवक्त्र वाले हों उनमें बड़े ही आदर के साथ उन मूर्तिपाओं को करना चाहिए ।।२३।। उनकी योनि एक वितस्ति (वालिश्त) भर विस्तार वाली गज के

ओष्ट के तुल्य होनी चाहिए। वह आयत—छिद्र संयुक्त—पार्श्व भाग में कला से उच्छ्रित-कला के अनुसार कुण्ड से सब ओर चार अंगुल वाली-विस्तार उच्छ्रय-चतुरस्र और सम होनी चाहिये ॥३४, ३५॥

वेदीभित्ति परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलैः।
एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणञ्चैव दृश्यते ॥३६
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तयोलोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥३७
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः।
वसुधां वसुरेता च यजमानो दिवाकरः ॥३८
जल वायुस्तथासाम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत् ॥३९
एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
पृथ्वीं पाति शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च ॥४०
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवोजलं सदा पाति वायुमीशान एव च ॥४१
महादेवस्तथा चन्द्र भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येत एव च ॥४२

तेरह अंगुलों से वेदी की भित्ति का परित्याग करके इस प्रकार से नो कुण्डों में लक्षण दिखलाई देता है ॥३६॥ उत्तर की ओर मुख करने वालों को आग्नेय-शाक्र और यामा दिशाओं में हवन करना चाहिये तथा क्रम से लोकपालों के लिये एवं मूर्त्तियों के लिये शान्ति करे तथा मूर्त्ति के अधिदेवों का होम परम सावधान होकर करे। देव की आठ मूर्त्तियों का नामोल्लेख किया जाता है। वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम और आठवाँ आकाश बताया गया है। ये देव की आठ मूर्त्तियाँ होती हैं उनको कुण्डों में संस्मृत करना चाहिये ॥३७, ३८, ३९॥ अब इनके पवित्र अधिदेवों को बतलाता हूँ। उनके नाम और मूर्त्ति दोनों ही बतलाते हैं। शर्व पृथिवी की रक्षा करते हैं—पशुप अग्नि का रक्षण [illegible]

करता है। उग्र यजमान की रक्षा करता है—रुद्र आदित्य का—भव जल का और ईशान वायु का संरक्षण किया करता है ।।४०, ४१।। महा देव चन्द्र का रक्षक है तो भीम आकाश की रक्षा किया करता है। सब देवों की प्रतिष्ठाओं में ये ही मूर्त्तिप हुआ करते हैं ।।४२।।

एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत् ।
तथा शान्तिघटं कुर्य्यात् प्रतिकुण्डेषु सन्न्यसेत् ।।४३
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते ।
समपादः पृथिव्यान्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ।।४४
आहुतीनान्तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत् ।
मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ।।४५
स्थितश्च स्नापयेत्तेन सम्पाताहुतिवारिणा ।
प्रतियामेषु धूपन्तु नैवद्यञ्चदनोदकम् ।।४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः ।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ।।४७
सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्रांगुलीयकैः ।।४८

इनके लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा यथास्व अर्थात् अपने वैभव के और वित्त के अनुसार होम करने का समाचरण करना चाहिए। प्रत्येक कुण्ड में शान्ति घट करे और वहां पर उनका न्यास भली भाँति करना चाहिये ।।४३।। एक सौ आहूतियों के अवसान में या एक सहस्र आहूतियाँ समाप्त होने पर अन्त में सम्पूर्ण हुति देना अभीप्सित होता है। प्रशान्त आत्मा वाले को सम्पाद होते हुए विशेष रूप से निक्षेप करना चाहिए। ।।४४।। आहूतियों का जो सम्पात है उसको पूर्ण कुम्भों में न्यास करे जो कि मूल-मध्यम और उत्तमाङ्ग होते हैं। उससे देवका अवसेचन करना चाहिये। उस सम्पाताहुतियों के जल से स्थित होते हुए स्नापन कराना चाहिये। प्रत्येक यामों में धूप-नैवेद्य-चन्दनोदक समर्पित करे। ऐसा पुनः

पुनः करे तथा बारम्बार होम करना चाहिये। यजमान के द्वारा पुनः पुनः दक्षिणा भी देना परमावश्यक होता है। सभी ओर से श्वेत वस्त्रों से उनकी सबकी पूजा करनी चाहिये। अपनी आर्थिक शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार उनको विचित्र सुवर्ण के कटक–हेम सूत्र तथा सुवर्ण की अंगुलीयक समर्पित करके उन्हें पहिनावे ।।४५–४८।।

वासोभिः शयनीयैश्च परिधाप्याः स्वशक्तितः ।
भोजनञ्चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम् ।।४९
बलिस्त्रिसन्ध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतो दिशम् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांस्तु कामतः ।।५०
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः ।
सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्म यावता ।।५१
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापिवा ।
सप्तरात्रमथोकुर्य्यात् क्वचित्सद्योऽधिवासनम् ।।
सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा ।।५२।।

उन सबका सत्कार वस्त्रों के—शयनीयों के द्वारा अच्छी रीति से करना चाहिये और ये सबको परिधापन करावे। जब तक इनका वहां पर अधिवासन होवे तब तक सबको भोजन भी देना चाहिए ।। ४९ ।। सभी दिशाओं में भूतों के लिये बलि भी तीनों सन्ध्याओं के समय में देनी चाहिये। सबसे पूर्व ब्राह्मणों को भोजन करावे और इसके उपरान्त शेष सभी वर्णों को इच्छा पूर्वक भोजन देवे ।।५०।। नृत्य–गीत और अन्य मङ्गलों के द्वारा रात्रि के समय में महान् उत्सव करना चाहिये। जब तक यह चतुर्थी कर्म्म रहे सदा प्रयत्न पूर्वक सबकी पूजा करे। त्रिरात्र–एक रात्र–पञ्च रात्र अथवा सप्त रात्र पर्यन्त करे। कहीं पर तुरन्त ही अधिवासन कर देवे। क्योंकि अधिवास का उत्सव सदा ही समस्त यज्ञों के फल वाला हुआ करता है ।।५१, ५२।।

१२६–कलियुगीन भावी राजा

शिशुकोऽध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ॥१
त्रयोविंशत् समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ॥२
श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ।
पूर्णोत्सगस्ततोराजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ॥३
पञ्चाशतं समाः षट्च शान्तकर्णिर्भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरःसुतः ॥४
आपीतकोदशद्वेच तस्य पुत्रो भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि मेधस्वाति र्भविष्यति ॥५
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु !
स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु र्भविष्यति ।।६
मृगेन्द्रस्वातिकर्णस्तु भविष्यतिसमास्त्रयः ।
कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भवितष्टौसमानपः ॥७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—शिशुकोन्ध्र इस वसुन्धरा को प्राप्त कर लेगा। वह शिशुक तेईस वर्ष पर्यन्त राजा रहेगा। १,२॥ फिर उसका पुत्र श्री मल्ल र्णि दश वर्ष राजा होगा। इसके पश्चात् अट्ठारह वर्ष तक पूर्णोत्सङ्ग इस भूमि पर शासन करेगा ॥३॥ पञ्चाशत और छै वर्ष तक शान्तकर्णि राजा होगा। उसका पुत्र लम्बोदर अठारह वर्ष तक राजा होगा। फिर आपीतक उसका पुत्र दश और दो वर्ष तक राजा होगा। अठारह वर्ष तक मेधस्वाति राजा इस मही मण्डल पर राज्य करेगा। इसके अनन्तर अष्टादश वर्ष तक स्वाति इस मही का राजा होगा फिर सात वर्ष पर्य्यन्त स्कन्दस्वाति राजा होगा। तीन वर्ष तक महेन्द्र स्वाति कर्ण इस वसुन्धरा पर राज्य करेगा। कुन्तल और स्वाति कर्ण आठ वर्ष तक इस पृथ्वी पर नृप होगा ॥४–७॥

एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ॥८
भवितारिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशति ।

ततः संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति ।।९
पञ्चमन्दुलकोराजाभविष्यतिसमा नृप ।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्योभविष्यति ।।१०
सुन्दरः शान्तिकणस्तु अब्दमेकं भविष्यति ।
चकोरः स्वातिकणस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ।।११
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति ।
राजा च गौतमो पुत्रोह्यकविंशत्यतोनृपः ।।१२
अष्टाविंशतिसुतस्तस्यसुलोमावैभविष्यति ।
शिवश्रीर्वै सुलोमत्तु सप्तैव भवितानपः ।।१३
शिवस्कन्धशान्तिकणाद्भविता ह्यात्मजः समाः ।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञ. श्री शान्तिकर्णिकः ।।१४

एक वर्ष तक स्वातिवर्ण इस पृथ्वी का राजा होगा ।। ८ ।। पच्चीस वर्ष तक रिक्तवर्ण शासन करेगा । फिर इसके पश्चात् पाँच वर्ष तक हाल राजा होगा । हे नृप ! फिर पञ्च मन्दुलक राजा होगा—पुरीन्द्रसेन और इससे सौम्य नृपति होगा । सुन्दर शान्तिकर्ण एक वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा का राजा होगा । चकोर स्वतिकर्ण छै मास तक नृप होगा ।।९, १०, ११।। अट्ठाईस वर्ष पर्य्यन्त शिव स्वाति इस मही मण्डल का नृपति बनेगा । गौतमी का पुत्र राजा इक्कीस वर्ष तक रहेगा। उसका पुत्र सुलोमा अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त राजा होगा । उस सुलोम से समुत्पन्न शिवश्री सात वर्ष पर्यन्त नृप रहेगा । शान्तिकर्ण से शिव स्कन्ध आत्मज होगा । उन्नीस वर्ष तक यज्ञ, श्री, शान्तिकर्णिक राजा होंगे ।।१२, १३, १४।।

षड़ेव भवितास्माद्विजयस्तुसमास्ततः ।
चण्डश्रीः शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समादश ।।१५
सुलोमा सप्तवर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ।
एकोनविंशतह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।।१६
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारिषष्टिरेव च ।

आन्ध्राणां संस्थताराज्येतेषांभृत्यान्वयेनृपाः ॥१७
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ।
सप्तगर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ॥१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश ।
त्रयोदश गु(मु) रुंडाश्च हूणाह्येकोर्नविंशतिः ॥१९
यवनाष्टौभविष्यन्तिसप्ताशोतिमहीमिमाम् ।
सप्तगर्द्दभिलाभूयोभोक्ष्यन्तीमांवसुन्धराम् ॥२०
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता ।
शतानि त्रीण्यशीतिञ्च शतान्यष्टादशैव तु ॥२१

हे द्विज ! इसके पश्चात् केवल छै वर्ष ही इसका राजा हुआ था। चण्डश्री और शान्तिकर्ण उसका पुत्र दश वर्ष तक शासक रहा था। सुलोमा सप्त वर्ष तक होगा फिर उनका अन्य होगा इस तरह से ये इक्कीस आन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ॥१५, १६॥ उनके शासन का काल एक सौ वर्ष और चौंसठ होगा आन्ध्रों के राज्य में उनके भृत्यों के वंश में नृप संस्थित होंगे। सात ही आन्ध्र तथा दश आभीर नृप होंगे। सात गर्दभिल भी होगे तथा अट्ठारह शक होंगे। आठ यवन राजा होंगे और चौदह तुषार नृपति होंगे। तेरह गुरुंड राजा होंगे तथा उन्नीस हूण राजा इस मही का शासन करेंगे। इस मही को सत्तासी वर्ष तक आठ यवन भोगेंगे तथा सात गर्दभिल फिर इस वसुन्धरा का उपभोग करेंगे। यह मही सात हजार वर्ष तक तुषारों की बतलाई गई है। तीन सौ अस्सी और अट्ठारह सौ वर्ष तक का समय बताया गया है ॥१७–२१॥

शतान्यर्द्धञ्चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गु(मु रुण्डा वृषलैः सार्धं मोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ॥२२
शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु ।
आन्ध्राः श्रीपार्व्वतीयाश्चतेद्विपञ्चाशतसमाः ॥२३
सप्तषष्टिस्तुवर्षाणि दशाभीरास्तथैव च ।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिलान्नृपाः ॥२४

भविष्यन्तीह यवनाधर्मतः कामतोऽर्थतः ।
तैर्विमिश्रा जनपदाआर्य्याम्लेच्छाश्च सर्वशः ।।२५
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः ।
लुब्धानृतब्रवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ।।२६
कल्किनानिहताः सर्वे आर्य्याम्लेच्छाश्चसर्वतः ।
अधार्मिकाश्चयेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैवसर्वशः ।।२७
प्रणष्टे नृपवंशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्तावै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहाः ।।२८

डेढ़ सौ और चार वर्ष तक तेरह होंगे । वृषलों के साथ म्लेच्छों से समुत्पन्न गुरुण्ड इस भूमि का उपभोग करेंगे ।।२२।। तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्र नृप इस भूमण्डल का उपभोग करेंगे और श्री पार्वतीय द्विपञ्चाशत वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा पर शासन करेंगे । उसी भाँति दश आभीर सड़सठ वर्ष तक इसका उपभोग करेंगे । समय आने पर उन सबके उत्पन्न हो जाने पर फिर इस मही मण्डल पर किलकिला नृप होंगे जो यहां पर काम से—अर्थ से और अधर्म से यवन होंगे । उन से मिले हुए जनपद सब ओर आर्य्य और म्लेच्छ हो जांयगे । सब विपर्यय से बरताव करेंगे और प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायेगी । राजा लोग आम तौर पर बड़े ही लालची तथा मिथ्या भाषण करने वाले हो जांयगे । फिर ये सब आर्य तथा म्लेच्छ सब ओर में कल्कि के द्वारा निहत होंगे । जो भी उस समय में अधार्मिक और अत्यन्त ही पाषण्डी होंगे वे सब निहत हो जाँयगे । इस तरह से नृपों के वश के प्रनष्ट हो जाने पर और कलियुग के सन्ध्या भाग के बाकी रहने पर कुछ थोड़ी सी प्रजा के जन शिष्ट रहेंगे और वे भी धर्म्म के नष्ट होजाने पर परिग्रह शून्य होंगे ।।२३-२८।।

असाधवो ह्यसत्वाश्च व्याधिशोकेन पीड़िताः ।
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सवः ।।२९
अशरण्याः परित्रस्ताः सङ्कटं घोरमाश्रिताः ।
सरित्पर्वतवासिण्योभविष्यन्त्यखिलाः प्रजाः ।।३०

पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः ।
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥३१
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाकाले युगान्तके ।
निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियूगेन तु ॥३२
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ।
ससन्ध्यांशे सुनिः शेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते ॥३३
एव वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो या मया क्रमात् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥३४
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः ।
एवं वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् । ३५

प्रजाजनों में सभी असाधु वृत्ति वाले—सत्त्व से हीन तथा व्याधियों एवं शोकों से उत्पीड़ित होंगे । अनावृष्टि से अर्थात् वर्षा के पूर्ण तया अभाव होने से सब लोग हत होंगे और सब लोग परस्पर में वध करने की इच्छा रखने वाले हो जाँयगे । सब रक्षक से रहित—भयभीत तथा परम घोर सङ्कट को प्राप्त करने वाले—मही, तरु और पर्वतों में निवास करने वाले सभी प्रजाजन उस भीषण एवं महान् दारुण समय में हो जाँयगे । भोजन के अभाव में सब लोग पत्ते-मूल और फलों के आहार करने वाले होंगे तथा चीर पत्र—चर्म के वस्त्र धारण किया करेंगे । सब लोग अपनी वृत्ति के प्राप्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण पृथ्वी पर इधर-उधर घूमते फिरेंगे । इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले प्रजा के समय में सभी इस कलियुग के साथ ही निःशेष हो जाँयगे । उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर दिव्य वर्ष सहस्र वाले सन्ध्यांश के समय में जो कि उस समय ये सुनिःशेष है कृतयुग ही प्राप्त हो जायगा ॥२९, ०॥ ॥३१, ३२, ३३॥ इस रीति से मैंने यह वंश का क्रम पूर्ण रूप से तथा क्रम से आप सब लोगों के सामने कह दिया है । इस वंश क्रम में जो राजा लोग पहिले हो चुके हैं वे सब, वर्त्तमान काल में जितने भी विद्यमान हैं वे सब तथा जो भविष्य में होंगे वे सभी कीर्त्तित कर दिये गये

हैं । महा पद्म के अभिषेक से जब तक परीक्षित राजा का जन्म था एक सहस्र और आगे पञ्चाशत् वर्ष समझने चाहिए ॥३४, ३५॥

पोलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः ।
अनन्तरंशतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा ॥३६
तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः ।
भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥३७
सप्तर्षयस्तदाप्रांशु प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिभाव्यानां आन्ध्राणान्तुयदापुनः ॥३८
सप्तर्षयस्तु वर्त्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्य्यायेण शतं शतम् ॥३९
सप्तर्षीणामुपर्य्ये तत् स्मृतं वै दिव्यसञ्ज्ञया ।
समादिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ॥४०
एभिः प्रवतते कालोदिव्यः सप्तर्षिभिस्तुवः ।
सप्तर्षीणाञ्च यौ पूर्वौदृश्येतेह्युदितौनिशि ॥४१
तयोमध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्सम दिवि ।
तेन सप्तर्षयोज्ञेया युक्ताव्याम्नि शतं समाः ॥४२

फिर पोलोम और आन्ध्र उस महा पद्मान्तर में अनन्तर आठ सो छत्तीस वर्ष पर्य्यन्त समय था । तब तक परीक्षित नृप से लेकर आन्ध्रों के अन्त तक होगा । श्रुतर्षि पुराणों के ज्ञाताओं ने वे सब भविष्य में समाख्यात किये हैं ॥३६, ३७॥ उस समय में प्रांशु प्रदीप्त अग्नि के समान सप्तर्षिगण ये होने वाले सत्ताईस आन्ध्रों के जब फिर सप्तर्षिगण हैं जिस नक्षत्र मण्डल में पर्य्याय (पारी) से सो-सो सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं । सप्तर्षियों के ऊपर में जो बताये गये हैं वे दिव्य संज्ञा से दिव्य वर्ष ही कहे गये हैं। वे दिव्य वर्ष साठ और सात के साथ हैं ॥३८, ३९, ४०॥ इनसे सप्तर्षियों से दिव्य काल प्रवर्त्त होता है । सप्तर्षियों के जो दो पूर्व में होने वाले निशा में उदित दिखलाई देते हैं उन दोनों के मध्य में जो

नक्षत्र सम दिवलोक में दिखलाई देता है उससे व्योम में सो वर्ष तक युक्त सप्तर्षिगण जानने के योग्य हैं ॥८१,४ ॥

नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यैतन्निदर्शनम् ।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ॥४३
ब्राह्मणस्तु चतुर्विंशा भविष्यति शतंसमाः ।
ततः प्रभृत्ययं सर्वोलोकोव्यापत्स्यतेभृशम् । ४४
अनृतोपहतलुब्धा धर्मतः कामताऽर्थतः ।
श्रौतस्मार्तेति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ॥४५
सङ्करं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः ।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्था शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ॥४६
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः ।
क्रमेणव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ॥४७
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षाणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन्कृष्णोदिवं यातस्तस्मिन्न व तदाहनि ॥४८
प्रतिपन्न कलियुगं प्रमाणं तस्य मे शृणु ।
चतुः शतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृत बुधैः ॥४९

नक्षत्रों क ओर ऋषियों के याग का यह निदर्शन है। पारीक्षित काल में सो मघा से युक्त सप्तर्षि गण हैं। सो वर्ष तक चौबीस ब्राह्मण होंगे। तब से लेकर यह सब लोक अत्यन्त ही अधिक आपत्ति को प्राप्त होगा। धर्म से और काम से हीन-अनृत से उपहत-लुब्ध लोग होंगे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म्म एक दम शिथिल हो जाने पर वर्णों और आश्रमों के नष्ट होने पर दुर्बल आत्मा वाले परम मोह के प्राप्त हुए लोग संकरता को प्राप्त हो जाँयगे ब्राह्मण लोग शूद्र योनियों में स्थित हो जाँयगे और जो शूद्र होगे वे मन्त्रयोनि वाले हो जाँयगे ॥४३-४६॥ उसके अर्थ के जानने की इच्छा वाले विप्र गण उन शूद्रों के समीप में समुपस्थित हुआ करेंगे। इसी क्रम से दिखलाई देगे। अपने वर्णों के अन्तर को देने वाले युग के क्षय में क्षीण शेष सब क्षय को ही प्राप्त हो जाँयगे। जिस दिन

में भगवान् श्री कृष्ण दिवलोक में अन्तर्दित होकर चले गये थे उसी समय में और उस ही दिन में यह कलियुग प्रतिपन्न हो गया था। उसका प्रमाण अब आप मुझसे श्रवण करिये। बुध जनों के द्वारा चार सो सहस्र वर्ष अर्थात् चार लाख बताया गया है ।४७. ४८. ४९।।

चत्वार्यष्टसहस्राणि सङ्ख्यातं मानुषेण तु।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदासङ्ख्या प्रवर्तते ॥५०
नि:शेषेतु तदा तस्मिन् कृत वै प्रतिपत्स्यते।
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेव: प्रकीर्त्तिता: ।।५१
इक्ष्वाको: संस्मृतं क्षत्र सुमित्रान्तभविष्यति।
ऐलं क्षत्र समाक्रान्त सोमवंशविदोविदु: ।।५२
एते विवस्वत: पुत्रा: कीर्तिता: कीर्तिवर्धना:।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये। ५३
ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृता:।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंश: समाप्यते ।५४
देवापि: पौरवोराजा ऐक्ष्वाकोयश्च ते मत:।
महायोगबलोपेतौ कलापग्रामसमाश्रितौ ।।५५
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे।
सुवर्चा मनपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ।।५६

मानुष ने बत्तीस हजार वर्ष संख्यात किया है। उस समय में दिव्य सहस्र वर्ष की संख्या प्रवृत्त होती है ।।५०।। उस समय मे उस कलियुग के निशेष हो जाने पर ही कृतयुग प्राप्त हो जायगा। ऐल और सहदेव इक्ष्वाकु वंश प्रकीर्त्तित किये गये हैं। इक्ष्वाकु का संस्मृत क्षत्र सुमित्र के अन्त तक होगा। ऐल क्षत्र समाक्रान्त को सोम वंश के वेत्ता लोग जानते हैं। ये सब विबस्वान् के कीर्ति के वर्धन करने वाले पुत्र कीर्त्तित किये गये हैं जो व्यतीत हो चुके हैं—वर्त्तमान काल में विद्यमान हैं तथा जो अब तक अनागत हैं अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं ।।५१।। ।।५२, ५३।। ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये हैं।

उस वैवस्वत मन्वन्तर में यह वंश समाप्त हो जाया करता है ।। ५४ ।। देवापि और पौरव राजा जो आप ऐक्ष्वाक मानते हैं । ये दोनों महान् योग बल से समुपेत थे तथा कलाप ग्राम में आश्रय ग्रहण करने वाले थे । ये दोनों ही नवविंश चतुर्युग में क्षत्र के प्रणयन करने वाले थे । मनु का पुत्र सुवर्चा ऐक्ष्वाकों में सब से आदि में होने वाला होगा । ५५, ५६।।

नवविंशे युगेसो वै वंशस्यादिर्भविष्यति ।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः ।।५७
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्येतु चतुर्युगे ।
एवं सर्वेषु विज्ञेयं सन्तानार्थन्तु लक्षणम् ।।५८
क्षीणे कलियुगेचैव तिष्ठन्तीति कृते युगे ।
सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः ।।५९
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः ।
एवमेवतु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ।।६०
सप्तर्षयोनृपैः सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे ।
एव क्षत्रस्य चोत्सेधः सम्बन्धोवद्विजैः स्मृतः ।।६१
मन्वन्तराणां सन्ताने सन्तानाश्चश्रुतौस्मृताः ।
अतिक्रान्तयुगाश्चैवब्रह्मक्षत्रस्यसम्भवाः ।।६२
यथा प्रशान्तिस्तेषां वं प्रकृतीनां यथाक्षयः ।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुस्त्वं क्षयोदयौ ।।६३

नवत्रिंश युग में वह वंश का आदि होगा । देवापि का पुत्र सत्य ऐलों का नृप होगा । भविष्य चतुर्युग में ये दोनों क्षत्र के प्रवर्त्तक होंगे । इसी प्रकार से सब में समझ तथा जान लेना चाहिए । सबका समान अर्थ वाला लक्षण है ।।५०, ५ ।। कलियुग के क्षीण हो जाने पर कृत युग में सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं । मध्य में त्रेता युग में पुनः उनके साथ रहते हैं ।।५ ।। पुनः बीज के लिये वे होंगे । पुनः ब्रह्म और क्षत्र होंगे । इस प्रकार से सब तिष्यान्त अन्तरों में युग युग में सन्तान के लिये नृपों के साथ में सप्तर्षिगण होंगे । इस तरह से क्षत्र का उत्सेध द्विजों के साथ सम्बन्ध कहा गया है । मन्वन्तरों के सन्तान में सन्तान श्रुति में कहे गये

हैं। अतिक्रान्त युग वाले ब्रह्म और क्षत्र के सम्भव बताये गये हैं ।६०-६२। जिस प्रकार से उनकी प्रशान्ति और जिस तरह से प्रकृतियों का क्षय, ये दोनों क्षय और उदय सप्तर्षिगण उनके दीर्घायुस्त्व को जानते हैं।। ६३ ।।

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः ।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणः कलौ युगे ।।६४
अनुयान्ति युगाख्यान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम् ।
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रेनिरवशेषिते ।।६५
रिक्तेयं वसुधासर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।
द्विवंशकरणं सर्वं कीर्तयिष्टे निबोध मे ।।६६
ऐलञ्चेक्ष्वाकुवंशञ्च प्रकृतिं परिचक्षते ।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रियाभुवि ।।६७
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः ।
एष.मेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ।।६८
तावदेव तु भोजानां विस्तारात् द्विगुण स्मृतम् ।
भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्द्धा तद्यथातथम् ।।६९
ते ह्यतीताः स नामनो ब्रुवतस्तान्निबोध मे ।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानांशतंनागाः शतंहयाः ।।७०

इस क्रम के योग से ऐल और इक्ष्वाकु नृप त्रेता में उत्पद्यमान होते हैं और कलियुग में क्षोयमाण हुआ करते हैं।।६४।। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है युगाख्या को अनुमान किया करते हैं । जामदग्नि (परशुराम) के द्वारा समस्त क्षत्रियों के निरवशेषित होने पर इस सम्पूर्ण वसुधा के स्वामी क्षत्रियों से यह समस्त वसुन्धरा रिक्त हो गई थी। सब द्विवंश करण को मैं कीर्त्तित करूँगा। उसे अब आप लोग मुझसे समझ लेवें।६५ ६६। ऐलवंश और इक्ष्वाकु वंश प्रकृति के अनुकूल होते हैं। श्रेणीबद्ध राजा लोग तथा अन्य भूमंडल में क्षत्रियगण हैं। ऐलवंश वाले बहुत अधिक हैं और उस तरह से इक्ष्वाकु के वंश वाले नृप नहीं हैं। इन कुलों के पूण एकशत अभिरोचित होता है। उतना ही विस्तार से भोजों का द्विगुण कहा-

गया है । भोजों का द्विगुण क्षत्र यथातथ है ।६७-६९। वे सब अतीत होगये हैं। उनके नामों को बतलाने वाले मुझसे आप लोग ज्ञान प्राप्त कर लेवें । एकसौ प्रतिबन्ध्यों के थे। सौ नागों के थे और एकशत हय थे ।।७०।।

शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम् ।।७१
ततः शतञ्च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः ।
तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशविन्दवः ।।७२
इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः ।
एवं राजर्षयोऽतीताः शमशऽथ सहस्रशः ।।७३
मनार्वैवस्वतस्यासनूवर्तमानेऽन्तरेविभोः ।
तेषांतुनिधनोत्पत्तौलोकसंस्थितयः स्थिताः ।।७४
न शक्योविस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ।।७५
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
ऐते देवगणैः साद्धं शिष्टा ये तान्निबोधतः ।।७६
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भवियास्ते महात्मनः ।
अवशिष्टायुगाख्यास्ते ततोवैवस्वतोह्ययम् ।।७७

एकशत धृतराष्ट्र थे । अस्सी जन्मेजय थे। ब्रह्मदत्तों के एक शत थे जो कि महावीर हुए थे । कुरुगण शत थे ।।७१।। पञ्चाल एक शत थे और काशि कुशादिक एक सौ थे । जो नीप शशबिन्दु थे उसी भाँति दूसरे दो सहस्र थे ।।७२।। वे सब इष्टवान् थे और सभी नियुत दक्षिणा वाले थे। इस प्रकार से राजर्षिगण सैकड़ों तथा सहस्रों की संख्या में अतीत हो चुके हैं। ये सब विभु वैवस्वत मनु के वर्त्तमान अन्तर में थे। उनके निधन और उत्पत्ति में लोकों की संस्थितियाँ स्थित थीं। उनके सन्तान का परस्पर में विस्तार उनके पूर्वापर योग से एकसौ वर्ष में भी कहा नहीं जा सकता है ।।७३-७५।। ये अट्ठाईस वैवस्वत मन्वन्तर में समाख्यात किये गये हैं। ये देवगणों के साथ में जो शिष्ट हैं उनको भी समझलो ७६। चालीस और तीन वे महान् आत्मा वाले होने वाले हैं। वे अवशिष्ट युगाख्य हैं उसके पश्चात यह वैवस्वत है।७७

एतद्वः कीर्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः ।
पुनर्वक्तु बहुत्वात्तु न शक्यंविस्तरेण तु ॥७८
उक्ता राजर्षयो येतु अतीतास्ते युगैः सह ।
ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते ॥७६
कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
लभते स वरान्पञ्चदुर्लभानिहलौकिकान् ॥८०
आयुः कीर्तिं धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते ।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः ॥८१

यह संक्षेप और विस्तार के योग से भली भाँति आपको बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नहीं जा सकता है । जो राजर्षिगण बतलाये गये हैं वे सब युगों के साथ अतीत हो गये हैं वे जो ययाति के वश में होने वाले है और जो विशाम्पति के वंश में हैं वे द्युतिमान् सब कीर्तित कर दिये गये हैं इनको जो नर धारण करता है वह पांच लौकिक दुर्लभ वरों को प्राप्त किया करता है – आयु, कीर्त्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है । उस धीमान् को इनके धारण करने से, श्रवण करने से स्वर्ग में परम पद प्राप्त हुआ करता है॥७८–८१॥

एतद्वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।
मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८२
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् ।
एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ॥८३
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानिभुङ्क्ते ॥८४

यहाँ तक विश्व स्वरूप भगवान् मत्स्य का कहा हुआ पुराण कह दिया गया जो समस्त धर्म, अर्थ, काम का सिद्ध करने वाला है ॥८२॥ यह पवित्र महा पुराण आयु और कीर्त्ति की वृद्धि करने वाला और परम कल्याणजनक है । बड़े से बड़े पाप भी इसके द्वारा दूर हो जाते हैं ॥८ ॥ जो कोई इस पुराण का एक श्लोक भी पढेगा वह पाप से विमुक्त हो जायगा और भगवान की कृपा से देवताओं के समान दिव्य सुखों का उपभोग करेगा ॥८४॥ ॥ मत्स्य-पुराण समाप्त ॥

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

१- चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	— २७)
अथर्व वेद २ खण्ड	— १३)५०
यजुर्वेद १ खण्ड	— ६)७५
सामवेद १ खण्ड	— ६)७५

२- १०८ उपनिषद् (ज्ञान, ब्रह्म विद्या, साधना) (३ खण्ड) — २३)२५

३- षट्दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	— ४)
सांख्य दर्शन	— ४)
योग दर्शन	— ४)
वैशेषिक दर्शन	— ४)
न्याय दर्शन	— ४)
मीमांसा दर्शन	... ५)

४- २० स्मृतियां २ खंड — १४)

५- पुराण

शिव (२ खंड)	१४)	वायु (२ खंड)	१४)
विष्णु (२ खंड)	१४)	अग्नि (२ खंड)	१४)
मार्कण्डेय (२ खण्ड)	१४)	गरुड़ (२ खण्ड)	१४)
हरिवंश (२ खण्ड)	१४)	भविष्य (२ खण्ड)	१४)
पद्म (२ खण्ड)	१४)	देवीभागवत (२ खण्ड)	१४)
लिङ्ग (२ खण्ड)	१४)	वामन (२ खण्ड)	१४)
मत्स्य (२ खण्ड)	१४)	ब्रह्मवैवर्त (२ खण्ड)	१४)
कूर्म (२ खण्ड)	१४)	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५

६- विष्णु रहस्य ६)

७- तंत्र महाविज्ञान २ खण्ड १५)

संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली।